कृतज्ञतास्वीकार



[१] बीकानेर के सेठ, कलकत्तानिवासी, गौरगतजीवन, श्रीमान् हनुमानदास जी राठी तथा श्रीमान् गोपालदास जी। आप दोनों की हार्दिक सौहार्द्दता और परम आग्रहता से हम इस ग्रन्थ-रत्नपञ्चक के प्रकाशन में समर्थ हुए।

[२] श्रीमान् मुरलीधरआइदान जी। आप ने इन ग्रन्थों का प्रकाशन में सम्पूर्ण अर्थ सहायता देकर चिरबाधित किया।

[३] श्रीहरिदासदासजी महोदय। आप प्राचीन गोस्वामि-आचार्य्यों के द्वारा विरचित अनेक (लगभग शताधिक) ग्रन्थों के प्रकाशक हैं। आप ने "श्रीकृष्णलीलास्तव" का निजकृत टीका तथा पद्यानुवाद के साथ प्रथम वार प्रकाशन किया है।

[४] श्रीयुक्त परमपूज्य गोस्वामी रासविहारी जी शास्त्री। आप ने गौरगणोद्देशदीपिका, संकल्पकल्पद्रुम तथा व्रजविलासस्तव का अनुवाद संशोधन कार्य्य में सहाय देकर परम उपकार किया।

[५] पं० श्रीनारायणदेव कौशिक जी, मथुरा गौघाट के निवासी। आप ने श्रीकृष्णलीलास्तव तथा राधाकृष्णगणोद्देशदीपिका के अनुवाद संशोधन कार्य्य में सहायता दी।

[६] श्रीगुरु-गौरांगगण—जिन की कृपाकणिका से हम इन ग्रन्थों के प्रकाशन में समर्थ हुए।

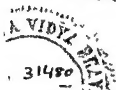
मुद्रक:—रमनलाल यंमल, पुष्पराज प्रेस, मथुरा।

श्रीगुरुपरम्परा

श्रीश्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभुजी
।
श्रीश्रीनित्यानन्दप्रभुजी
।
श्रीश्रीजान्हवाठाकुराणीजी
।
श्रीश्रीवीरचन्द्रप्रभुजी
।
श्रीश्रीरामचन्द्रगोस्वामी
।
श्रीश्रीकिशोरीमोहनगोस्वामी
।
श्रीश्रीराधावल्लभगोस्वामी
।
श्रीश्रीराधारमणगोस्वामी
।
श्रीश्रीराधामाधवगोस्वामी
।
श्रीश्रीसत्यानन्दगोस्वामी
।
श्रीश्रीराधिकाप्रसादगोस्वामी
।
श्रीश्रीकृष्णचैतन्यगोस्वामी
।
श्रीश्रीनित्यराधागोस्वामी
।
श्रीश्रीशंकरारण्यगोस्वामी
।
श्रीश्रीराधारमणचरणदासजी (बाबाजीमहाराज)
।
श्रीश्रीरामदासबाबाजीमहाराज
(गौरगुणगायक तथा संकीर्त्तन प्रचारक)
।
(प्रकाशक)

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयताम्

चन्द्रावलीप्रभृति-नव्यलतावलीषु
वृन्दावनेऽनवरतं विहरन् समन्तात्।
राधा-सुवर्णनलिनी-गुणगन्धलेश-
मात्रान्मना विजयतामिह कृष्णभृङ्गः ॥ १ ॥
कृष्णोत्कीर्त्तन-गान-नर्त्तनपरौ प्रेमामृताम्भोनिधी
धीराधीरजनप्रियौ प्रियकरौ निर्मत्सरौ पूजितौ।
श्रीचैतन्यकृपाभरौ भुवि भुवो भारावहन्तारकौ
वन्दे रूपसनातनौ रघुयुगौ श्रीजीवगोपालकौ ॥ २ ॥
श्रीरूपेण प्रबलकरुणाशालिना दर्शितं यन्-
मादृङ्मुग्धप्रकृति-जनता-श्रेयसे रागवर्त्म।
तस्मिन् येषां रतिरतितरां वर्त्तते सारभाजां
तेषां पादाम्बुजनतिमती कोटिशः स्याज्जनिर्मे ॥ ३ ॥



हरिदासदास बाबा,
हरिबोलकुटीर,
नवद्वीप।

यह पुस्तक तथा प्रकाशित अन्य पुस्तकें
मिलने का पता—

१—श्रीरामनिवासखेतान की दूकान, सवामनशालग्राम जी मन्दिर के नीचे (लोईबाजार) वृन्दावन।
अनुपस्थिति में—मन्दिर के भीतर।
२—मोतीरामगुप्त भगवानभजनाश्रम, बल्लीगंज, वृन्दावन।
३—राधेश्यामगुप्त बुकसेलर, पुरानासहर, वृन्दावन।
प्यारीलाल बुकसेलर, असकुंडाघाट, मथुरा।

समर्पण-पत्र



"हा वत्स केवलचन्द"

तुम्हारी प्रेरणा का फल यह "ग्रंथरत्नपंचक" अथवा "दिव्यपंचामृत" रसिकों को आनन्द देता हुआ तुम्हारी आत्मा को प्रेम प्राप्त करावे।



—हनुमानदास राठी

श्रीश्रीरूपसनातन की जीवनी

कर्णाटकदेश के अधीश्वर, भारद्वाज गोत्रीय, यजुर्वेदीय ब्राह्मण "सर्वज्ञ" जी के अनिरुद्ध हुए। उन के रूपेश्वर और हरिहर नाम के दो पुत्र थे। हरिहर जी के राज्यलालसा के इच्छुक होकर रूपेश्वर जी ने नीलाचल की यात्रा की तथा वर्द्धमान के निकटवर्त्ती शिखरदेश के राजा महेन्द्रसिंह के साथ परिचय-बन्धुत्व की स्थापना की। पश्चात् वे वहाँ के मन्त्री हुए। वहाँ रूपेश्वर जी का पद्मनाभ नामक पुत्र हुआ। पद्मनाभ की पत्नी का नाम रमादेवी था। पद्मनाभ जी श्वशुर और पिता जी का परलोक हो जाने पर शिखरदेश त्याग कर नवहट्ट (नैहाटि) ग्राम में आकर वास करने लगे। वहाँ उन के पाँच पुत्र और १८ कन्या हुईं। सब से कनिष्ठ पुत्र का नाम मुकुन्द था। उन मुकुन्ददेव के पुत्र कुमारदेव है । हरिनारायण विशारद महाशय की कन्या रेवती के साथ कुमारदेव का विवाह हुआ था। कुमारदेव के श्रीसनातन-श्रीरूप-श्रीअनुपम तीन पुत्र हुए। श्रीसनातन जी का आविर्भाव काल आनुमानिक १४१० शकाब्द तथा श्रीरूप जी का १४११ मतान्तर में १४१५ शकाब्द है। श्रीसनातन जी अल्पावस्था में ही अध्यापक शिरोमणि विद्यावाचस्पति के निकट सर्व्वशास्त्र का अध्ययन कर व्युत्पन्न हुए। उस समय गौडनगर हुसेनसाह पातसाह की राजधानी थी। अनेक देशों से कृतविद्यगण का वहाँ आगमन रहा। अतः तीनों भ्राता अनायास सर्वविद्या में पारदर्शी हो उठे।

एक दिवस कथा प्रसंग वश हुसेनसाह ने मुरसीद को मेरा गौडराजत्व कब तक रहेगा यह बात पूछी। उस समय सिद्ध फकीर साहन्यामतुल्ला अली ने कहा वत्स ! हुसेन ! जब तक सनातन-रूप मन्त्रित्व पद में नियुक्त रहेंगे, तब तक तुम्हारा नृपासन रहेगा। पीछे वे चैतन्यदेव का दर्शन लाभ कर विषय से वीतश्रद्ध हो अ-

न्यत्र चले जाने पर तुम्हारे गौडराजत्व की अवनति होगी। हुसेनशाह श्रीसनातन-रूप के अनुसन्धान के लिये उत्सुक होकर इधर उधर लोगों को भेजने लगा। इस से पहले उसने हिंगा नामक पदाति को माधाइपुर नामक स्थान में बिना कुछ कह कर भेजा था। हिंगा माधाइपुर जाकर इधर उधर घूमने लगा। उस समय श्रीसनातन जी ने अपने घर में बैठ कर श्रीरूप के साथ शास्त्रालाप करते थे। उन्होंने उस को देखा तथा इस प्रकार घूमने का कारण पूछा। हिंगा किस कारण से घूमता था, उस का उत्तर नहीं दे सका। सनातन ने फिर हिंगा से पूछा कि जब तुम को बादशाह ने भेजा, तब वे कहाँ थे। उस ने कहा एक मन्दिरा का उपरि भाग बनने में बाकी पड़ा है। उसे देख कर उतरते हुए मुझे भेजा। परन्तु भेजने के समय किस लिये भेजता हूँ, उसे नहीं कहा। तब श्रीरूप ने दो-चार-राजमिस्त्री देकर हिंगा को बादशाह के निकट भेजा। बादशाह राज मिस्त्री के साथ हिंगा को देख कर आश्चर्य्य हुआ तथा दोन भ्राता के परामर्श से यह कार्य्य हुआ है इस का अवगत किया।

बादशाह ने केशव छत्रि नामक कोतवाल को भेज कर शिविका (पालकी) द्वारा दोनों भ्राता को राज-दरबार में लाकर तथा दोनों का परिचय प्राप्त से मुग्ध हो सनातन को मन्त्रित्व तथा श्रीरूप को उपमन्त्रित्व पद में नियुक्त किया। दोनों बाहर राजकार्य्य की परिचालना करने लगे तथापि अन्तर में वैष्णव पण्डितों के साथ भागवतादि भक्तिशास्त्र की आलोचना करते थे। श्रीगोविन्दसेवा में रत का सुरसमय जीवन बीतता था। सनातन के सेवा-विग्रह श्रीराधा मदनमोहन मूर्त्ती अभी भी रामकेलि ग्राम में विराजमान है। वे दोनों निज आंगन में व्रजभाव उद्दीपन के लिये राधाकुण्ड-श्यामकुण्ड-अष्टसखियों का कुण्ड, कुञ्ज-निकुञ्ज, गोवर्द्धनादि का निर्म्माण करा कर भाव आस्वादन के द्वारा समय बिताते थे। अभी

भी वहाँ राधाकुण्ड-श्यामकुण्डादि मौजूद हैं। एक दिवस रात्रि में स्वप्नयोग में श्रीगौराङ्गदेव ने दर्शन देकर आज्ञा की, सनातन! अब विलम्ब की आवश्यकता नहीं है। तुम सब व्रज की मञ्जरी हो। जीव उद्धार के लिये मनुष्य देह में अवतीर्ण हुए हो। शीघ्र ही दोनों व्रज के लिये गमन करो। वहाँ लुप्त तीर्थों का उद्धार तथा भक्ति शास्त्रों का प्रणयन करो। महाप्रभु के अन्तर्द्धान हो जाने पर सनातन जी विषण्ण चित्त से अष्ट सात्त्विक भावों से विभावित होकर स्वप्न वृत्तान्त के सोच में बैठे हुए, उस समय श्रीरूप आकर उन से मिले। दोनों ने परामर्श कर श्रीनवद्वीप में महाप्रभु के निकट दैन्यपत्र भेजा।

श्रीमन् महाप्रभु वृन्दावन गमन का छल कर रामकेलि में आकर केलिकदम्ब तल में बैठे हैं। उस समय श्रीरूप-सनातन दोनों दीनातिदीन वेष में आकर प्रभु के चरण में गिर गये। प्रभु ने उठा कर आलिङ्गन दिया तथा दोनों से भिक्षा की। बड़ा भारी उत्सव हुआ। भक्तगण प्रभु के अधरामृत महाप्रसाद का ग्रहण कर परम आनन्दित हुए। प्रभु का आगमन हुसेनशाह ने भी सुना। श्रीरूप-सनातन से परिचय पाकर महाप्रभु के स्वच्छन्द विहार के लिये सर्व प्रकार की व्यवस्था कर दी। अब तक यहाँ गौराङ्गदेव के आगमन उपलक्ष्य में ज्येष्ठ संक्रान्ति के दिन महोत्सव होता है।

श्रीमन् महाप्रभु के दर्शनावधि श्रीरूप-सनातन की विषय में विशेष वितृष्णा हो गई। निरन्तर दोनों भ्राता श्री गौराङ्गदेव के रूप-गुण में विभोर होकर झूरने लगे। लोगों के मुख से श्रीमन्महाप्रभु का वृन्दावन में गमन सुन कर उन का चित्त चञ्चल हो उठा। श्रीरूप गौराङ्गदेव के दर्शन की लालसा से अधीर होकर कनिष्ठ भ्राता अनुपम के साथ गृह त्याग कर प्रयाग में महाप्रभु से मिले। प्रभु ने प्रेमालिङ्गन के द्वारा दोनों को कृतार्थ कर सनातन की

वार्त्ता पूछी तथा श्रीरूप जी को निज शक्ति सञ्चारित कर वृन्दावन जाने के लिये आदेश दिया।

श्रीरूप तथा अनुपम के गृहत्याग के उपरान्त सनातन जी विक्षिप्त चित्त होकर दिन रात हा गौराङ्ग! ऐसा कह कर काँदने(रोने) लगे। राजकार्य्य परिचालना उस से शिथिल हो उठी।

हुसेनशाह के गौडदेश में राजा होने के पहले अलाउद्दीन हुसेनशाह गौड का अधीश्वर रहा। उस के आधीन में सुबुद्धिराय नामक जागीरदार रहते थे। सैयद वंशजात हुसेन खाँ उस समय उन की नौकरी करता था। सुबुद्धिराय ने किसी जलाशय खनन करने का भार उसे दिया था, परन्तु उस में हुसेन खाँ की त्रुटि देख कर उस के उरुदेश में कठोर चाबुक का प्रहार किया। पश्चात् जब हुसेनशाह राजा हुआ, तब उस की रानी ने उस चिन्ह को देख कर सुबुद्धिराय को प्राणवध के लिये राजा से अनुरोध किया। हुसेनशाह निज पोष्टा सुबुद्धिराय के प्राणवध के लिये नहीं सम्मत हुआ। उधर रानी ने भी अपने हठ में आकर अपने प्राण त्याग का भय दिखाया। हुसेन शाह दोनों संकट में उपाय शून्य होकर केशव छत्रि को दबिरखास (सनातन) को बुलाने के लिये आदेश दिया। उस समय अन्धकार रात्रि थी, आकाश घनघटा में छा गया था। मार्ग बड़ा दुष्कर था। सनातन जी गौराङ्ग विरह में व्याकुल हो कर हाय हताश कर रहे थे। उस में फिर दोनों भ्राता का विरह आग से हृदय जलता जा रहा था। राजा की आज्ञा सुन कर शिविका योग से राजदरबार में उपस्थित हुए। आपाततः समस्त विषय सुन कर नाना कौशल तथा विनती के साथ रानी को समझाया। परन्तु उस का हठ परिवर्त्तन नहीं हुआ। परचात् सुबुद्धिराय की जाति नाश कर देने की सम्मति रखी गई। सनातन जी मन में विचार करने लगे—ब्राह्मण जाति च्युत होकर पश्चात् प्रायश्चित्त कर शुद्ध हो सकता है।

रानी को प्रबोधित कर सनातन जी अपने घर फिरते थे। उस समय मार्ग में वृक्षमूल के पर्णकुटीर से एक फकीर तथा उस की पत्नी का कथालाप उन ने सुना। पत्नी फकीर से पूछने लगी-इस दुःसमय घोर अन्धकार में कौन जा रहा है। फिर कहती है बोध होता है, एक कुक्कुर जा रहा है। फकीर ने कहा उस की क्या गरज पड़ी है। वह तो किसी गृहस्थ के घर सोता रहा होगा। पत्नि ने फिर भी पूछा? तो कौन जा रहा है। फकीर ने कहा-निश्चय कोई पराधीन जा रहा है। उन के वार्त्तालाप का श्रवण कर सनातन जी लज्जित हुए तथा रूप, अनुपम की प्रशंसा करते हुए अपने को शत धिक्कार देने लगे। अब सनातन जी महाप्रभु के लिये अधीर हो गये। उन का चित्त व्याकुल हो उठा। उस समय श्रीरूप गोस्वामी का एक पत्र उन्हें मिला। यह पत्र गुप्त भाव से लिखा गया था। पत्र में इस प्रकार श्लोक था "यदुपतेः क्व गता मथुरापुरी, रघुपतेः क्व गतोत्तरकौशला" इत्यादि। कोई कोई कहते हैं कि श्रीरूप ने आठ अक्षर लिख कर विषय त्याग करने के लिये सूचना की। यथा "शु, हि, रा, सू, य, पा, कु, कम्। इस का अर्थ सनातन ने इस प्रकार किया, शु-शुम्भनामक दैत्यराज, हि-हिरण्यकशिपु नामक दुर्दान्त दैत्येन्द्र, रा-लंकेश्वर रावण, सू-सूर्य्यवंश, य-यदुवंश, पा-पाण्डवगण, कु-कुरुपति दुर्योधन, कं-कंसराजा। इन प्रत्येक के प्रताप से एक दिन पृथिवी कम्पायमान होती थी। किन्तु वर्त्तमानमें वे सब कहाँ चल दिये। अतएव अविलम्ब से विषय त्याग उचित है।

पत्र पाठ से उन की मानसिक ज्वाला अधिक बढ़ने लगी। वे विषय परित्याग का सङ्कल्प कर राजदरबार में गमन विरत होकर घर में बैठ भागवतगणों के साथ भागवत प्रसंग में समय बिताने लगे। सनातन जी को राजदरबार में अनुपस्थित देख कर पातसाह ने वार्त्ता जानने के लिये पदातिक भेज कर सुना कि वे अस्वस्थ

हैं। क्योंकि सनातन ने उस को अस्वस्थता का बहाना दिखाया। अब पातसाह ने वैद्य भेज कर उस के द्वारा सुना कि सनातन जी के शरीरमें कोई अस्वस्थता नहीं है,वे राजकार्य्य चलानेमें अपने को अक्षम कह रहे हैं,तब वह स्वयं उपस्थित होकर सनातन से कहा—दबिरखास! तुम्हारे तीन दिन की अनुपस्थिति में हमारे राजकार्य्य में महान् विशृङ्खलता हो गई है। अतः शीघ्र चल कर कार्य्य समाधान कीजिये। सनातन ने कहा अब मेरी राजकार्य्य में क्षमता नहीं रही। आप तो दूसरा मन्त्री रख लीजिये। पातसाह ने बहुत कुछ अनुरोध किया। परन्तु उन्होंने उपेक्षा की। उस से पातसाह क्रोधित होकर कहने लगा—तुम्हारे भैया रूप साकरमल्लिक मेरा चाकला (प्रदेश) नष्ट कर दरवेश होकर पलायन किया। तुम भी ऐसा करना चाहते हो। अस्तु! ऐसा कह कर उसने सनातन को बन्दी कर "सेख हबु" नामक जमादार को रक्षा के लिये नियुक्त किया। उस समय पुरन्दरवसु मन्त्री आसन में संरूढ़ हुए। उधर पुरन्दरवसु के कनिष्ठ भ्राता श्रीकान्तवसु उड़ीसा से कर संग्रह कर गौड़देश को भेजते थे। यहाँ से ऐसा संवाद आया कि उस के दुर्व्यवहार से प्रजागण कर न देकर उसे विताड़ित किया है।

गौड़पति ने इस संवाद को सुन कर क्रोधित हो पुरन्दरवसु की प्ररोचना से युद्ध के लिये उड़ीसा यात्रा की। अब, सनातन जी कारागार में रुद्ध होकर दुःसह यन्त्रणा को गौराङ्ग अनुराग से सुखमय मान कर अन्तर में गौराङ्ग संग सुख का आस्वादन करने लगे। ये युक्तिबलसे सहस्र सुवर्ण मुद्रा प्रदान के द्वारा सेख हबु को वश में कर शृङ्खल से मुक्त हुए। गुरु-ब्राह्मण, कुटुम्ब, अतिथियों में धन का विभाग कर प्रातःकाल भृत्य ईशान के साथ गौराङ्ग दर्शन के लिये यात्रा कर हावासघाना घाट में उपस्थित हुए। श्रावण का मास था। गंगा में भरपूर जल रहा। आप ने गंगा को प्रणाम कर

पार हो वृन्दावन के उद्देश्य में यात्रा की। पातोड़ा पर्वत में पार्वतीय भूँआ जाति की बस्ती में पहुँचे। उन में से कोई गणक अपनी भाषा में निज गण के लिये कहने लगा कि इन के पास अष्ट सुवर्ण मुद्रा हैं। इन को कपट प्रेम दिखा कर आतिथ्य करा कर एकान्त में प्राण वध करके मुद्राओं को लेना है। सनातन ने उन से वृन्दावन का मार्ग पूछा। उन सब ने बड़ा सन्मान दिखाकर रात्रि वास करने को कहा। राजमन्त्री सनातन जी बड़े चतुर थे। उन के मन में कुछ सन्देह हुआ। वे ईशान से पूछने लगे। तुम्हारे साथ कुछ पाथेय है क्या? ईशान ने एक मुद्रा का गोपन कर सात सुवर्ण मुद्रा दिखाई। सनातन ने उन मुद्रा को लेकर भूँआ के अधिपति को दे दिया। उन सब ने विस्मय प्राप्त तथा कुछ सनातन जी के स्वभाव से आर्द्र हृदय होकर षड्यन्त्र की कथा सुनाई। सनातन जी वहाँ रात्रि निवास कर भूँआ गणों के निर्देश मार्ग से चलने लगे। आप ने ईशान से और कुछ पाथेय रखने का प्रश्न किया। फिर भी ईशान ने मार्ग सम्बल के लिये एक मुद्रा दिखाई। इस से सनातन जी व्यथित होकर ईशान को गृह के लिये विदाई देकर अकेले गौरांगानुराग के द्वारा वृन्दावन के लिये चलने लगे। पार्वत्य हिंस्रजन्तु समाकुल मार्ग में सनातन जी निर्भय होकर हा गौराङ्ग! कहते हुए चल रहे थे। उन के कुसुम सुकोमल चरण दोनों से रक्त स्राव हो रहा था। परन्तु उस का कोई भ्रूक्षेप नहीं। वे तो निज प्राणवल्लभ महाप्रभु गौराङ्गदेव के दर्शनार्थ चले जा रहे हैं। इस प्रकार गमन करते हुए दशम दिवस के सायान्ह में हाजीपुर नामक ग्राम में पहुँचे तथा वहाँ एक तमालतला में बैठ कर गौरगुणानुवाद करते रहे। वहाँ उन के ग्राम्य सम्बन्धी श्रीकान्तसेन नामक भग्नीपति ने जो कि पातसाह के लिये घोटक क्रय करने के लिये वहाँ नियुक्त थे, उन को देखा। सनातन का वेश मलिन था। वे निरन्तर गौराङ्ग गुण-

गान में विभोर थे। पश्चात् परिचय पाकर श्रीकान्त ने उनको अपने घर जाने के लिये बहुत कुछ आग्रह किया। परन्तु सनातन जी किसी भी प्रकार सम्मत नहीं हुए। श्रीकान्त ने एक भोट कम्बल लाकर सनातन जी को दिया। वे उस कम्बल को लेकर काशी अभिमुख में गमन करने लगे। काशी में उपस्थित होकर सनातन ने सुना कि महाप्रभु यहाँ चन्द्रशेखर जी के गृह में विराजमान हैं। सनातन जी पुलकित होकर चन्द्रशेखर जी के बहिर्द्वार के एक प्राचीर में पीठ लगा कर बैठे रहे। उधर महाप्रभु ने चन्द्रशेखर को कहा तुम्हारे द्वारदेश में एक वैष्णव का आगमन हुआ है। तुम उन को ले आओ। चन्द्रशेखर जी ने प्रभु की आज्ञा से बाहिर जाकर किसी वैष्णव को नहीं देख प्रभु से कहा। पश्चात् प्रभु का इङ्गित से दरवेश रूपी सनातन को प्रभु के निकट लाया। महाप्रभु सनातन को प्रांगन में देखते हुए बाहु प्रसार कर आलिङ्गन करने के लिये धावित हुए। सनातन जी संकोचित होकर पीछे को भागने लगे। पश्चात् महाप्रभु जी बल पूर्वक उन को आलिंगन कर निज पार्श्व में बैठा कर [illegible]गमार्जन करते हुए रूप-अनुपम की कथा कहने लगे। तपनमिश्र जी ने मध्यान्हभिक्षा के लिये प्रभु का निमन्त्रण किया। महाप्रभु जी सनातन को भद्र कराने के लिये इङ्गित करने लगे। सनातन जी भद्र होकर गंगास्नान कर प्रभु के समक्ष आये। प्रभु ने निज हस्त से सनातन जी को तुलसी मालादि पहराय दिया। महाप्रभु जी मध्यान्ह क्रिया के लिये विष्णुमन्दिर में प्रविष्ट हुए। सनातन जी तपनमिश्र जी से एक जीर्ण वस्त्र लेकर कौपीन-बहिर्वास रूप से पहरने लगे। प्रभु सनातन का वेशावलोकन कर ईषत हास्य करते हुए भोट-कम्बल की तरफ बार बार दृष्टिपात करने लगे। सनातन जी प्रभु का मनोभाव जान कर एक गौड़ीया को भोट कम्बल दे उस से जीर्ण कन्था लेकर पहरने लगे। उस से प्रभु

ने प्रसन्न होकर कहा–श्रीकृष्ण प्रभु ने तुम्हारे विषय–व्याधि को दूर किया। वे अवशेष व्याधि क्यों रखेंगे, अच्छा ही हुआ। इस से सब कोई परिहास कर सकते हैं कि "भोट कम्बल शरीर में उस में फिर माधुकरी भिक्षा!" मिश्र गृह में प्रभु ने भोजन किया तथा शेष अधरामृत सनातन को दिलाये।

उस के उपरान्त महाप्रभु जी ने श्रीप्रकाशानन्द–सरस्वती को स्वप्रभाव से मायावाद से उद्धार कर वैष्णव किया। उस समय काशीवासी सकल महाप्रभु का गुणानुवाद करने लगे। महाप्रभु जी दो मास पर्य्यन्त काशी में रह कर श्रीसनातन जी को जीवतत्त्व, ईश्वरतत्त्व, भक्तितत्त्व, प्रेमतत्त्व, व्रजतत्त्व, रसतत्त्व प्रभृति शिक्षा देकर सुदृढ़ किया तथा निज शक्ति सञ्चार कर वैष्णवस्मृति करने के लिये आदेश देकर उस का सूत्र निर्देश किया। ये सब कथा श्रीचैतन्यचरितामृत में सविस्तार वर्णित हैं। पश्चात् प्रभु ने सनातन जी को सर्व्वशक्ति सञ्चार कर योग्यपात्र बनाय, वृन्दावन में जाकर लुप्ततीर्थों का उद्धार और भक्ति शास्त्रों के प्रणयन के लिये आदेश दिया। श्रीप्रभु की आज्ञा पाकर सनातन जी प्रयाग तथा आगरा होकर वृन्दावन में पहुँचे तथा वहाँ कुछ दिन निवास कर फिर महाप्रभु की दर्शन लालसा से नीलाचल के लिये यात्रा की। मार्ग में झारिखण्ड के दूषित जल से उन के शरीर में कण्डू (खुजली) हो गई। वे श्रीकृष्ण प्राप्ति न होने के दुःख से जगन्नाथदेव का रथारोहण दर्शन कर रथचक्र के नीचे दब कर प्राणत्याग करने के लिये मन में विचार कर नीलाचल में उपस्थित हुए तथा भुवनपावन श्रीहरिदास ठाकुर के निकट रहने लगे। सनातन जी दीनता से अपने को नीच जाती, नीचसंगी मानते हुए जगन्नाथ जी के मन्दिर में नहीं जाते थे। उन के देहत्याग का संकल्प जान कर एक दिवस महाप्रभु ने उस से उन को समझाय कर विरत किया तथा

सनातन जी को आलिंगन कर निज देह कर के अङ्गीकार किया। प्रभु स्पर्श से उन की कण्डू (खाज) चली गई तथा परम तेजशाली हुए। एक समय ज्येष्ठ मास का मध्याह्न काल में टोटा-यमेश्वर से तप्त बालुका के ऊपर देकर सनातन जी प्रभु दर्शन में पहुँचे। पाँव में बड़े बड़े फफोले हो गये। परन्तु सनातन का भ्रूक्षेप नहीं। प्रभु ने उन की आत्मदीनता सुन कर प्रसन्न हुए तथा प्रेमालिंगन के द्वारा सम्पूर्ण स्वस्थ किया। नीलाचल में कुछ दिवस रह कर सर्व-भक्त का आशीर्वाद ले प्रभु आज्ञा से वृन्दावन के लिये चल दिये।

वृन्दावन में श्रीरूपगोस्वामी जी से मिल कर लुप्ततीर्थों के उद्धार की चेष्टा में निरन्तर व्यस्त रहे। एक दिवस शृङ्गारवट में महाप्रभु के द्वारा उपदिष्ट लुप्त-तीर्थों की उद्धारचेष्टा में चिन्तित होकर शयन कर रहे थे। किसी ने स्वप्न छल में आकर कहा— सनातन! तुम लुप्ततीर्थों के उद्धार की चिन्ता मत करो। वह सब कार्य्य धीरे धीरे होगा। मेरा कार्य्य मैं करूँगा, तुम केवल उपलक्ष मात्र हो। स्वप्न प्राप्त होकर सनातन जी प्रसन्न हुए। वाराहपुराण, स्कन्दपुराणादि अशेष शास्त्र का समन्वय कर मथुरा-महिमा नामक एक ग्रन्थ का सङ्कलन किया। तीर्थों की खोज होने लगी। साथ ही साथ असंख्य भक्ति ग्रन्थों की रचना हुई। उन के कुछ समय पश्चात् जब कि महाप्रभु की अन्तर्द्धान लीला हुई उस समय छै गोस्वामी जी के साथ महामहिम श्रीमन्नारायणभट्ट जी का भी संसर्ग हुआ। वे गदाधर पण्डित गोस्वामी जी के शिष्य कृष्णदास ब्रह्मचारी जी के प्रिय शिष्य हैं। ब्रज तीर्थ उद्धार के विषय में उन की भी महान् महत्ता है। निःसन्देह श्रीरूप-सनातन-श्रीनारायण भट्ट आदिक गौडीय आचार्य्यों ने ब्रजतीर्थों का उद्धार कर ब्रज की परम महत्ता चारों ओर फैलाई तथा असंख्य ब्रजसम्बन्धी ग्रन्थों की रचना कर ब्रज का रहस्य सबको दिखलाया है। सनातनजी पल-

मूल-शाक इत्यादि से यथा लाभ से सन्तुष्ट हो कर कभी या चर्वण, कभी या विप्रगृह से माधुकरी भिक्षा करते हुए वृन्दावन में मदन-टेर नामक स्थान में मौनी हो कर सदा सर्वदा भजन करने लगे। वंगभाषा के भक्तमाल में कथन है कि—दिल्लीश्वर आकबरसाह सनातन की गुणगरिमा श्रवण से मुग्ध हो कर वहाँ शिविर स्थापन कर सनातन जी के दर्शन के लिये उन के निकट उपस्थित हुए। सनातन ने अपना मौन भंग नहीं किया। पश्चात् बादशाह के यत्-किञ्चित् अर्थ अंगीकार करने के लिये बार बार आग्रह से इङ्गित किया कि अपने कुटीर यमुना तरंग से भग्न प्राय हो गया है। इस का संस्कार कर दीजिये। जमुना की घाट के ऊपर यह कुटीर था। बादशाह ने देखा घाट समूह स्पर्शमणि समूह से विरचित है। बादशाह लज्जित हो कर "सनातन जी जिस अतुल वैभव के अधि-कारी हैं" उस की प्रशंसा करता हुआ तथा सनातन जी की स्तुति कर प्रार्थित सम्पादन में असामर्थ्य जनाता हुआ दिल्ली के लिये प्रत्यावर्त्तन किया। श्रीरूप ने "चाटुपुष्पाञ्जलि" नामक निज स्तोत्र में वेणी व्यालाङ्गनाफणा की उपमा देकर श्रीराधिका की वेणी का वर्णन किया है। सनातन जी सर्पिणी के साथ वेणी की उपमा देख कर अति दुःखित हुए। एक समय वे राधाकुण्ड के अग्निकोण में मदनान्दोलन नामक नित्य-विलासकुञ्ज के दर्शनार्थ पहुँचे। उस समय उन्होंने वहाँ देखा कि श्रीमती राधा श्याम-रसाल वृक्ष के भूलना में भूल रही हैं। उन की पृष्ठ वेणी लम्बायमान होकर ठीक नागनी के प्रति रूप धारण कर रही है। वेणी फणिनी के दर्शन से सनातन जी आश्चर्य्य हो कर श्रीरूप की कविता की भूयसी प्रशंसा करने लगे तथा प्रेमआतिशय्य से सात्त्विक भावावली में विभूषित हो कर भूतल में लुण्ठित हुए।

सनातन जी वृन्दावन से भिक्षा के लिये मथुरा में जाते थे।

वहाँ एक चौवे की ब्राह्मणी जो कि वात्सल्यरस की मूर्त्ति थी उसके वात्सल्य भाव से आकृष्ट होकर मदनमोहन जी—पञ्चवर्षीय बालक के साथ क्रीड़ा करते थे तथा दोनों मातृ सम्बोधन करते थे। एक दिन मदनमोहन जी बालक के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। सनातन जी माधुकरी के लिये आ रहे थे। उन्होंने उन बालक मदनमोहन जी को देख कर कुछ आश्चर्य हो परिचय पूछा। बालक ने कहा हम ब्रजवासी बालक हैं। हमारा नाम मदनमोहन है। आगे उस मौहल्ला के उस मकान में हमारा वास है। सनातन जी ने उस ब्राह्मणी के घर पर जाकर देखा कि ब्राह्मणी पाक कर रही तथा दन्त धावन करती हुई उस दन्त काष्ठ से भात चलाने लगी। इस प्रकार अवैध सदाचार देख कर सनातन ने पूछा, ब्रजमाई! आप किस के लिये रसोई कर रही हो। ब्राह्मणी ने उत्तर दिया। मेरे दो बालक हैं, उन के लिये बालभोग की रसोई कर रही हूँ। सनातन ने कहा माता! यह रन्धन तुम्हारा अवैध हो रहा है, इस से अपराध हो सकता है। आगामी कल से स्नानादि कर पवित्र हो कर बालक दोनों के लिये रसोई करना। दूसरे दिन स्नानादि सदाचार करती हुई रसोई करने लगी। उस से अपरान्ह हो गया। क्षुधा से पीड़ित होकर मदनमोहन जी ने सनातन से कहा गोसाईं जी! तुमने माता को सदाचार उपदेश देकर मुझे क्षुधा से कातर किया। मैं तो ब्रजवासियों के उच्छिष्ट से परिपालित हूँ। क्या तुम इस बात को नहीं जानते हो। सनातन ने विस्मित होकर माता से कहा-माता जी! अब तो आप पहले की तरह रन्धनादि कर बालक दोनों को खिलाना। स्नानादि सदाचार की आवश्यकता नहीं है। ऐसा कह कर सनातन जी चलने लगे। मार्ग में मदनमोहन जी ने कहा, गोसाईं जी! मैं तो आप के संग में चलूँगा और आप के पास रहूँगा। सनातन ने कहा मैं तो वृक्षतल निवासी, कंगाल, माधुकरी जीवी

हूँ। मैं किस प्रकार आप की सेवा कर प्रसन्न करूँगा। मा यशोदा नवलक्ष धेनु के दुग्ध, सर, नवनीत से तृप्त नहीं कर सकी। ऐसा कह कर सनातन जी वृन्दावन चल दिये। उधर ब्राह्मणी को स्वप्न में मदनमोहन जी ने कहा–मा ! मैं कल से भिक्षुक गोसाईं जी के साथ वृन्दावन मे रहूँगा। ऐसा सुन कर ब्राह्मणी व्याकुल होकर रोदन करने लगी। पर दिन सनातन जी का आगमन होने पर मद॰नमोहन जी उन के साथ वृन्दावन चलने लगे तथा उन को कहा–मैं विग्रहरूप से आप के पास अवस्थान करूँगा और भोग के लिये तुम जो कुछ दोगे उसे भोजन कर तृप्त होऊँगा। इस से सनातन जी ने स्वीकृत होकर माधवीलता के कुञ्ज में उन को स्थापन किया तथा प्रत्यह अँगाकडी (बाटी) का भोग धरा। एक समय अलवण वनशाग भोग धरने पर मदनमोहन जी ने कहा–गोसाईं जी ! किंचित् लवण नहीं होने पर मैं भोजन नहीं कर सकता। सनातन ने कहा–मैंने पहले से ही कहा था कि तुम्हारा उपद्रव नहीं सह सकता हूँ। मैं वनवासी हूं लवण कहाँ से प्राप्त करूँगा। मदनमोहन जी ने कहा–तुम्हारी सम्मति प्राप्त होने पर मैं अपनी प्रयोजनीय सामग्री आहरण कर लूँगा। सनातन ने कहा–जैसी तुम्हारी इच्छा है सो कीजिये। उस समय ऐसा हुआ कि-मुलतान देश का एक सौदा॰गर बहुमूल्य व्यवसाय द्रव्य नौका मे चढा कर मथुरा जा रहा था। मदनटेर के निकट यमुना की चडा में उस की ग्यारह नौकाएं रुक गईं। उसने सब कुछ युक्ति-कौशल कर लिये। किन्तु समस्त चेष्टा वृथा हो गईं। वह बड़ी विपद में पड़ गया। अब मदनमोहन जी ने बालकरूप बन कर सौदागर को बुला कर कहा यहाँ मदनटेर पर सनातन गोस्वामी जी हैं। उन की कृपा से तुम्हारी नौकायें चल सकती हैं। ऐसा कह कर अन्तर्द्धान हो गये। सौदागर ने सनातन जी के निकट आकर सकल वृत्तान्त सुनाया। सनातन ने कहा–इस

माधवीकुञ्ज के मध्य में वह बालक विराजमान है। उस ने अपने मन्दिर तथा सेवा परिचर्य्या बढ़ाने के लिये इस प्रकार भंगी की है। सौदागर ने मदनमोहन के निकट मूलधन तथा लाभ से अधिक धन सब का उपहार देने के लिये संकल्प किया। उस समय नौकागण मुक्त हो गईं। उस व्यवसाय में सौदागर ने प्रचुर अर्थ लाभ किया। पश्चात् उन अर्थों के द्वारा सनातन जी के आदेशानुसार मन्दिर निर्म्माण तथा सेवा की व्यवस्था कर दी।

वीरभूम जिला के एक दरिद्र ब्राह्मण कन्यादायग्रस्त हो कर काशीधाम में शिव की उपासना करता था। एक समय दैववाणी हुई कि तुम शीघ्र वृन्दावन में सनातन गोस्वामी जी के पास गमन करो वहाँ तुम्हारी सब्वार्थ सिद्धि होगी। ब्राह्मण दैववाणी का श्रवण कर काशी से वृन्दावन आकर सनातन जी के पास निज प्रार्थित विषय का निवेदन करने लगा। सनातन जी ने कहा—मेरा एक शत गाँठ युक्त कन्था तथा रज के करवा मात्र सम्बल (धन) है। मैं अर्थ कहाँ से प्राप्त करूँगा। ब्राह्मण सनातन जी के वचन सुन कर तथा उन की अवस्था देख कर शिर में कराघात करता हुआ रोदन करने लगा। उस समय सनातन जी का स्मरण हुआ कि उन ने बहुदिवस पहले यमुना में स्नान करने के समय एक स्पर्शमणि (पारस) की प्राप्त की थी। उसे वामहस्त से बालुका—पत्रों के द्वारा ढक कर रख आये थे। पश्चात् उन ने ब्राह्मण को लेकर तर्जनी संकेत के द्वारा स्थान को दिखाया। ब्राह्मण स्पर्शमणि प्राप्त होकर परमानन्द के साथ देश के लिये गमन कर रहा था, सनातन का प्रभाव उस के ऊपर इस प्रकार पड़ा कि मार्ग में उस ने सोचा गोसाईं जी के निकट अवश्य इस से कोई उत्कृष्ट द्रव्य है, जिससे कि इस स्पर्शमणि का परस करने को भी नहीं चाहते हैं। अस्तु वह क्या वस्तु है ? उसे अवश्य ज्ञात करना चाहिये। ऐसा विचार कर

उसने सनातन जी के पास आ कर उत्कृष्ट मणि की प्रार्थना की। सनातन जी के इङ्गित से स्पर्शमणि को जल में फेंक कर मदनमोहन जी का चरण दर्शन किया। सनातन जी ने उस को शिक्षादि देकर आत्मसात् किया। सनातन जी का चरित्र अगाध असीम सागर रूप है। ग्रन्थ वृद्धि के भय से हम यहाँ से विरत होते हैं।

नन्दग्राम में स्थिति के समय एक दिवस श्रीरूप गोस्वामी जी श्रीसनातनगोस्वामी जी के पास आये। सनातन जी की इच्छा हुई युगल सरकार की भोग लगाकर श्रीरूप को पवावें। इधर उस इच्छा की पूर्त्ति के लिये स्वयं श्री राधिका जी ने एक मनोहर बालिका रूप धारण कर खीर भोग की समग्र सामग्री ला कर उन्हें दी। दोनों अधरामृत पाये। खीर का स्वाद बहुत कुछ अद्भुत देख कर भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए इस का रहस्य श्रीरूप ने पूछा। श्री सनातन जी ने उत्तर में समस्त सुनाया। श्रीरूप ने गोस्वामी जी से कहा कि फिर कभी ऐसा न हो। इस से स्वामिनि जू का दुःख हुआ है। वे स्वयं परिश्रम उठाकर सामग्री लाईं। हमारे सुख के लिये उन को दुःख उठाना पड़ा है।

एक समय श्रीरूपगोस्वामी जी का समाज में हरि गुण यश का गान हो रहा था। सब कोई भाव में डूब कर बेसुध हो कर मूर्च्छित होने लगे परन्तु श्रीरूप धीर-स्थिर ऐसे ही बैठे रहे। इस से सब कोई उन को प्रेम विकार नहीं होने के कारण आश्चर्यान्वित हुए। श्री कर्णपूरगोस्वामि जी ने उन के पास में जा कर देखा कि आप का श्वास अति तपायमान था। उस से कविकर्णपूर का शरीर में आग लग कर फफोले पड़ आये। इस प्रकार प्रेम रीति देख कर सब कोई आश्चर्यान्वित हुए।

श्रीरूपगोस्वामी जी ने नन्दगाँव के पास टेरकदम्ब में कुछ दिन भजन किया। वहाँ आपकी भजन कुटी मौजूद है। उस समय

श्रीसनातन जी पावनसरोवर के निकट एक वृक्ष के नीचे रहते थे। वहाँ भी उनकी भजन कुटी मौजूद है। उनकी अयाचित वृत्ति थी। कोई आकर कुछ दूध दे जाते तो उसे ले लेते थे। एक समय ऐसा हुआ कि तीन चार दिन पर्य्यन्त दूध मिला नहीं। चौथे दिवस एक सावले किशोर रूप बनकर श्रीहरि ने खीर प्रसाद लाकर उन्हें दिया। आप ने उस बालक की सुन्दरता देख पूछा "लाला ! तुम कहाँ रहते हो। आपने उत्तर दिया कि मैं चार भाई हूँ। अमूक मेरा ग्राम है। सनातन जी ने उस ग्राम में जाकर उन का घर लोगों को दूँढा परन्तु उस का पता नहीं पाया। वे चारों दिशायें दूढ़न लगे तथा नेत्रों से आसू बहाने लगे। श्रीसनातनजी कभी वृन्दावन,कभी गोवर्द्धन,कभी या राधाकुण्ड, कभी वा महावन, कभी नन्दग्राम में रहते थे। इन स्थानों में उन का भजन कुटीर मौजूद है। वे प्रतिदिन गोवर्द्धन की परिक्रमा करते थे। वृद्धवयस में जब सात कोस परिक्रमा करने में असमर्थ हुए तब एक दिवस एक सुन्दर रूप-वाला बालक आकर उन को एक श्रीकृष्ण पदाङ्कित गोवर्द्धनशिला दे कर उस की परिक्रमा करने का उपदेश कर अन्तर्द्धान हुए। सनातन जी शेष जीवन में उस शिला की परिक्रमा करते थे। यह शिला वर्त्तमान श्रीराधादामोदर मन्दिर वृन्दावन में विराजमान है। सनातन जी ने अपनी मदनमोहनजी की सेवा का भार गदाधर पण्डित गोस्वामी जी के शिष्य श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारी जी को दिया था। उन्हीं के शिष्य महामहिम श्रीनारायणभट्ट जी है।

श्रीसनातन जी बड़े अमायिक प्रकृति के लोग थे। वे ब्रजवासियों के साथ खूब मिलते थे। व्रजवासिगण उन को यथेष्ट भक्ति श्रद्धा करते थे। सनातन जी एक बार जिस ग्राम को जाते थे, वहाँ के लोग उन्हें सहज में नहीं छोडने को चाहते थे। ब्रजमण्डल में अनेक ग्राम में उन का बैठक तथा भजन स्थान मौजूद है।

उन के द्वारा विरचित ग्रन्थावली—(१) "वृहद्भागवतामृत", (२) हरिभक्तिविलास की "दिक्प्रदर्शिनी" टीका, (३) "वैष्णव तोषणी"नामक दशमस्कन्ध की टिप्पनी, (४) लीलास्तव वा दशमचरित। इस के अतिरिक्त "लघुहरिनामामृतव्याकरण" नामक एक व्याकरण उन के द्वारा विरचित है। वर्त्तमान प्रकाशित हरिनामामृत व्याकरण का यह संक्षेप ऐसा निश्चय किया जाता है। महाप्रभु ने जिस प्रकार सूचना की थी उन्हीं सूत्रके अनुसार श्रीपाद सनातन जी ने पहले लघुहरिभक्तिविलास की रचना की। यह ग्रन्थ अभी भी वृन्दावन श्रीराधारमण जी के गोस्वामिपादों के घर में, अन्यत्र भी विराजमान है। इस ग्रन्थ को लेकर श्रीयुक्त गोपालभट्टगोस्वामी जी ने उनकी आज्ञा तथा सहायता से परिवर्त्तन-परिवर्द्धन कर वृहद्-आकार में हरिभक्तिविलास नाम से प्रणयन किया।

यह ग्रन्थ श्रीसनातनगोस्वामी जी की "दिक्प्रदर्शिनी" टीका के साथ तथा वंगानुवाद के साथ वंगाक्षर में अनेक संस्करणों में प्रकाशित हो चुका है। महाराज छत्रपुर के द्वारा भी यह हिन्दी अनुवाद के साथ देवनागरी अक्षर में दो भाग में प्रकाशित हुआ में। वैष्णवों का महान धर्म्मग्रन्थ इस की महिमा वर्णन करना पृष्ठपेशण मात्र है। यह ग्रंथ अति विशाल है। वैष्णवतोषणी नामक दशमस्कन्ध की टीका अति सरस गाम्भीर्य्य भावमयव्याख्या से विरचित है। ताड़ाशवाली वगीची वृन्दावन से अष्टटीका के साथ देवाक्षरमें तथा त्रिपुराधिपति मणीन्द्रनन्दीराय वहादुरके द्वारा अनेक टीकाओं के साथ वंगाक्षर में और श्रीरामनारायणविद्यारत्न "वहरमपुर" के द्वारा चार टीका के साथ वंगाक्षर में, अन्यत्र भी यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। "वृहद्भागवतामृत" ग्रन्थ भी उक्त ताड़ाशवाली वगीची से स्वकृत टीका के साथ देवनागरी अक्षर में पहले प्रकाशित हो चुका है। यह ग्रन्थ अति सरस परमचतुरता के साथ रचित

किया गया है। इस की महिमा वैष्णवसमाज में परम प्रसिद्धि है। सिद्धान्तिक सरसता के साथ व्रज व श्रीकृष्ण का तत्त्व जानने में यह अद्वितीय ग्रन्थ है। इस की रचनापरिपाटी में बृहस्पति की भी बुद्धि वृत्ति कुण्ठित हो गई है। ग्रन्थकार ने स्वयं ही इस की टीका की। इस लिये मूल श्लोकों का भाव परिस्फुट हो रहा है। हाल में श्रीनिम्बार्कवीथि पथिक, उदारचेता, सेठ रतनलाल जी के द्वारा हिन्दी-अनुवाद के साथ इस का प्रकाशन हुआ है। वैष्णवसमाज इन महानुभाव के ऋणी हैं तथा हार्दिक धन्यवाद भी देते हैं। बंगाक्षर में भी कई संस्करण से इस का प्रकाशन हो चुका है।

"लीलास्तव व दशमचरित" में स्तवात्मक दशम स्कन्धीय लीलाओं का क्रम से वर्णन हैं। श्रीगोस्वामिचरन ने इसमें १०८ नमस्कार के द्वारा दशम लीलाओं का स्तवाकार में संक्षेपरूप से ग्रन्थन किया है। श्रीनवद्वीपधामनिवासी श्रीहरिदासदास महोदय के द्वारा यह ग्रंथ वैष्णवसमाज को प्राप्त हुआ है। आप ने निज कृत टीका तथा सरस बंगानुवाद के साथ बंगाक्षरमें इसका प्रकाशन कर वैष्णव समाज का महान् उपकार किया। उक्त महोदय ने गौड़ेश्वर-सम्प्रदाय के प्राचीन आचार्य्यों के द्वारा विरचित अनेकानेक अप्रकाशित ग्रंथोंका प्रकाशन कर वैष्णवसमाजका जो महान् उपकार किया है, उस से वैष्णव समाज विशेषतः गौड़ीयवैष्णवगण उन का चिर ऋणी रहेगा। कलिकत्ता निवासी बीकानेरके सेठ श्रीमान् हनुमानदास जी राठे तथा श्रीगोपालदास जी इन दोनों सज्जनों की परम आग्रहता से हम उत्सुक होकर इस ग्रन्थ को हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित करने में समर्थ हुए। श्रीयुक्त हरिदासदासमहोदय के द्वारा विरचित टीका तथा बंगानुवाद का आधार लेकर इस का हिन्दी अनुवाद किया गया है। उक्त महोदय ने इस में श्रीयुक्त सनातन जी की विस्तृत जीवनी देकर बड़ा भारी प्रभाव डाला है। उसी जीवनी की

छाया का अवलम्बन कर हम भी यहाँ पर विस्तृत जीवनी लिखने में समर्थ हुए। अवशेष में हम उन महोदय को विशेष हार्दिक धन्यवाद देकर उन गोस्वामिचरण के चरित्र लिखने में विरत होते हैं। क्योंकि श्रीयुक्त सनातन गोस्वामी के चरित्र अति अगाध समुद्ररूप हैं। उन का पार कौन पा सकता है।

श्रीरूपगोस्वामी जी श्रीविग्रहों का प्रकाशन के लिये वृन्दावन के वन वन में नाना प्रकार अनुसन्धान करते हुए एक समय अति विषरण वदन में यमुना के तट पर बैठ कर अश्रुपात कर रहे थे। उस समय एक परम सुन्दर ब्रजवासी ने आकर उन को स्नेह पूर्वक रोदन का कारण पूछा। श्रीरूप जी ने उसे समस्त कारण कहा। वह गोस्वामी जी को गोमाटीला के पास ले कर कहने लगा कि यहाँ एक गौ आकर नित्य पूर्वान्ह में दुग्धस्राव करती है। तुम जैसा विवेचन हो वैसा विधान करो। उस की बात सुन कर तथा मधुरमूर्त्ति दर्शन कर श्रीरूप मूर्च्छित हो गये तथा चेतना पा कर वहाँ किसी को नहीं देखा। वे ब्रज वासियों को बुला कर कहने लगे यहाँ श्री गोविन्द जी विराजमान हैं। पश्चात् बालक-वृद्ध सब के द्वारा उस स्थान का खनन कर योगपीठ के मध्यगत कोटी मन्मथमोहन श्रीगोविन्द जी का विग्रह प्राप्त किये। श्रीगोविन्ददेव का प्राकट्य वार्त्ता सुन कर असंख्य लोग उल्लासित होकर उपस्थित हुए। बड़ा समारोह के साथ "गोविन्दजी" का अभिषेक हुआ। उस के पश्चात् नीलाचल से काशीश्वरब्रह्मचारी नामक महाप्रभु के पार्षद ने गौरगोविन्द नामक दूसरा विग्रह भेजा। श्रीरूप उस "चैतन्यदेव" का विग्रह को लेकर महान् भक्ति के साथ गोविन्ददेव के दक्षिणपार्श्व में स्थापना कर सेवा करने लगे। उस समय वृन्दावन में केवल कृष्णमूर्त्ति समूह प्रकटित हुए,परन्तु राधामूर्त्ति आविष्कार का विशेष उल्लेख नहीं है। पुरीधाम से जगन्नाथदेव के मन्दिर में चक्रवेड़ ना-

मक स्थान में श्रीराधिकाविग्रह रहा। स्वप्नादेश के अनुसार पुरी के राजा श्रीप्रतापरुद्र के पुत्र पुरुषोत्तमजानाके द्वारा वह भेजा गया तथा श्रीगोविन्द जी के वामभाग में सिंहासन पर वह राधामूर्त्ति विराजमान हुई। श्रीरूप के "श्रीगोविन्द" श्रीसनातन के "श्रीमदनमोहन" तथा श्रीमधुपण्डित के "गोपीनाथ" आदिक विग्रह समूह श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ जी के द्वारा निर्म्मित किये गये हैं जो कि इन महानुभावों से प्रकटित हुए। वर्त्तमान श्रीगोविन्द तथा श्रीगोपीनाथ जी जयपुर में और श्रीमदनमोहन जी करोली में विराजमान हैं।

श्रीरूप-सनातन जी की वृन्दावन मे स्थिति इस प्रकार की थी—

अनिकेतन दुँहे वने यत वृक्षगण।
एक एक वृक्षतले एक रात्रि शयन॥
विप्रगृहे स्थूल भिक्षा काँहा माधुकरी।
शुष्क रुटि चाना चावाय भोग परिहरि॥
करोया मात्र हाते कन्था छिंडा बाहिर्व्वास।
कृष्णनाम कृष्ण कथा नर्त्तन उल्लास॥
साद्ध सप्त प्रहर कृष्णभजन चारिदण्ड शयन।
नाम संकीर्त्तन प्रेमे सेहो नहे कोन दिन॥
कभु भक्तिरस शास्त्र करये लिखन।
चैतन्य कथा शुने करे चैतन्य चिन्तन।
(श्रीचैतन्यचरितामृते)

श्रीरूप-सनातन जी के बारे में भक्तमाल के टीकाकार श्रीप्रियादास जी ने कहा है कि—

वृन्दावन व्रजभूमि जानत न कोऊ प्राय,
दई दरसाय जैसी शुक मुख गाई है।
रीति हूँ उपासना की भागवत अनुसार,
लियौ रससार सो रसिक सुखदाई है॥

आज्ञा प्रभु पाय पुनि "गोपीश्वर" लगे आय,
किये ग्रन्थ भाय भक्ति भाँति सब पाई है।
एक एक बात में समात मन बुद्धि जब,
पुलकित गात दृग झरी सी लगाई है ॥(३५८ क०)

अर्थात-श्रीव्रजभूमि वृन्दावन को उस समय प्राय कोई नहीं जानता था। श्री रूप-सनातन दोनों भ्राता ने श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु जी के अनुशासन से वहाँ आकर वैसा ही दिखा दिया कि जैसा श्रीशुकदेव जी ने वर्णन किया है। आप दोनों ने उपासना की रस-राशि रीति भी श्रीभागवत के अनुसार प्रकाश की। जो रसिकजनों को अति सुखदाई है। उन्हीं की ही कृपाकटाक्ष से आज प्रेम की पोथी पढ़ी जाती है।

श्रीरूपगोस्वामी जी के द्वारा विरचित ग्रन्थावली—(१) भक्ति-रसामृतसिन्धु, (२, उज्ज्वलनीलमणी, (३) दानकेलिकौमुदी, (४) श्रीलघुभागवतामृत, (५) श्रीहंसदूत, (६) उद्धवसन्देश, (७) विदग्धमाधवनाटक, (८) ललितमाधवनाटक, (९) नाटकच-न्द्रिका, (१०) पद्यावली, (११) स्तवमाला, (१२) सामान्य-विरुदावलीलक्षण, (१३) श्रीकृष्णाभिषेक, (१४) मथुरामाहात्म्य, (१५) निकुञ्जरहस्यस्तव,(१६) श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका (प्रस्तुत)

(१) भक्तिरसामृतसिन्धु—१४६३ शाक में इसका प्रणयन हुआ था। इस में पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर चार विभाग हैं। पूर्वविभाग में स्थायिभाव-उत्पादक सामान्यभक्ति, साधनभक्ति, भाव तथा प्रेमभक्ति भेद से चारि लहरी, दक्षिणविभाग में विभाव, अनुभाव, सात्त्विक, व्यभिचारी तथा स्थायिभाव भेद से पाँच लहरी, पश्चिमविभाग में मुख्यभक्तिरसनिरूपण नामक शान्तरस, प्रीति या दास्यभक्तिरस, प्रेयो वा सख्यभक्तिरस, वात्सल्यभक्ति-रस तथा मधुरभक्तिरस भेद से पाँच लहरी, उत्तरविभाग में गौण-

हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक, वीभत्स भक्तिरस,रसो की मैत्रवैरस्थिति तथा रसाभास ये नौ लहरी है। इस मे सर्व समेत २१४१ श्लोक हैं। इस की श्रीपाद जीवगोस्वामी जी विरचित "दुर्गमसगमनी" श्रीमन् मुकुन्ददासगोस्वामिकृत "अर्थरत्नाल्प-दीपिका' तथा श्रीलविश्वनाथचक्रवर्त्तिजी कृत "भक्तिसारप्रदर्शिनी" ये तीन टीका हैं। "श्रीरामनारायणविद्यारत्न के द्वारा बहरमपुर से जीवगोस्वामिकृत टीका तथा बंगानुवाद के साथ,श्रीयुक्तदामोदरलाल जी शास्त्री महोदय के द्वारा काशी से उक्त टीका के साथ देवाक्षर में, श्रीयुक्त हरिदासदास महोदय के द्वारा उक्त तीन टीका तथा प्राचीन छन्दबद्ध बंगभाषा पयार के साथ वृहदाकार में बंगाक्षर में प्रकाशित हुआ है। श्रीराधागोविंद के अप्राकृत रसपरिपाटी जानने के लिये यह ग्रन्थ सर्वोपरि प्राथमिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ को बिना देखे कोई वृन्दावन का मधुमय रसराज्य में प्रवेश नहीं कर सकता है।

(२) उज्वलनीलमणि—वास्तविक यह ग्रंथ भक्तिरसामृतसिन्धु का उत्तरार्द्ध है। भक्तिरसामृतसिन्धु में जिस शृङ्गाररस का अगाध, अपाररूप से उद्देश्य किया गया है, इस में उस का विशालरूप से वर्णन है। इस में राधागोविन्द के शृंगाररस का परिपाटी के साथ सविस्तर वर्णन है। इस मे नायकभेद, सहायभेद, श्रीहरिप्रिया, श्रीराधा, नायिकाभेद, यूथेश्वरीभेद, दूतीभेद, सखीभेद, हरिवल्लभा, उद्दीपनविभाव, अनुभाव, सात्त्विक, व्यभिचारी, स्थायिभाव, शृङ्गारभेद, ये पन्द्रह प्रकरण हैं। श्लोक संख्या १४४३ हैं। इस की श्रीजीवकृत "लोचनरोचनी" तथा श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्ती जी कृत 'आनन्दचन्द्रिका'टीका है। इस का श्रीशचीनन्दनविद्यानिधि.के द्वारा विरचित'उज्वलचन्द्रिका'नामक बंगपयार में पद्यानुवाद है। यह ग्रंथ मूल तथा दोनो टीका के साथ सानुवाद बंगाक्षर में श्रीरामनारायण विद्यारत्न के द्वारा,बम्बई निर्णयसागर प्रेस से मूल तथा दोनों टीका

के साथ देवाक्षर में प्रकाशित हुआ है। राधागोविन्द के दिव्य शृङ्गाररस को अवगत करने के लिये यदि हृदय में इच्छा है तो इस का सरस अवलोकन अवश्य करें।

(३) दानकेलिकौमुदी—यह उपरूपक भेद के अन्तर्गत "भाणिका" नामक एकांक नाटक है तथा १४७१ शाक में इस की रचना हुई है। ललितमाधव नाटक का पाठ से जब श्रीदासगोस्वामी जी की प्रबल विरहदशा अत्यन्त बढ़ गई थी उस समय उनका शरीर धारण असम्भव हो उठा तब उन को सुस्थ करने के तथा रसान्तर में प्रवेश कराने के लिये हास्यपूर्ण दानलीलात्मक इस की रचना की गई थी। यह ग्रन्थ बहरमपुर से टीका तथा अनुवाद के साथ बंगाक्षर में प्रकाशित हुआ है।

(४) लघुभागवतामृत – इस में दो खण्ड हैं। पूर्वखण्ड का नाम कृष्णामृत और उत्तरखण्ड का नाम भक्तामृत है। कृष्णामृत में श्रीकृष्ण के विविध स्वरूपों का सविस्तार निरूपण है। स्वयंरूप, तदेकात्मरूप के विलास तथा स्वांश रूप से दो भेद, आवेश, प्रकाश, अवतारतत्त्व, अवतारलक्षण, प्रथम द्वितीय-तृतीय भेद से त्रिविध पुरुषावतार, त्रिविध गुणावतार, पच्चीस लीलावतार, चौदह मन्वन्तरावतार, चार युगावतार, अन्य प्रकार से फिर आवेश-प्राभव-वैभवावस्थ तथा परावस्थ भेद से चार प्रकार अवतार, ग्यारह प्राभव अवतार, एक्कीस वैभवावस्थ अवतार, नृसिंह-दाशरथीराम-श्रीकृष्ण भेद से तीन प्रकार परावस्थ अवतार, श्रीकृष्ण का पूर्णतमत्व, उन के व्रज - मधुपुरी-द्वारका-गोलोक चार धाम का विचार, समस्त अवतारों से श्रीकृष्ण का माहात्म्य अधिक, अवतारों का देह देहि भेद निरासन, लीलानित्यता, लीलाओं का भेद विचार ये सब विशेष रूप से विवेचित हुए हैं। द्वितीयखण्ड में भक्तों का श्रेणी विभाग, श्रीराधिका का सर्वश्रेष्ठत्व ये सब विचार सन्निवेशित है। वस्तुतः

श्रीपादसनातनगोस्वामि ने "वृहद्भागवतामृत" ग्रन्थ में कथाच्छल से जिन सिद्धान्तों का लिपिबद्ध किया है उन्हीं को ही श्रीरूपगोस्वामि चरण ने इस ग्रंथ में प्रमाणों के द्वारा सुदृढ़ किया है। इस की श्रीबलदेवविद्याभूषणकृत 'सारङ्गरङ्गदा' तथा श्रीवृन्दावनतर्कालङ्कार कृत "रसिकरङ्गदा"नामक दो टीका प्राप्त होती हैं। यह ग्रंथ विद्याभूषण कृत टीका के साथ वेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई से देवनागराक्षर में, विद्याभूषण कृत टीका के साथ सानुवाद बंगाक्षर में श्री अतुलकृष्णगोस्वामि के द्वारा, वृन्दावनचक्रवर्त्ती कृत टीका के साथ सानुवाद बंगाक्षर में श्रीरामनारायणविद्यारत्न के द्वारा, दोनों टीका के साथ सानुवाद बंगाक्षर में श्रीगौरसुन्दरभागवतदर्शनाचार्य्य के द्वारा प्रकाशित हुआ है। साङ्गोपाङ्ग श्रीकृष्ण तत्व जाननेके लिये यह सर्वोपरि ग्रन्थ है।

(५) हंसदूत—यह कविवर कालिदास जी कृत "मेघदूत"की भाँति अति अद्‌भुत दूतकाव्य है। इस में विशेषता यह है कि यह श्रीराधागोविन्द के अप्राकृत विप्रलम्भरस का उद्‌ङ्कण किया गया है। श्रीललिता जी, विरहविधुरा श्रीराधिका की दशाओं का वर्णन करती हुई एक हंस के लिये मथुरापुरी में श्रीकृष्णके पास भेज रही हैं। यदि विरहरस का अनुभव करने में इच्छा है तो इस ग्रन्थ को अवश्य देखें। इसका अवलोकन करनेपर प्राकृतरस से चित्रित मेघदूत फीका पड़ जायेगा। इस में १४२ श्लोक हैं। शिखरिणी छन्द से इस की रचना की गई। यह ग्रन्थ जीवानन्दविद्यासागर के द्वारा सम्पादित नागराक्षर में, मूल तथा टीका के साथ श्रीराधाचरणगोस्वामि वृन्दावनके द्वारा नागराक्षर में,श्रीविभासप्रकाशगांगुलीमहाराय जी के द्वारा मूल-टीका तथा सानुवाद बंगाक्षर में प्रकाशित हुआ है।

(६) उद्धवसन्देश—इस में मन्दाक्रान्ता छन्द से विरचित १३१ श्लोक हैं। नायक शिरोमणि श्रीकृष्ण मथुरा से उद्धव जी को

दूत बनाकर विरहविधुरा गोपाङ्गनाओं को सान्त्वना देने के लिये भेज रहे हैं। भागवत जी में इस का सामान्य रूप से निर्देश है। उसी को स्फुट कराने के लिये श्रीरूप ने इस की रचना की। किस को किस प्रकार संवाद देकर सान्त्वना देना है तथा किस मार्ग में किस प्रकार जाना है इन सब बातों को श्रीकृष्ण ने उद्धव जी को समझाया था इस में इस का सरस वर्णन है।

यह ग्रन्थ श्रीजीवानन्दविद्यासागर के द्वारा नागराक्षर में, श्री-मधुसूदन तत्त्ववाचस्पति के द्वारा "भक्तिप्रभाकार्य्यालय" आलाटी से टीका तथा अनुवाद के साथ बंगाक्षर में प्रकाशित हुआ है।

(७) विदग्धमाधवनाटक—इस की रचना समाप्ति १४५५ शकाब्द में है तथा इस में सात अंक हैं। प्रथमांक में वेणुवादन-विलास, द्वितीय में मन्मथलेख, तृतीय में राधिकासंगम, चतुर्थ में वेणुहरण, पञ्चम में श्रीराधिकाप्रसादन, षष्ठ में शरदविहार तथा सप्तम में गौरीतीर्थ में दोनों का विहार वर्णित हैं। ऐसे ही तो श्री-रूप का कवित्वमाधुर्य्य समस्त दिशाओं में फैला हुआ है, उस में फिर श्रीराधाकृष्ण के अनन्त सौन्दर्य्य माधुर्य्यमय रससागर की अनन्त तरंगावली से परियुक्त हो रहा है। प्रायिक और कादाचि-त्किलीला का समावेश कर एक नाटक रचना करने की इच्छा ग्रन्थकार की पहले रही। पश्चात् सत्यभामादेवी तथा श्रीमन् महा-प्रभु की आज्ञा से दोनों नाटक की रचना की। विदग्धमाधव में व्रजलीला का वर्णन है। इस में धीरोदात्त तथा लालित्यगुण युक्त श्रीव्रजेन्द्रनन्दन नायक और श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीराधा प्रधान ना-यिका हैं। स्वयं महाप्रभु ने इस के श्लोकों का आस्वादन किया तथा श्रीरामानन्दराय, श्रीस्वरूपगोस्वामि आदिक भक्तों को आस्वा-दन कराया। यदि अभिनय रूप से श्रीराधाकृष्ण लीलाका आस्वादन करने की इच्छा है तो श्रीरूपगोस्वामी के द्वारा विरचित इस विद-

ग्धमाधव नामक नाटक का अवलोकन कीजिये। यह ग्रन्थ श्रीरामनारायणविद्यारत्न के द्वारा टीका तथा अनुवाद के साथ बंगाक्षर में, नागराक्षर में निर्णयसागरप्रेस बम्बई से, श्रीसत्येन्द्रनाथबसु के द्वारा वसुमती आफिस से बंगाक्षर में प्रकाशित हुआ है।

यह ग्रन्थ प्रेमानन्दरस का अत्युच्च तरंगमय महासागररूप है। इसमें ६४ कलाधारी श्रीविदग्धमाधव नायक रूपसे निर्णीत हुए हैं। इसका श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्तीजी के शिष्य श्रीकृष्णदेवसार्वभौम के द्वारा विरचित टीका तथा यदुनन्दनठाकुर विरचित "रसकदम्ब" नामक पद्यानुवाद है।

(८) ललितमाधवनाटक—पुरलीला को व्रजलीला के आवरण में रखने के लिये इस की रचना हुई है। यह आकार में तथा घटनासन्निवेश में विदग्धमाधव से बृहत् है। पात्र-पात्री की संख्या भी इस में अधिक है। इस में विप्रलम्भरस का चूडन्त प्रतिपादन किया गया है और चतुर्थाङ्क में 'गर्भाङ्क' का सन्निवेश है। पौर्णमासीदेवी ने भरतमुनि के निकट प्रार्थना कर एक अपूर्व रूपक नाटक की सृष्टि की। पश्चात् नारद जी ने उसे तुम्बुरु को दान किया और तुम्बुरु ने गन्धर्वों को सिखाया। उद्धव जी तथा पौर्णमासी के प्रयत्न से मथुरा में उस का अभिनय हुआ है। इस में व्रजलीला का अभिनय है। विरहातुर स्वयं श्रीकृष्ण इस गर्भाङ्क के दर्शक हैं। उस में निज रूपमाधुर्य्य में विमोहित होकर उस का आस्वादनार्थ श्रीकृष्ण ने राधासारूप्य की वाञ्छा की। फलतः उन को गौरागरूप से अवतीर्ण होना पड़ा।

प्रथमाङ्क में—सन्ध्याकालीन विहार-उत्सव, द्वितीय में शंखचूडवध, तृतीय में श्रीकृष्ण का मथुरागमन, श्रीकृष्ण के लिये श्रीराधिका का विरह, श्रीराधिका के लिये सखियों का विरह, सखियों का पारस्परिक विरह, चतुर्थ में श्रीराधाभिसार, पञ्चम में चन्द्रावलीलाभ,

षष्ठ में ललिताउपलब्धि, सप्तम में नववृन्दावनसंगम, अष्टम में नववृन्दावनविहार, नवम में चित्रदर्शन, दशम में पूर्णमनोरथ वर्णित है। इस की रचनाकाल १४५६ शकाब्द है। इस का श्रीनित्यानन्दवंशोद्भव श्रीस्वरूपगोस्वामि विरचित "प्रेमकदम्ब" नामक पद्यानुवाद है। श्रीजीवगोस्वामि जी के शिष्य श्रीराधाकृष्णदास जी टीकाकार हैं। कोई कोई इस के टीकाकार श्रीचक्रवर्त्ती जी हैं, ऐसा कहते हैं। यह ग्रन्थ मूल-टीका-अनुवाद के साथ श्रीरामनारायणविद्यारत्न के द्वारा बंगाक्षर में, श्रीसत्येन्द्रनाथवसु के द्वारा बंगाक्षर में प्रकाशित हुआ है।

(९) नाटकचन्द्रिका—विदग्धमाधव और ललितमाधव के लक्षण, उदाहरण तथा लक्ष्य विषयों का समन्वय के लिये इस की रचना हुई है। नाटकों का प्रत्येक (समस्त) लक्षण ललितमाधव में व्यक्त है। इसीलिये ग्रंथकार ने इस में प्रायः सर्व्वत्र ललितमाधव का उदाहरण दिया है। यह ग्रन्थ भरत जी का नाट्यशास्त्र तथा शिंगभूपाल का रसार्णवसुधाकरादि प्राचीन नाट्यशास्त्रों की विचारधारा से लिखा गया है। भरतमुनि के साथ असमत होने के कारण साहित्यदर्पणीय प्रक्रिया प्रायः परित्याग की गई है। नाटकों के समस्त लक्षण इस में सुन्दरता से सन्निवेश किये गये हैं। वैष्णवसमाज में नाट्यरीति ज्ञात करने में यह सर्व्वोच्च ग्रंथ है। इसकी विद्याभूषण की टीका है ऐसा सुना जाता है। यह ग्रन्थ श्रीरासविहारीसांख्यतीर्थ, कासिमबाजार निवासी के द्वारा अनुवाद के साथ प्रकाशित हुआ है।

(१०) पद्यावली—इस में प्राचीन तथा ग्रन्थकार के समसामयिक १२५ जन कवियों के द्वारा विरचित ३८६ श्लोकों का समाहृत किया गया है। ग्रन्थकार के निजरचित पद्य प्रायः ३४।३५ संख्या में हैं। श्रीरूपगोस्वामी ने निज इच्छा से पद्यों को श्रेणीबद्ध

कर के प्रकरणरूप से सन्निवेश किया है। आप उपसंहार मे स्वयं सूचित करते हैं कि ग्रथाकारमे सन्निवेश के कारण श्रीजयदेव अथवा विल्वमंगल आदि की कविताओं को बाद देकर, जिन के ग्रन्थाकार मे सन्निवेश नहीं हैं अथवा जो इतस्ततः बिखर के पड़े हुए हैं अथच श्रुतिधर भक्तों के मुख से जो सुने गये हैं, उन सब का एकत्र कर हम समावेश करते हैं। इस में श्रीराधागोविन्द के विभिन्न रस की उपासना रूप श्लोकों का समावेश है। यह- ग्रन्थ मूल, टीका तथा अनुवाद के साथ बगाक्षर में श्रीरामनारायणविद्यारत्न जी के द्वारा, डाक्टर सुशीलकुमार दे, ढाका विश्वविद्यालय के द्वारा नागराक्षर में, बम्बई वेङ्कटेश्वरप्रेस से नागराक्षर में प्रकाशित हुआ है।

(११) स्तवमाला—यह ग्रन्थ पहले इतस्ततः विक्षिप्त अवस्था मे रहा पश्चात् श्रीपादजीवगोस्वामी ने उन सब का एकत्र मालाकार में गूँथ कर स्तवमाला नाम धरा। पहले महाप्रभु के तीन अष्टक, पश्चात् श्रीकृष्ण के १५ स्तव, श्रीराधिका के ६, श्रीयुगलकिशोर जी के ४, गोविन्दविरुदावली, नन्दोत्सव से लेकर कंसवध पर्यन्त अष्टदश छन्द, श्रीगोवर्द्धनोद्धार, पुनः वस्त्रहरण, श्रीरासक्रीड़ा, स्वयमुत्प्रेक्षितलीला, प्रहेलिका, श्रीललितोक्त तोटकाष्टक, चक्रबन्धादि चित्रकाव्य, गीतावली, लीलाष्टक, यमुनाष्टक, गोवर्द्धनाष्टक, दो वृन्दावनाष्टक, श्रीकृष्णनामाष्टक सन्निवेशित हैं। यह ग्रन्थ श्रीरामनारायणविद्यारत्न के द्वारा मूल–टीका तथा अनुवाद के साथ बंगाक्षर में, बम्बई निर्णयसागरप्रेस से देवनागराक्षर मे प्रकाशित हुआ है।

(१२) सामान्यविरुदावलीलक्षण—साहित्यदर्पणकार ने विरुद का लक्षण इस प्रकार किया है "गद्यपद्यमयी राजस्तुतिर्विरुदमुच्यते। अर्थात् गद्य पद्यमयी राजस्तुति विरुद है। जैसा कि विरुदमणिमाला। श्रीगोस्वामिचरणों ने भी राज राजेश्वर श्रीकृष्ण-

चन्द्र अथवा भगवान् श्रीगौरचन्द्र को काव्य के नायक बनाकर विरुद छन्द में अनेक गुणगरिमा वर्णनमय विरुदावली की रचना की। वे सब गोविन्दविरुदावली, श्रीरागविरुदावली, गोपालविरुदावली, निकुञ्जकेलिविरुदावली हैं। विरुद में छन्दों का अनेक प्रकार भेद है। उन सब लक्षणों को ज्ञात कराने के लिये श्रीपादरूपगोस्वामि जी ने सामान्यविरुदावलीलक्षण नामक ग्रन्थ लिखा है। श्रीहरिदासदास महोदय के द्वारा यह ग्रन्थ बंगाक्षर में प्रकाशित हुआ है।

(१३) कृष्णाभिषेक—यह ग्रन्थ श्रीहरिदासदास जी के द्वारा देवनागराक्षर में प्रकाशित हुआ है। श्रीकृष्ण की अभिषेकविधि इस से भली भाँति जानी जाती है। यह वैदिकप्रयोग से अलङ्कृत हो रहा है। वैष्णवमात्र के यह परम आवश्यकीय स्मृति ग्रन्थ है।

(१४) मथुरामाहात्म्य – इस का उद्देश्य श्रीरूप सनातन जी की जीवनी में मैंने दिया है। सङ्क्षेपतः ब्रजमाहात्म्य ज्ञात कराने में यह अत्युच्च ग्रन्थ है। महाप्रभु के आदेश से इस ग्रन्थ का सङ्कलन हुआ है। इसमें अनेक शास्त्रप्रमाणों के द्वारा ब्रजमण्डल की महिमा दिखलाई गई है। श्रीहरिदासदास जी के द्वारा बंगाक्षर में इस का प्रकाशन हुआ है।

(१५) निकुञ्जरहस्यस्तव—निकुञ्जविलास वर्णनात्मक ३२ श्लोकों से यह स्तव सङ्कलित किया गया है। श्रीपादराधिकानाथ गोस्वामि जी ने रहस्यार्थप्रकाशिका नामक इस की टीका की। श्रीवंशीवदनठाकुर महोदय के द्वारा बंगभाषा में त्रिपदीछन्द में इस का अनुवाद किया गया है। हाल में मैंने हिन्दी अनुवाद के साथ देवाक्षर में इस का प्रकाशन किया है। ताड़ाशवाली बगीची से बंगानुवाद तथा वंशीवदनठाकुर जी के पयार और श्रीराधिकानाथगोस्वामी जी की टीका के साथ बंगाक्षर में बहुत पहले यह प्रकाशित हुआ था।

(१६) प्रस्तुत श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका—इस में दो खण्ड हैं। बृहत् और लघु। बृहत्खण्ड का रचनासमय १४७२ शकाब्द श्रावणमास है। भजजनों के अनुसार श्रीकृष्ण की सेवा करने के लिये तथा भजजनों के आनुगत्य होकर सेवाप्राप्ति के लिये श्रीकृष्ण व उन के परिकरों के यावतीय तथ्य ज्ञात करना परम आवश्यक है। इसी लिये ही श्रीपादरूपगोस्वामी जी ने इस ग्रन्थ का निर्म्माण किया है। इस में सर्व्व समेत ४५८ श्लोक हैं। इस ग्रन्थ की महिमा मादृश तुच्छ व्यक्ति क्या वर्णन कर सकता है। रसिकों के समक्ष यह ग्रन्थ प्रस्तुत होकर मौजूद है। प्रेमी पाठकगण इसे आप ही आप अवगत कर लेंगे। इस का हिन्दी अनुवाद के साथ देवाक्षर में प्रकाशन की बहुत दिवस से इच्छा थी। आज गुरु गौरांगगणों की पुनीत कृपा से यह आशा फलवती हुई। इस समय इस का प्रकाशन करने का और एक प्रधान कारण यह है कि—यह ग्रंथ लक्ष्मीवेंकटेश्वर कल्याण मुंबई में १८३८ शकाब्द, संवत् १९७३ में माथुरचातुर्वेदिपण्डित श्रीकीर्त्तिचन्द्रशर्म्मा जी के द्वारा विरचित भाषानुवाद—अन्वय के साथ प्रकाशित हुआ है। बड़ी खेद की बात यह है कि प्रकाशक ने इस में से ३१९ श्लोकों को हटा कर केवल १३९ श्लोक से इस की पूर्त्ति की। दूसरी बात यह है कि इस के प्रारम्भ में श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु तथा नित्यानन्दप्रभु के वन्दनात्मक पहिला श्लोकों को उड़ाय दिया गया तथा श्रीराधागोविन्द के वन्दनात्मक दूसरे श्लोक को अलग कर इस का प्रकाशन किया गया। सब से अधिक भूल यह है कि इस ग्रन्थ के प्रकाशन में ग्रन्थकार श्रीरूपगोस्वामी जी के नाम का उल्लेख नहीं दिया गया है। आशा है प्रकाशक महोदय इन त्रुटियों को सुधार कर शुद्ध रूप से प्रकाशन करें। इस ग्रन्थ का इस प्रकार भ्रमात्मक प्रकाशन से गौड़ीयवैष्णवसमाज का आन्तरिक दुःख रह गया है। इस में श्लोकों का मन्थन

भी अस्तव्यस्त किया गया है। ४४८ श्लोकों से ३१६ श्लोकों को पृथक् कर देने पर इस ग्रन्थ की महत्ता बिलकुल उड़ गई। अस्तु पाठकगण इस का ध्यान पूर्वक अवलोकन करें। यह ग्रन्थ पहले बंगाक्षर में कई संस्करण में बंगानुवाद के साथ प्रकाशित हुआ है। श्रीपादजीवगोस्वामिकृत लघुतोषणी का उपसंहार में श्रीरूपगोस्वामी की ग्रन्थतालिका में तथा भक्तिरत्नाकर में श्रीरूप की ग्रन्थतालिका में, श्रीरूपगोस्वामी जी के द्वारा "प्रयुक्ताख्यातचन्द्रिका" ग्रंथ का निर्देश देखा जाता है। अभी उस की उपलब्धि नहीं हुई है। श्रीयुक्त पुरीदास जी ने भी प्रायशः श्रीरूपगोस्वामी जी के समस्त ग्रंथ पाठभेद के साथ बंगाक्षर में मूलमात्र प्रकाशित किया है।

परिशेष में हम मथुरा, गोघाट (लक्ष्मीगली) के निवासी पं। श्रीनारायणदेवकौशिक जी को धन्यवाद देते हैं कि आपने "श्रीलीलास्तव" और "श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका" इन दोनों ग्रन्थ के अनुवाद संशोधनकार्य्य में अपना अमूल्य समय लगाकर सहाय दे चिरबाधित किया। हम "श्रीसनातनगोस्वामिचरण के द्वारा विरचित "श्रीकृष्णलीलास्तव व दशमचरित", श्रीपादरूपगोस्वामि महोदय के द्वारा विरचित "श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका", (बृहत् तथा लघु दोनों भाग), श्रीपाद श्रीकविकर्णपूर महाशय जी के द्वारा रचित "श्रीगौरगणोद्देशदीपिका", श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्ती जी के द्वारा विरचित 'संकल्पकल्पद्रुम' तथा श्रीपाद श्रीरघुनाथदासगोस्वामिचरणके द्वारा सुरचित "श्रीव्रजविलासस्तव" इन पाँच ग्रन्थों को एक ही साथ एक ही जिल्द में सञ्चित कर दिव्य पञ्चामृत रस की भाँति सानुवाद प्रकाशित कर रसिक समाज में उपस्थित करते हैं। आशा है प्रेमी रसिक समाज इस का सरस आस्वादन कर चिरबाधित करेंगे।

विनीत—

कृष्णदास (प्रकाशक)

गौडीयग्रन्थगौरवः—

ब्रजभाषा में प्रकाशित प्राचीन पुस्तकें –

१—गदाधरभट्टजी की वाणी
२—सूरदास मदनमोहनजी की वाणी
३—माधुरीवाणी (माधुरी जी कृता)
४—वल्लभरसिकजी की वाणी
५—गीतगोविन्दपद (श्रीरामरायजी कृत)
६—गीतगोविन्द (रसजानिवैष्णवदासजीकृत)
७—हरिलीला (ब्रह्मगोपालजीकृता)
८—श्रीचैतन्यचरितामृत (श्रीसुबलश्यामजीकृत)
९—वैष्णववन्दना (भक्तनामावली) (वृन्दावनदासजीकृता)
१०—विलापकुसुमाञ्जलि (वृन्दावनदासजीकृता)
११—प्रेमभक्तिचन्द्रिका (वृन्दावनदासजीकृता)
१२—प्रियादासजी की ग्रन्थावली
१३—गौराङ्गभूषणमञ्जावली (गौरगनदासजीकृता)
१४—राधारमणरससागर (मनोहरजीकृत)
१५—श्रीरामहरिग्रन्थावली (श्रीरामहरिजीकृता)

सानुवाद संस्कृतभाषा में—

१—अर्चाविधिः (संगृहित)
२—प्रेमसम्पुटः (श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्तीजीकृत)
३—भक्तिरसतरङ्गिणी (श्रीनारायणभट्टजीकृता)
४—गोवर्द्धनशतक (विष्णुस्वामी सम्प्रदायाचार्य्य श्रीकेशवाचार्य्यकृत)
५—चैतन्यचन्द्रामृत और सङ्गीतमाधव (श्रीप्रबोधानन्दजीकृत)
६—नित्यक्रियापद्धति (संगृहित)
७—ब्रजभक्तिविलास (श्रीनारायणभट्टजीकृत)
८—निकुञ्जरहस्यस्तव (श्रीमद्रूपगोस्वामिकृत)
९—महाप्रभुग्रन्थावली (श्रीमन्महाप्रभुमुखपद्मविनिर्गता)
१०—स्मरणमङ्गलस्तोत्रं (श्रीमद्रूपगोस्वामिजीकृत)
११—नवरत्नं (श्रीहरिरामव्यासजीकृत)
१२—श्रीगोविन्दभाष्यं (श्रीपादबलदेवजीकृत)

श्रीगौरगणोद्देशदीपिका और श्रीकविकर्णपूर

प्रस्तुत ग्रन्थकार श्रीपाद कविकर्णपूर गोस्वामी जी का जन्म वंगदेश के काञ्चनपल्ली (काचडापाडा) नामक समृद्धिशाली ग्राम में १५ ४ खीष्टाब्द में हुआ था। पिता का नाम श्री शिवानन्दसेन था जो कि महाप्रभु गौरचन्द्र के परम अन्तरंग भक्त हुए। कविकर्ण पूर का पहिला नाम पुरीदास था। उन के चैतन्यदास तथा रामदास नाम के दो भ्राता और थे। वे दोनों भी महाप्रभु के परिकर में हुए। पतितपावन श्री प्रभु ने जीव उद्धारार्थ सन्यासाश्रम का ग्रहण कर माता की आज्ञा और भक्तों की युक्ति से नीलाचल धाम में वास कर परम मनोहर राधाभाव का आस्वादन किया। लाख लाख लोगों के साथ स्वीय श्रीकृष्ण नाम के सङ्कीर्तन, उद्दण्डनृत्य, भक्त गोष्ठी एवं श्रीजगन्नाथ दर्शनादि में वे दिन का समय यापन करते थे तथा रात्रिमें स्वरूप,श्रीरामराय आदि परम अन्तरंग भक्तोंके द्वारा राधाभाव का आस्वादन करते थे। श्रीकृष्ण के मथुरा गमन में श्रीराधिकारानी की जो विरह दशा होती थी आप निरन्तर उसी भाव में आविष्ट रहते थे। आप के अवतीर्ण होने का प्रधान कारण तो इस राधाभाव का आस्वादन करना था। आप निरन्तर हाय हताश करते हुए रह उठते थे कहाँ मेरे प्राणनाथ ? कहाँ श्रीव्रजेन्द्रनन्दन ? कहाँ जाऊँ कहाँ पाऊँ,कौन उनका उद्देश कहेगा। उनके बिना मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है,प्राण फटता जा रहा है।"यह दशा अति चमत्कार थी। आहार नहीं,निद्रा नहीं,वे निरन्तर व्याकुल रहतथे। कभी तो प्रेम विकार से कूर्म्माकार हो जाते थे। कभी व तपायमान सुवर्णपिण्ड की भाँति श्रीअङ्ग बन जाता था। कभी तो हाथ पाँव के जोड(सन्धि)खुल जाने के कारण दीर्घाकार हो जाते थे। बलिहारी प्रेम की पराकाष्ठा, बलिहारी राधाभाव का आस्वादन, इसीलिये ही वे तो महाप्रभु नाम से प्रसिद्ध हुए। गुण्डिचायात्रा में जगन्नाथदेव के रथाग्र में आप

परिकरों से वेष्टित होकर मधुर नृत्य विनोद करते थे। उनका रथाग्र नर्तन अति अद्भुत था। रथ-यात्रा उपलक्ष में प्रभु का दर्शन तथा नृत्य विहार देखने के लिये प्रति वर्ष गौडदेश से हजारों अद्वैतादि भक्त गण शिवानन्दसेन की अध्यक्षता में आते थे। उन सब का मार्ग समाधान का भार प्राय शिवानन्द के ऊपर रहता था। एक बार रथ-यात्रा के समय शिवानन्दसेन ने गौडदेश से आकर महाप्रभु का दर्शन किया। संग में उनकी गर्भवती पत्नी भी थी। प्रभु ने कहा शिवानन्द ! अब के तुम्हारा एक आश्चर्य्य पुत्र होगा। उस का नाम परमानन्ददास रखना। अत पुरी में जन्म होने के कारण उनको सब कोई पुरीदास भी कहा करते थे। कुछ काल पश्चात् जब कर्णपूर ४ वर्ष वयस के थे उन के पिता ने हजारों भक्तों के बीच गौडदेश से आकर महाप्रभु का दर्शन किया। सग में बालक पुरीदास रहे। बालक महाप्रभु का दर्शन कर खेलते हुए उनके चरण में गिर गया। प्रभु ने कहा—परमानन्द ! हरिं वद अर्थात् हरि कहो। बालक ने कुछ नहीं बोला। प्रभु ने स्वरूप से कहा, हे स्वरूप ! मैंने जगत् मे हरिनाम की घोषणा की। सिंह व्याघ्र को भी हरि कहला कर नचाया। परन्तु बडी आश्चर्य्य की बात यह है कि यह शिवानन्द का पुत्र हरि नाम नहीं लेता।

स्वरूप ने कहा-प्रभु ! इसने आप के नाम को मन्त्र रूप मान लिया है। इसलिये आप के कहने पर भी वह नहीं कहता। बालक देखते देखते प्रभु के चरण का अ गूठा चूसने लगा। प्रभु उसके मुख में अ गूठा रख कर कहने लगे अब तो कुछ कहो। उस समय अपठित बालक ने कहा—

श्रवसो कुवलयमक्ष्णोरञ्जनमुरसो महेन्द्रमणिदाम ।
वृन्दावनरमणीना मण्डनमखिल हरिर्जयति ॥

अर्थात्-व्रजरमणियों के अखिल भूषण स्वरूप श्रीहरि की जय

हो। जो उनके कर्णों में नीलकमल, नेत्रों में काजर एवं वक्षः में इन्द्रनीलमणिहार स्वरूप हैं। बालक के मुख से इस प्रकार अद्भुत श्लोक सुन कर भक्तगण परम विस्मित हो गये। प्रभु ने परम प्रसन्न होकर तब से उनका नाम कविकर्णपुर रखा। अंगुष्ठ लेहन के छल से प्रभु ने उन्हें निज शक्ति सञ्चार कर कवि मुकुटमणि बना दिया। इसके पश्चात् पुरीदासजी प्रभु कृपा से उनके परिकरों में महान् पंडित कविमुकुटमणि हुए। इस विषय की साक्षी उन के द्वारा विरचित श्रीआनन्द वृन्दावन-चम्पू है। ये पहले ब्रज में गुणचूड़ा सखी रहे। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थ सकल ये हैं–(१) श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक, (२) आनन्दवृन्दावनचम्पू, (३) श्रीचैतन्य-चरितमहाकाव्य, (४) प्रस्तुत श्रीगौरगणोद्देशदीपिका, (५) कृष्णाह्निककौमुदी, (६) अलङ्कारकौस्तुभ, (७) आर्य्याशतक।

(१) श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक—इस की रचना १४६४ शकाब्द में हुई थी। महाप्रभु के अप्रकट होने के पश्चात् उनके विरह से पीड़ित उडिष्या के राजा श्रीप्रतापरुद्र जी की आज्ञा से इस नाटक का अभिनय हुआ था। इस में १० अङ्क हैं। अभिनय रूप से प्रभु-लीला का वर्णन होने का कारण यह ग्रन्थ सर्व्व चित्ताकर्षक हो रहा है। इस की परिपाटी अति मनोहर है। अभिनयरूप से प्रभु-लीला का आस्वादन करन वालों के लिये यह परम उपादेय ग्रन्थ है। इस में फिर गर्भाङ्क अति उपादेय वस्तु है। तृतीयअङ्क में गर्भाङ्क का निवेश है। उस में प्रभु ने अद्वैतादि भक्तों के साथ ब्रजविहारी श्रीकृष्ण की दान-लीला का अनुकरण किया है। स्वयं आप राधिका बने, अद्वैत आचार्य्य को श्रीकृष्ण तथा श्रीवासपंडित को नारद बनाया अन्यान्य भक्तगणों ने अन्यान्यरूप धारण किये। यह ग्रन्थ बम्बई से देवाक्षर में प्रकाशित हो चुका है। सानुवाद बंगाक्षर में भी इस का प्रकाशन हो गया है।

(२) आनन्दवृन्दावनचम्पू—यह महाप्रभु की करुणाशक्ति से उत्थित वाग्विभूती रूप है। इस में २२ स्तवक हैं। जिन में श्रीकृष्ण जन्म से लेकर रासलीला पर्यन्त अपितु होरीलीला का वर्णन है। दशमस्कन्ध के पूर्वार्द्ध ब्रजलीला का क्रम से यह ग्रन्थ निर्माण किया गया है। प्रथमस्तवक में श्रीवृन्दावन का वर्णन है। यह ग्रन्थ संस्कृत साहित्य भांडार में सर्वोपरि है। पण्डित समाज में तथा भागवत वक्ताओं के समाज में इसकी परम प्रसिद्धि है। अधिक बोलना पृष्ठपेशण मात्र है। बम्बई से देवाक्षर में यह ग्रन्थ पुस्तकाकार में तथा मथुरा से खोला पत्राकार में श्रीचक्रवर्त्ती जी की सुखवर्त्तिनी टीका के साथ प्रकाशित हो चुका है।

(३) श्रीचैतन्यचरितमहाकाव्य—विविध छन्दोबद्ध २० सर्गों में इस की रचना की गई है। महाप्रभु के अन्तर्द्धान के ६ वत्सर पश्चात् अर्थात् १४६४ शकाब्द में इस ग्रन्थ की समाप्ति हुई। प्रभु के पार्षद प्रवर, हनुमान् जी के अवतार श्रीमुरारिगुप्त विरचित कड़चा का आधार लेकर इस की रचना की गई है। महाप्रभु का चरित्र जानने में यह अति अपूर्व ग्रन्थ है। इस का प्रकाशन बंगाक्षर में हो चुका है।

(४) कृष्णाह्निककौमुदी—यह ग्रन्थ अष्टकालीन लीला स्मरण के लिये परम उपयोगी है। श्रीराधागोविन्द की अष्टकालीन दैनन्दिनी लीला इस में सुन्दर रूप से वर्णन की गई है। इस की रचना परिपाटी भी अति अद्भुत है। श्रीयुक्त हरिदास दास जी के द्वारा बंगाक्षर में इस का प्रकाशन हो गया है।

(५) अलङ्कारकौस्तुभ—यह काव्यप्रकाश तथा साहित्यदर्पण की भाँति एक अलङ्कार ग्रन्थ है। इस में विशेषता यह है कि श्रीराधागोविन्द सम्बन्धी अप्राकृत रस को लेकर चित्रण किया गया है। इस में १० किरण हैं। प्रथम किरण में काव्य का सामान्य लक्षण

और विचार, द्वितीय में शब्दशक्ति अभिधा-लक्षणा-व्यञ्जनादि वृत्ति का वर्णन, तृतीय में ध्वनि का निर्णय, चतुर्थ में गुणीभूत-व्यङ्ग्य का वर्णन, पञ्चम में रस परिपाटी, षष्ठ में गुण का विवेचन, सप्तम में शब्दालङ्कार, अष्टम में अर्थालङ्कार समूह, नवम में रीति का वर्णन, दशमकिरण मे काव्य के दोषों का कथन है। यह ग्रन्थ श्रीराधागोविन्द की रसरीति जानने में अति अद्‌भुत है। बंगाक्षर में श्रीचक्रवर्त्ती कृत सुबोधिनी टीका तथा बंगानुवाद के साथ यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है। बम्बई निर्णयसागर से जो अलङ्कारकौस्तुभ छपा है वह दूसरा है तथा उस के रचयिता कोई विश्वेश्वर पण्डित हैं।

(६) आर्य्याशतक-यह ग्रन्थ आर्य्या नामक मात्रावृत्त के द्वारा ११६ श्लोको में विरचित है। इस में धीरललित श्रीकृष्ण की गुणावली का वर्णन है। इस को स्तुतिकाव्य भी कहा जा सकता है। नवद्वीप निवासी श्रीयुक्त हरिदासदास महाशय के द्वारा इसका प्रकाशन हो चुका है।

(७) श्रीगौरगणोद्देशदीपिका—इस में ब्रज के परिकर महाप्रभु लीला में जिस जिस परिकर के रूप में अवतीर्ण हुए हैं,उन का उद्देश्य किया गया है। बंगाक्षर में यह ग्रन्थ कई संस्करणों में प्रकाशित हो चुका है। परन्तु एतद्‌देशवासी महाप्रभु के भक्त व प्रेमी-रसिकों के लिये यह विषय दुरुह रहा। बहुत दिन से इस को हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित करने की प्रबल इच्छा थी। गुरु-गौराङ्गगणों की कृपा से उस आशा की भी पूर्त्ति हुई।



श्रीसङ्कल्पकल्पद्रुम तथा श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्ती जी

प्रस्तुत ग्रन्थकार महामहोपाध्याय श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्ती जी का १५७६ शाक में मतान्तर १५८६ शाक में बंगदेश के मूर्शिदावाद जेला सागरदीघि थाना के अधीन देवग्राम में जन्म हुआ था। उन के पिता का नाम श्रीनारायणचक्रवर्त्ती जी है। विश्वनाथ जी ने बाल्यकाल में प्राथमिक पाठ शेष कर सैदाबाद में आकर भक्तिशास्त्र का अध्ययन किया। इस सङ्कल्पकल्पद्रुम नामक ग्रन्थ में आप ने अपनी गुरु प्रणाली का इस प्रकार उद्देश्य किया कि-बालुचर गाम्भीला निवासी श्रीनरोत्तमठाकुर जी की शाखा श्रीकृष्णचरणचक्रवर्त्ती उन का परमगुरु तथा उनके पुत्र श्रीराधारमणचक्रवर्त्ती जी दीक्षागुरु हैं। श्रीकृष्णचरण, सैदाबाद निवासी श्रीरामकृष्ण आचार्य्य के पुत्र बालुचर गंगानारायण चक्रवर्त्ती के दत्तपुत्र थे। वे परिणत वयस में सैदाबाद में वास कर भक्तिशास्त्र की अध्यापना कराते थे। इन्हीं के पास विश्वनाथ जी ने श्रीभागवतादि भक्ति ग्रन्थों का अध्ययन किया। ऐसा कहा जाता है कि यहाँ ही बैठ कर उन्होंने बिन्दु, किरण, कणा आदिक ग्रन्थ का तथा अलङ्कारकौस्तुभ की टीका का निर्म्माण किया। अप्राप्त वयस में यद्यपि उन ने दारपरिग्रह किया था तो भी उस में वे बिन्दुमात्र आकर्षित नहीं हुए। परिशेष में सकल परित्याग कर वृन्दावन के पथिक बने। वृन्दावन में आकर तात्कालीन वैष्णवसमाज के कर्णधार हुए तथा बहुत वैष्णवग्रन्थों का निर्म्माण और बहुत वैष्णवग्रन्थों की टीका कर वैष्णव समाज का प्रचुर कल्याण साधन किया। उन का वेशाश्रय का नाम हरिवल्लभ था। वे प्रगाढ़ पण्डित, महादार्शनिक, परम भक्त, महान् रसवेत्ता, श्रेष्ठ कवि, वैष्णवचूणामणि, तात्कालीन् गौडीय वैष्णवों के अध्यक्ष रूप रहे। उस समय उन के नाम से यह श्लोक प्रसिद्ध हुआ है कि-

विश्वस्य नाथरूपोऽसौ भक्तिवर्त्मप्रदर्शनात ।
भक्तचक्रे वर्तितत्वात् चक्रवर्त्याख्ययाऽभवत् ॥

अर्थात् भक्ति मार्ग दिखाने के कारण विश्व का नाथ रूप तथा भक्तिचक्र में वर्तित रहने के कारण चक्रवर्ती उन का नाम पड़ा। ये जहाँ बैठ कर श्रीभागवत लिखते थे, वहाँ वर्षा जल नहीं पड़ता था। उन के उत्तर काल में गोवर्द्धन के सिद्ध कृष्णदास बाबाजी महाशय ने मानसगंगा में डूब कर-तीन-चार दिन पीछे श्रीचक्रवर्त्तिपाद लिखित पुस्तक को जल स्पर्श रहित अवस्था में संग्रह किया था। श्रीचक्रवर्त्ती जी ने अनेकानेक वैष्णव ग्रन्थ का निर्म्माण कर वैष्णव समाज का प्रचुर उपकार किया। वे श्रीरूपगोस्वामि जी के अवतार माने जाते हैं। उन के द्वारा रचित मूलग्रन्थ-(१) श्रीकृष्णभावनामृत, (२) श्रीगौराङ्गलीलामृत, (३) ऐश्वर्य्यकादम्बिनी, (४) माधुर्य्यकादम्बिनी,(५) स्तवामृतलहरी,(६) भक्तिरसामृतसिन्धुबिन्दु, (७)उज्ज्वलनीलमणिकिरण,(८)भागवतामृतकण,(९)रागवर्त्मचन्द्रिका, (१०) गौरगणचन्द्रिका, (११) चमत्कारचन्द्रिका, (१२) प्रेमसम्पुट, (१३)व्रजरीतिचिन्तामणि,(१४) क्षणदागीतचिन्तामणि। टीकाग्रन्थ-(१) समस्त श्रीभागवत की "सारार्थदर्शिनी" (२) गीता की "सारार्थवर्षिणी" (३) उज्ज्वलनीलमणि की "आनन्दचन्द्रिका", (४) भक्तिरसामृतसिन्धु की "भक्तिसारप्रदर्शिनी", (५) गोपालतापनी की "भक्तहर्षिणी", (६) ब्रह्मसंहिता की टीका, (७) दानकेलिकौमुदी की "महती"टीका, (८) आनन्दवृन्दावनचम्पू की "सुखवर्त्तिनी", (९) अलङ्कारकौस्तुभ की "सुबोधिनी, (१०) हंसदूत की टीका, (११) श्रीचैतन्यचरितामृत की टीका, (१२) प्रेमभक्ति-चन्द्रिका की टीका इत्यादि।

(१) श्रीकृष्णभावनामृत—यह महाकाव्य मानस स्मरणोपयोगी श्रीराधागोविन्द का अष्टकालीय लीलात्मक है। इस में २०

सर्ग तथा सर्व समेत १३०६ श्लोक हैं। १६०१ शाक में इस महाकाव्य की रचना हुई थी। इस ग्रन्थ में श्लिष्ट शब्दों का प्रचुर प्रयोग रहने पर भी भीतर निगूढ़ शृङ्गाररस को व्यञ्जित किया गया है। अष्टकाल स्मरण विषय में यह अद्वितीय ग्रन्थ है। ताड़ाशाधिपति भक्तप्रवर वनमाली रायबहादुर की सहायता से यह ग्रन्थ ताड़ाश-बगीचा वृन्दावन से देवनागरी तथा बंगाक्षर में प्रकाशित हो चुका है।

(२) गौराङ्गलीलामृत—महाप्रभु की अष्टकालीन लीलात्मक श्लोकों से विरचित यह अति क्षुद्राकार ग्रन्थ है।

(३) ऐश्वर्यकादम्बिनी—इस का नाम स्वयं ग्रन्थकार ने विरचित माधुर्यकादम्बिनी में उठाया है। इस में द्वैताद्वैतवाद का विचार है। अभी तक इस ग्रन्थ का अनुसन्धान नहीं प्राप्त है।

(४) माधुर्यकादम्बिनी—इस में आठ परिच्छेद अर्थात् आठ अमृतवृष्टि है। माधुर्यकादम्बिनी तो माधुर्यकादम्बिनी अर्थात् माधुर्य की घनघटा है। बंगाक्षर में सानुवाद कई संस्करण में यह ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है। वृन्दावन चार सम्प्रदाय के श्रीरामदास शास्त्री जी के द्वारा देवाक्षर में सानुवाद प्रकाशित भी हुआ है। इस में श्रीरूपगोस्वामि के द्वारा विरचित भक्तिरसामृतसिन्धु के अन्तर्गत् भक्तिभूमिका का सविशेष सुन्दर रूप से वर्णन है। प्रेमी रसिक इस ग्रन्थ का अवश्य अवलोकन करेंगे।

(५) श्रीस्तवामृतलहरी—इस में २८ स्तव का सञ्चय है। जो कि स्तवावली तथा स्तवमाला के अनुकरण में विरचित हुई है। (१) श्रीगुरुतत्त्वाष्टक, (२) श्रीगुरुचरण स्मरणाष्टक, (३) श्रीपरमगुर्वष्टक, (४) परात्परगुर्वष्टक, (५) श्रीनरोत्तम-ठाकुर महाशयाष्टक, (६) श्रीलोकनाथाष्टक, (७) श्रीशचीनन्दनाष्टक, (८) श्रीस्वरूपचरितामृत, (९) स्वप्नविलासामृत, (१०) श्री

गोपालदेवाष्टक, (११) श्रीमदनगोपालदेवाष्टक, (१२) श्रीगोविन्दाष्टक, (१३) श्रीगोपीनाथाष्टक, (१४) श्रीगोकुलानन्दगोविन्दाष्टक, (१५) स्वयभगवत्त्वाष्टक, (१६) जगन्मोहनाष्टक, (१७) अनुरागवल्ली, (१८) श्रीवृन्दाष्टक, (१९) श्रीराधाध्यान, (२०) श्रीरूपचिन्तामणि, (२१) सकल्पकल्पद्रुम, (प्रस्तुत) (२२) निकुञ्जकेलिविरुदावली, (२३) श्रीसुरतकथामृत, (२४) नन्दीश्वराष्टक, (२५) वृन्दावनाष्टक, (२६) गोवर्द्धनाष्टक, (२७) श्रीकृष्णकुण्डाष्टक, (२८) गीतवली है। बगादर में इस का प्रकाशन हो गया है।

(६) भक्तिरसामृतसिन्धुबिन्दु—यह भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थ का सारगर्भ सक्षेप सरल सस्कृत गद्य में विरचित है। इस का देवादर मे प्रकाशन चारसम्प्रदाय वृन्दावन मे हो गया है।

(७) उज्वलनीलमणिकिरण—यह भी उज्वलनीलमणि का सारगर्भ सक्षेप सरल गद्य ग्रन्थ है।

(८) भागवतामृतकरण—यह लघुभागवतामृत ग्रन्थ का सारगर्भ सक्षेप सरल गद्य ग्रन्थ है। चार सम्प्रदाय वृन्दावन से सानुवाद देवादर म प्रकाशित हुआ है।

(९) रागवर्त्मचन्द्रिका—रागमार्ग म जाने वाले रसिकसाधकों का यह ग्रन्थ अति सुन्दर तथा परमोपयोगी है। इस में रागमार्ग का सुन्दर सरल भाषा से विचार किया गया है। देवादर में इस का प्रकाशन करने की इच्छा है।

(१०) गौरगणचन्द्रिका—इस म पहले अहंग्रहोपासना का निराकरण है।

(११) चमत्कारचन्द्रिका—यह श्रीराधागोविन्द की कौतुहल लीला रस से भरा हुआ है। श्रीकृष्ण विविध रूप धारण कर विविध छल से स्वामिनी जी से मिले है इस का इस में सरस वर्णन

है। ताडाशमन्दिर वृन्दावन से बंगाक्षर में यह छप चुका है।

(१२) प्रेमसम्पुट-इस में श्रीकृष्ण ने देवाङ्गना रूप बन कर प्रिया जी से प्रेम की शिक्षा ली। अब के रासमण्डलि इस लीला का अनुकरण करते हैं। इस का देन चक्रवर्ती जी हैं। मैंने सानुवाद देवाक्षर में इस का प्रकाशन किया है।

(१३) व्रजरीतिचिन्तामणि-आनन्द-वृन्दावनचम्पू का भाव लेकर संक्षेपमचाकार संस्कृत में रीतिगुण से इस की रचना की गई है। इस में नन्दीश्वर (नन्दग्राम) का सुन्दर वर्णन है। बंगाक्षर में प्रकाशन हो गया है।

(१४) क्षणदागीतिचिन्तामणि-इस में प्रतिपदा से लेकर प्रतिपदा पर्यन्त दोनों पक्ष की प्रत्येक तिथी में क्रम से अष्टकाल लीला का वर्णन है। यह बंगभाषा के पद्यों में संगृहीत है। इस में चक्रवर्त्ती जी के अधिकांश पद्य हैं। पद्यों में अपना नाम हरिवल्लभ रखा है।

उन के द्वारा विरचित श्रीभागवत की टीका का नाम सारार्थदर्शिनी है। पण्डित समाज में इस की परम प्रसिद्धि है। चक्रवर्त्ती की टीका सब की आदरणीया इस लिये है कि यह परम रसमयी व्याख्या-अलङ्कार से सयुक्त है। इस से भागवतरस का भली भाँति अनुभव होता है। यह देवाक्षर में अष्टटीका के साथ ताडाशमन्दिर वृन्दावन से प्रकाशित हुआ है। वर्त्तमान इस का वितरण शेष प्राय हो गया है। गीता की सारार्थवर्षिणी-टीका भी अति रसमयी भक्तिपक्षीय व्याख्या के द्वारा अलंकृत की गई है। रसमयी व्याख्या में यह सर्वोपरि है। देवाक्षर में इस का प्रकाशन परम आवश्यक है। चक्रवर्त्ती जी की समस्त टीकाएँ प्राय बंगाक्षर में प्रकाशित हो गई हैं। इन के द्वारा स्थापित विग्रह श्रीगोकुलानन्द जी वृन्दावन में विराजमान हैं। माघी शुक्ला पञ्चमी के दिवस श्रीराधाकुण्ड में

श्रीचक्रवर्त्ती जी अन्तर्हित हुए हैं। श्री वृन्दावन पाथरपुरा में इन की समाधि थी, जो वर्त्तमान गोकुलानन्द जी में अपसारित हुई है। चालुचर में इन के बराबर अभी भी मौजूद हैं। चक्रवर्त्ती जी ने रसिक समाज-वैष्णव समाज का महान् उपकार किया है। जीव-गोस्वामी जी के पश्चात् गौडीयसम्प्रदाय का जो पतनारम्भ हो उठा था उस का पुनः उद्धार चक्रवर्त्ती जी ने किया है।

गौडीयवैष्णव समाज में श्रीराधागोविन्द की परकीया उपासना की पद्धति महाप्रभु से लेकर अब तक चली आ रही है। पद्मपुराण के पातालखण्ड के वृन्दावनमाहात्म्य, सनतकुमार-संहिता के छत्ती-समाँ पटल, भागवतादि निखिल शास्त्रों से तथा रस के आदि आचार्य्य-जयदेव आदिक महानुभावों के साहित्य और चण्डीदास-विद्यापति आदिक प्राचीन रसिकों की वाणियों से यह सुसिद्ध है। श्रीजीव गोस्वामी जी के पश्चात् यह उपासना कुछ शिथिल ही पड़ गई थी। परन्तु श्रीचक्रवर्त्ती जी ने निज अकाट्य युक्ति व शास्त्र प्रमाणों से उस को सुदृढ़ कर दिया। महाप्रभु ने इस उपासना को परम स्थान दिया तथा श्रीरूप, सनातनादि गोस्वामियों के द्वारा उस का उद्घाटन करवाया। ऐसा कहा जाता है कि चक्रवर्त्ती के समय में कुछ पण्डितगणों ने परकीया उपासना के विषय को लेकर महान् वाद वितण्डा किया। परन्तु चक्रवर्त्ती जी ने निज प्रगाढ़ विद्वत्ता और अकाट्य युक्ति प्रमाणों के द्वारा उस को विचार के द्वारा परास्त कर सुदृढ़ कर दिया। पण्डितों ने वृन्दावन में एकान्त में भ्रमणकारी चक्रवर्त्ती के प्राणनाशार्थ उद्यत हुए। परन्तु उन्होंने देखा वहाँ पर चक्रवर्त्ती जी नहीं हैं। कोई एक व्रजबालिका निज दो तीन-सहचरी के साथ पुष्प बीन रही थी। पण्डितों ने पूछा! लाली! यहाँ चक्रवर्त्ती महात्मा को तुम ने देखा क्या? बालिका ने कहा-देखा तो था, परन्तु कहाँ चल दिये होंगे। बालिका का कटाक्ष-भावभङ्गि-मन्दहास्य-

सौन्दर्य से पण्डितगण मुग्ध हो गये। उन सब का हृदय कोमल हो गया। पण्डितों ने परिचय पूछने पर बालिका ने कहा मैं स्वामिनी श्री राधिका की सहचरी हूँ। इस समय स्वामिनी जी निज श्वसुरालय जावट में विराजमान हैं। उनने पुष्प चयनार्थ मुझे भेजी है। ऐसी कहती कहती वह अन्तर्द्धान हो गई तथा निज पूर्व्वस्वरूप चक्रवर्त्ती रूप में खड़ी हो गई। पण्डितों ने चक्रवर्त्ती के चरण में गिर कर क्षमा प्रार्थना की। चक्रवर्ती जी के विषय में इस प्रकार अनेक आश्चर्य बातें सुनने में आती हैं। उनके द्वारा विरचित यह संकल्पकल्पद्रुम नामक ग्रन्थरत्न रसिकों के समक्ष सानुवाद उपस्थित है। रसिक-समाज इसे कंठहार कर लेवें तो मेरा यह परिश्रम सार्थक हो जावें। अष्टकाल स्मरण की परिपाटी से यह ग्रन्थ लिखा गया है। पूज्य गोस्वामी श्रीरासविहारी शास्त्री महोदय ने अनुवाद का संशोधन कर अत्यन्त उपकार किया है।



श्रीव्रजविलासस्तव तथा श्रीदासगोस्वामी जी

आनुमानिक १४१६ शकाब्दी में वंगदेश हुगलिजिला अन्तर्गत कृष्णपुरग्राम में हिरण्यमजुमदार के अनुज गोवर्द्धन के पुत्ररूप से ग्रन्थकार श्रीपादरघुनाथदास जी का आविर्भाव हुआ था। इन के पिता-पितृव्य यद्यपि शुद्ध वैष्णव नहीं थे तो भी वैष्णव परायण परम सज्जन रहे। ये सप्तग्राम तालुक के बारलक्ष रुपैया के जागीरदार थे। श्रीरघुनाथ के दीक्षागुरु यदुनन्दन आचार्य्य हैं, जो कि श्रीअद्वैतप्रभु की शाखा में हुए। अद्वैतप्रभु के ये अन्तरंग शिष्य होने के कारण श्रीचैतन्यगत प्राण रहे। श्रीरघुनाथ के ये कुलगुरु तथा कुलपुरोहित थे। चैतन्यचरितामृत में कहा है श्रीरघुनाथ ने बाल्यकाल में श्रीहरिदासठाकुर का संग और कृपालाभ प्राप्ति की। परम पावन प्रेमावतार श्रीमन् महाप्रभु जब रामकेलि होकर कानाइनाटशाला से प्रत्यावर्त्तन कर शान्तिपुर श्रीअद्वैतप्रभु के घर पर आये, उस समय प्रभु के साथ रघु का साक्षात्कार हुआ। उन ने प्रभु का प्रेमावेश देख तप्तकाञ्चन की भाँति अङ्ग कान्ति वाले उन प्रभु के चरणों में आत्म समर्पण किया तथा अद्वैतप्रभु के द्वारा उच्छिष्ट प्राप्त होकर ये परम कृतार्थ हुए। उसी समय से उन का पूर्व भाव उच्छलित हो उठा। अब वे स्थिर न हो सके। नीलाचल जाकर प्रभु से मिलने के लिये व्याकुल हो गये। अब तो रघुनाथ अस्थिर होकर बार बार भागने लगे। पिता जी दूर से उन को धर लाते थे। इस प्रकार रघु का बार-बार पलायन देख कर एक दिवस उन की माता ने पिता से कहा—पुत्र को उन्माद हो गया है, उसे बाँध कर रखना चाहिये। पिता जी खेद प्राप्त होकर कहने लगे जब इन्द्र सम ऐश्वर्य्य और अप्सरा सम नारी बाँध नहीं सके, तब रज्जु-बन्धन से किस प्रकार बँध सकता है। जन्मदाता पिता पुत्र का प्रारब्ध नहीं मिटा सकता है। इस के ऊपर चैतन्यचन्द्र की कृपा हुई है।

चैतन्यचन्द्र के पागल को कौन रोक सकता है। उस के पश्चात् नित्यानन्द प्रभु के साथ पाणिहाटी में रघुनाथ का मिलन हुआ। प्रभु ने रघु को सान्त्वना दी और उन से चिड़ा महोत्सव कराया। रघुने राघव पण्डित के द्वारा निज भाव व्यक्त कराया। हे प्रभु! मैं बार-बार महाप्रभु के पास जाने के लिये पलायन करता हूँ, परन्तु पिता माता घर लौटा लाते हैं। मैं कर्त्तव्य शून्य हो रहा हूँ, आप की कृपा ही एक मात्र गौरचन्द्र प्राप्ति का सम्बल है। आप कृपा कीजिये। जिस से शीघ्र ही गौरचन्द्र के चरण प्राप्त करूँ। नित्यानन्द प्रभु ने निकट बुला कर कहा—रघुनाथ! तुम ने जो चिड़ा-महोत्सव कराया है, उसे महाप्रभु ने स्वयं आकर ग्रहण किया है। तुम पर कृपा करने के लिये ही उन का यहाँ आगमन हुआ है। जाओ निश्चिन्त होकर घर में रहो। अचिरात् प्रभु के चरण प्राप्त करोगे। श्रीरघु नित्यानन्दप्रभु का कृपा आशीर्वाद लेकर घर आये। "किस प्रकार महाप्रभु से मिलूँगा" निरन्तर उसी की चेष्टा रही। उस दिन से रघुनाथ घर के बाहर दुर्गामण्डप में शयन करने लगे। चार ओर रक्षकगण। किस प्रकार पलायन कर सकूँ इस सोच में हैं। एक दिवस रघु के गुरुदेव यदुनन्दन आचार्य्य वहाँ आये। उन का ठाकुर सेवक सेवा छोड़ कर स्वतन्त्र हो गया था। उसी को वश में लाने के लिये रघु के पिता से निवेदन कर रघु को संग में लेकर चल दिये। रघु गुरुदेव के साथ कुछ दूर गये और "मैं उस भृत्य को वश में कराउँगा। आप निश्चिन्त हो घर जाइये" इस प्रकार कह कर वहाँ से फिर आये। तब रघुनाथ ने मन में विचार किया—यह गृह छोड़ने का सुन्दर अवसर है। अब वहाँ से पूर्व मुख होकर नीलाचल के लिये चल दिये। मार्ग में इधर उधर देखते हुए प्रसिद्ध मार्ग छोड़ वन पथ में पन्द्रह कोस चल कर किसी गोप की बगीची में रहे। उस ने कुछ दूध पिलाया। इधर रघुनाथ के

चले जानेका महान् कोलाहल उठा। पिता ने ढूँढ़ने के लिये दश व्यक्ति भेजे तथा शिवानन्द जी के निकट विनती के साथ पत्र दिया। शिवानन्द जी भक्तों के साथ नीलाचल जा रहे थे। रघु को ढूँढ़ने वाले लोगों ने रघु को नहीं पाकर फिर आये। इधर रघु ने कभी चर्वण, कभी दुग्धपान, कभी रन्धन और कभी उपवास कर प्राणमात्र धारण करते हुए बारह दिन में नीलाचल पहुँचे। मार्ग में तीन दिन मात्र भोजन किया था। नीलाचल में प्रभु भक्तगण के साथ विराजमान हैं। रघु दूर से प्रभु के चरण में गिरे। प्रभु प्रसन्न हुए। रघु से कहा अच्छा ही हुआ। समर्थ प्रभु ने तुम को विषय गर्त्त से निकाला है। रघुनाथ को मलिन देख कर प्रभु ने स्वरूप गोस्वामी से "स्वरूप! अब से रघु तुम्हारा हुआ। तुम इस को अपने पास रखो" ऐसा कह कर रघु का हाथ देकर स्वरूप गोस्वामी को सौंपा। तब से 'स्वरूप के रघु' ऐसी सब कोई कहने लगे। श्रीरघु पहले कुछ दिन सिंहद्वार में खड़े होकर जो कुछ भिक्षा मिलती थी, उस को गृहण करते थे। प्रभु ने सुन कर कहा अच्छा ही है, रघु वैराग्य धर्म्म का पालन करता है। कुछ दिन के पीछे उस वृत्ति को छोड़ कर छत्र में माधुकरी माँगने लगे। प्रभु ने निज गोवर्द्धन-शिला और गुञ्जमाला को रघु के लिये अर्पण किया। जिन्हें शङ्करानन्द सरस्वती जी ने वृन्दावन से लाकर प्रभु को दिया था। रघुनाथ जल, तुलसी देकर आदर के साथ सेवा करने लगे। इन का चरित्र अति विस्तृत है। विशेष जानने की इच्छा हो तो चैतन्य-चरितामृत-भक्तमालादिक ग्रन्थ देख लें। उन्होंने नीलाचल में रहकर सोलह वर्ष पर्य्यन्त महाप्रभु की अन्तरंग सेवा की। जब महाप्रभु ने अन्तर्द्धान लीला की तथा उन के शिक्षागुरु श्रीस्वरूप गोस्वामीजी का अन्तर्द्धान हो गया, तब वे अत्यन्त आत्महारा होकर व्याकुल भाव से गोवर्द्धन में भृगुपात करने की इच्छा से वृन्दावन

आये। वृन्दावन में आकर उन्होंने श्रीरूप–सनातन की चरणवन्दना की। दोनों भ्राता ने उन को समझा कर शरीर त्याग नहीं करने दिया तथा अपने पास में रखा। दोनों ने महाप्रभु की यावतीय अन्तरंग–बहिरंग लीला का श्रवण उन के मुख से निरन्तर सुना। वृन्दावन में दासगोस्वामी की स्थिति व वैराग्यनिष्ठा इस प्रकार हुई। उन्होंने अन्न जल का त्याग पहले से ही तो किया था, अब केवल दो–तीन पल मात्र मट्ठा पान कर शरीर धारण करने लगे। नित्य वैष्णवोंके लिये दो हजार प्रणाम,सहस्रदण्डयत,लक्ष नाम जप, रात्रि दिन राधाकृष्ण की मानससेवा, एक प्रहर महाप्रभु का चरित्र वर्णन, तीन सन्ध्या राधाकुण्ड में स्नान, ब्रजवासी वैष्णवों का आलिङ्गन, साढ़े सात प्रहर भक्ति का साधन, केवल चारिदण्ड शयन करते थे, और वह भी कदाचित् नहीं हो पाती थी।

आप ने एक दिवस मानसिक सेवा में प्रियाप्रियतम को मानसिक खीर भोग लगा कर स्वामिनी जी का अधरामृत प्राप्त किया। उस से उन का शरीर कुछ अस्वस्थ हो गया तथा नाड़ियाँ भारी हो गईं। ऐसे ही तो वे पहले से रुग्ण रहते थे। श्रीविट्ठल जी ने दो वैद्य लाकर उन्हें दिखाया। वैद्य ने कहा इन्होंने खीर खाई है, जिससे इन की नाड़ियाँ भारी हो रही है। सब कोई आश्चर्यान्वित हुए। विट्ठल जी ने एकान्त में इसका रहस्य पूछा। उन ने मानसिक सेवा की बात सुनाई। रघुनाथ गोस्वामी जी ने जो उत्कट वैराग्य का याजन किया वह जगत् में परम आदरणीय महान् आदर्शरूप है। राधिकानिष्ठा में दास गोस्वामी जी का सर्वोच्चस्थान है। वे करुणरस का मूर्त्तिमान स्वरूप थे। विरह की चरमावस्था उन्हीं के द्वारा प्रकट हुई है।

विधि मार्ग तथा रागमार्ग से भगवान की दो प्रकार की प्राप्ति है। जिसमें शास्त्र–सद् आचरणादिकों का विधान है उस को विधि उपा-

सना श्रौर जिसमें केवल लोभ ही प्रवर्त्तित रहता है, उसे रागमार्ग की उपासना कहते हैं। परन्तु दोनों का परस्पर कुछ संसर्ग अवश्य रहता है। विधि एक ऐसी वस्तु है जो कि अन्य उच्छृंखल मार्ग से साधकों के चित्त को खींच कर केवल भगवान् में लगा देती है, जिसे साधन भक्ति कहते हैं। दूसरी रागमार्ग की उपासना में रुचि ही प्रधान रहती है, जिसे प्रेमाभक्ति कहते हैं विधि भक्ति का याजन करते हुए साधकों के चित्त में फलरूपा प्रेमाभक्ति का उदय होता है। पहिले से ही कोई विधिमार्ग को छोड़ कर रागमार्ग में प्रवेश नहीं करता है। क्योंकि उस में पतन का भय और प्रत्यवाय की सम्भावना अवश्य रहती है। पद पद में उच्छृंखलता भी आ जाती है। इस से इष्ट भगवत् वस्तु से अन्यत्र मनोऽभिनिवेश हो जाता है। इसी लिये सब कोई पहले शास्त्र मार्ग का अवलम्बन कर प्रभु की भक्ति साधना में प्रवर्त्तमान होते हैं। रागमार्ग म विधि की संकोचता हो जाती है। फलतः भक्त विधिमार्ग की अवस्था को छोड़ कर रागमार्ग में अपने को प्रवर्त्तमान करता है। जब हृदय में प्रचुर राग हो तो हम विधि को छोड़ सकते हैं। नहीं तो नहीं। राग भक्ति तो रानमहल स्वरूपा है। दूसरी विधिभक्ति उस की सुन्दर परकोटा अर्थात् गढ़ रूपा है। भक्ति कल्पवृक्ष के पत्तों का चिक्कण कोमल–सरस युक्त भीतर का अंश रागमार्ग है और कुछ कर्कश–रूखा बाहिर का भाग विधिमार्ग है। जब तक रुचि उत्पन्न नहीं होती है, तब तक सब के लिये विधिमार्ग की उपासना अवश्य कर्त्तव्य है। नित्य परिकर श्रीराधिकादि व्रज-गोपियों का प्रारम्भ से ही अनुराग रहता है, जिस को रागात्मिका भक्ति कहते हैं। इस में शास्त्रयुक्ति की अपेक्षा नहीं रहती है। गौडीय वैष्णवगण प्रायश विधिभक्ति का लेते हुए रागमार्ग में प्रवर्त्तित होते हैं। यहाँ प्रस्तुत विषय यह है कि व्रज के रहस्य को अवगत कराने के लिये श्रीरूप

सनातनादि गौड़ीय आचार्यों ने व्रज-सम्बन्धि अनेकानेक ग्रन्थ की रचना की है। इस विषय में भक्तमालकार श्रीनाभा जी ने कहा है "व्रजभूमि-रहसि राधाकृष्ण भक्त तोष हेतु उद्धार कियो" इत्यादि।

श्रीरूपगोस्वामि चरण ने वाराहपुराण, आदिपुराण, स्कन्दपुराणादि समस्त शास्त्रों का आधार लेकर "मथुरामहिमा" नामक एक व्रज सम्बन्धि ग्रन्थ का आविष्कार किया है। श्रीनारायणभट्ट गोस्वामि चरण ने भी व्रजसम्बन्धी असंख्य ग्रन्थ लिखे हैं। उन के द्वारा विरचित "व्रजभक्तिविलास" नामक ग्रन्थ व्रज माहात्म्य को अवगत कराने में अत्युच्च सर्वोपरि ग्रन्थ है। जो कि हाल में ही प्रकाशित हुआ है। साथ ही साथ श्रीरघुनाथदास गोस्वामि चरण ने भी रागमार्ग प्रवर्त्तित भक्त-रसिकों के लिये "व्रजविलासस्तव" नामक इस व्रज सम्बन्धिस्तव की रचना कर परम उपकार किया है। यह एक ऐसा ग्रन्थ है कि इसे रसिक प्रेमी कण्ठ कर लेवें तथा व्रज में उन्हीं स्थानों में जाकर "वस वास" प्रदक्षिणादि के साथ विलाप करते हुए पाठ कर प्रणाम व वन्दना करते रहें। ग्रन्थकार ने इस स्तव के १०२ संख्यक श्लोक में ऐसा ही निर्देश किया है। उन्होंने "श्रीस्तवावली" नामक वृहत् ग्रन्थ का सङ्कलन किया। उसी स्तवावली के अन्तर्गत १०७ श्लोकात्मक यह "व्रजविलास" नामक स्तवरत्न है, जो कि सानुवाद प्रेमी रसिकों के समक्ष उपस्थित है। पहले "स्तवावली" के अन्तर्गत "विलापकुसुमाञ्जली" भी श्रीवृन्दावनदास जी के द्वारा विरचित छन्दबद्ध व्रजभाषा के साथ प्रकाशित हो गई है। "व्रजविलासस्तव" व्रजपरिक्रमा देने वाले निष्किञ्चन रागमार्गीय वैष्णव प्रेमियों की परम उपादेय वस्तु है। मेरी आशा तो बहुत दिनों से थी कि यह सानुवाद प्रकाशित हो। आज गुरु-गौरांगगणों की पुनीत कृपा से मेरी आशालता फलवती हुई है। श्रीवृन्दावन-निवासी पूज्य गोस्वामि श्रीरासविहारी शास्त्री महोदय ने अनुवाद

का संशोधन कर परम उपकार किया है। श्रीदासगोस्वामि के द्वारा विरचित तीन ग्रन्थ हैं। स्तवावली, मुक्ताचरित्र, दानकेलिचिन्तामणि हैं। स्तवावली में २६ स्तवों का ग्रन्थन किया गया है। (१) श्रीशचीसून्वष्टक, (२) श्रीगौराङ्गस्तवकल्पतरु, (३) मनः शिक्षा, (४) प्रार्थना, (५) गोवर्द्धनाश्रयदशक, (६) गोवर्द्धनवासप्रार्थनादशक, (७) श्रीराधाकुण्डाष्टक, (८) व्रजविलासस्तव, (९) विलापकुसुमाञ्जली, (१०) प्रेमपूराभिधस्तोत्र, (११) प्रार्थना, (१२) स्वनियमदशक, (१३) श्रीराधिका-अष्टोत्तरशतनामस्तोत्र, (१४) श्रीराधाष्टक, (१५) प्रेमाम्भोजमरन्दाख्यस्तवराज, (१६) स्वसङ्कल्पप्रकाश स्तोत्र, (१७) श्रीराधाकृष्णोज्ज्वलरसकेलि, (१८) प्रार्थनामृत, (१९) नवाष्टक, (२०) गोपालराजस्तोत्र, (२१) श्रीमदनगोपालस्तोत्र, (२२) श्रीविशाखानन्ददस्तोत्र, (२३) मुकुन्दाष्टक, (२४) उत्कण्ठादशक, (२५) नवयुवद्वन्द्वदिदृक्षाष्टक, (२६) अभीष्टप्रार्थनाष्टक, (२७) दाननिर्वर्त्तनकुण्डाष्टक, (२८) प्रार्थनाश्रयचतुर्दशक, और (२९) अभीष्टसूचन है। यह ग्रन्थ सटीक वंगानुवाद के साथ श्रीरामनारायण विद्यारत्न के द्वारा वहरमपुर से वंगाक्षर में प्रकाशित है।

दूसरा मुक्ताचरित है। यह एक अद्भुत रसमय हास्य परिहासात्मक वाग्विलास वैभवरूप है। श्रीकृष्ण ने कृषक बनकर मुक्ताओं का रोपण किया इस का वर्णन है। इस प्रकार की रचना परिपाटी अन्यत्र साहित्य भण्डार में अभाव है। सानुवाद वंगाक्षर में यह ग्रन्थ देवकीनन्दन प्रेस वृन्दावन से प्रकाशित हो चुका है। तीसरा ग्रन्थ दानकेलिचिन्तामणि है। यह भी हास्य परिहासमय श्रीराधागोविन्द की दानलीला वर्णनमय परम अद्‌भुत ग्रन्थ है, श्रीनवद्वीपनिवासी श्रीहरिदासदास महोदय के द्वारा यह ग्रंथ वंगाक्षरमें प्रकाशित हो गया है। श्रीचैतन्यचरितामृत में कविराज गोस्वामि ने ऐसा कहा

है–श्रीचैतन्यलीला रत्नसार' का भांडार श्रीस्वरूप गोस्वामी हैं। उन्होंने उन लीला-रत्नों को श्रीरघुनाथ के कण्ठ में रख दिया। उन के मुख से जो कुछ सुना है उसे विस्तार पूर्वक लिख कर भक्तगणों को भेट करता हूँ। श्रीचैतन्यचरितामृत की भित्ति श्रीदास गोस्वामि जी का उपदेश तथा उन के द्वारा प्रभुलीला का वर्णन है। महाप्रभु के द्वारा प्रदत्त श्रीगोवर्द्धन शिला पहिले राधाकुण्ड में पश्चात् वृन्दावन गोकुलानन्द जी में विराजमान रही। अब यह शिला विग्रह वृन्दावन "भागवत निवास" (रमणरेती) पण्डित बाबा के आश्रम में विराजमान हैं। प्रभु प्रसन्न होकर दासगोस्वामी जी को आदर कर के प्रदान किया था। उसे महाप्रभु हृदय में धारण करते थे तथा नयन जल से भिगोते थे, आज यह श्रीगोवर्द्धनशीला रघुनाथ के राधा गिरधारी करके वैष्णव समाज में प्रसिद्ध है।

श्रीराधाकुण्ड के मानसपावन घाट में दासगोस्वामी जी की समाधि है। प्रतिवर्ष आश्विनी शुक्ला द्वादशी तिथी में वहाँ दास-गोस्वामी जी का तिरोधान उत्सव होता है। सेवा प्राकट्य और इष्ट-लाभ का दिन निर्णय" नामक ग्रन्थ में लिखा है–सम्वत् १५६३ में दासगोस्वामी जी का जन्म, १६ वत्सर गृहस्थिति ८ वत्सर पुरी में स्थिति तथा श्रीराधाकुण्ड में ५६ वत्सर अवस्थान है। अतः ७६ वत्सर वयस में १६३६ संवत् में उनका अन्तर्द्धान समय है।

—कृष्णदास।



श्री राधाकृष्णगणोद्देशदीपिका

मङ्गलाचरणम् ।

वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं भक्तवृन्दसमन्वितं ।
श्रीचैतन्यप्रभुं वन्दे नित्यानन्दसहोदितम् ॥ १ ॥
श्रीनन्दनन्दनं वन्दे राधिकाचरणद्वयम् ।
गोपीजनसमायुक्तं वृन्दावनमनोहरम् ॥ २ ॥

ग्रन्थारम्भः—

ये सूत्रिताः सता रत्या प्रसिद्धाः शास्त्रलोकयोः ।
व्याक्रियन्ते परिवारास्ते वृन्दावननाथयोः ॥ ३ ॥
मथुरामण्डले लोके ग्रन्थेषु विविधेषु च ।
पुराणे चागमादौ च तद्भक्तेषु च साधुषु ॥ ४ ॥
ते समासाद्विलिख्यन्ते स्वसुहृत्परितुष्टये ।
आनुपूर्व्वी विधानेन रतिप्रथितवर्त्मनः ॥ ५ ॥

भक्तगणों के साथ श्रीगुरुदेव के चरण कमल तथा नित्यानन्द प्रभु के साथ अवतीर्ण श्रीचैतन्यमहाप्रभु की वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

वृन्दावन में मनहरणकारी, गोपीजनों से वेष्टित, श्रीनन्दनन्दन तथा श्रीराधिका के चरणकमल की वन्दना करता हूँ ॥ २ ॥

जो साधुजनों के द्वारा अनुराग के साथ सत्रण किये हुए, जो लोकपरम्परा तथा शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं, मैं उन वृन्दावन के ईश श्री-राधा-गोविन्द के परिवार-समूह का नाम प्रणाली बद्ध करके वर्णन करता हूँ ॥ ३ ॥

मथुरामण्डल का लोक प्रवाद तथा विविध ग्रन्थ, पुराण, आगमादि में से, फिर उनके भक्तसाधुगण के निकट जो जानकारी है, उसे

ते कृष्णस्य परीवारा ये जना व्रजवासिनः ।
पशुपालास्तथा विप्रा बहिष्ठाश्चेति ते त्रिधा ॥ ६ ॥

१। तत्र पशुपालाः ॥

पशुपालास्त्रिधा वैश्या आभीरा गुर्ज्जरास्तथा ।
गोप-वल्लव पर्य्याया यदुवंशसमुद्भवाः ॥ ७ ॥

(क) वैश्याः ॥

प्रायो गोवृत्तयो मुख्या वैश्या इति समीरिताः ।
अन्येऽनुलोमजाः केचिदाभीरा इति विश्रुताः ॥ ८ ॥

(ख) आभीराः ॥

आचाराद्यनु तत्साम्यादाभीराश्च स्मृता इमे ।
आभीराः शूद्रजातीया गोमहिष्यादिवृत्तयः ।
घोषादिशब्दपर्य्याया पूर्वतो न्यूनतां गताः ॥ ९ ॥

निज सुहृद्‌गण के प्रसन्नार्थ यथाक्रम रागमार्ग के अनुकूल संक्षेप में वर्णन करता हूँ ॥ ४ । ५ ॥

कृष्णसेवा परायण, व्रजवासिगण ही श्रीकृष्ण के परिवार हैं। यह परिवार पशुपाल, विप्र, बहिष्ठ रूप से तीन प्रकार का है ॥ ६ ॥

पशुपाल भी फिर वैश्य, अहीर, गूजर भेद से तीन प्रकार के हैं। ये सब यदुवंश में उत्पन्न तथा गोप, और वल्लव पर्य्याय से भी ख्यात हैं ॥ ७ ॥

वैश्यगण प्राय गोरस के द्वारा जीवन निर्वाह करते हैं तथा वे सब श्रेष्ठ माने जाते हैं। कोई कोई इनका अहीर कह कर उल्लेख करते हैं। और अन्य सब अनुलोम जात हैं अर्थात जिनका पिता उच्चवर्ण है और माता हीनवर्णा है ॥ ८ ॥

आभीरगण गोवत्सादिक की सेवा के द्वारा जीवन निर्वाह करने के कारण वैश्यों के समान तथा शूद्रजातीय हैं। गो-महिषादिकों को

(ग) गुर्ज्जरा ॥
किञ्चिदाभीरतो न्यूनाश्छागादिपशुवृत्तय ।
गोष्ठप्रान्तकृतावासा पुष्टागा गुर्ज्जरा स्मृता ॥ १० ॥

२। विप्रा ॥
सर्ववेदविदो विप्रा याजनाद्यधिकारिण ॥ ११ ॥

३। बहिष्ठा ॥
बहिष्ठा कारव प्रोक्ता नानाशिल्पोपजीविन ॥ १२ ॥
एभि पञ्चविधैरेव परीवारा हरेरिह ।
पूज्या भ्रातृभगिन्याद्या दूत्यो दासाश्च शिल्पिन ।
दासिकाश्च वयस्याश्च प्रेयस्यश्चेति तेऽष्टधा ॥
मान्या भ्रातादयस्तस्य वयस्या सेवकादय ।
श्रीगोष्ठयुवराजस्य प्रेयस्यश्च पुरक्रमात् ॥ १३ ॥

चराना इनका प्रधान कार्य्य है तथा घोष प्रभृति इनकी उपाधि है और ये सब पहिले से कुछ हीन माने जाते हैं ॥ ६ ॥

गुर्जरगण आभीर से कुछ हीन हैं तथा छागादि पशुओं का पालन करते हैं। ये सब गोष्ठ के बाहिर प्रान्तदेश में वास करते हैं, तथा कुछ हृष्ट पुष्ट होते हैं ॥ १० ॥

विप्रगण समस्त वेद वेदान्त को जानने वाले तथा यजन याजनादि कार्य्य में निरत रहते हैं ॥ ११ ॥

नाना प्रकार के शिल्पोपजीवी कारुगण को बहिष्ठ कहते हैं। श्रीकृष्ण के यह पाँच प्रकार के परिवार हैं ॥ १२ ॥

पूज्य भ्रातृभगिनी प्रभृति, दूतीवर्ग, दास, शिल्पी, दासी, वयस्य और प्रेयसी भेद से ये सब परिवार फिर आठ प्रकार के हैं। श्रीव्रजराज नन्द के भ्रातृवर्ग, वयस्य, सेवक और प्रेयसीगण गोष्ठयुवराज श्रीकृष्ण के मान्य हैं ॥ १३ ॥

पूज्याः ॥

पूज्याः पितामहाद्याश्च तथा ज्ञेया महीसुराः ॥ १४ ॥
पितामहो हरेर्गौरः सितकेशः सिताम्बरः ।
मङ्गलामृतपर्ज्जन्यः पर्ज्जन्यो नाम वल्लवः ।
यः सुरर्षेर्निदेशेन लक्ष्मीभर्त्तुरूपासनाम् ।
वरिष्ठो व्रजगोष्ठीनां स कृष्णस्य पितामहः ॥
पुरा नन्दीश्वरे चक्रे श्रेष्ठसन्ततिकाङ्क्षया ।
वागमूर्त्ता तते व्योम्नि प्रादुरासीत् प्रियङ्करी ॥ १५ । १६ ॥
"तपसानेन धन्येन भाविनः पञ्च ते सुताः ।
वरीयान् मध्यमस्तेषां नन्दनाम्ना भविष्यति ॥ १७ ॥
नन्दनस्तस्य विजयी भविता व्रजनन्दनः ।
सुरासुरशिखारत्न-नीराजितपदाम्बुजः" ॥ १८ ॥

पितामह, मातामह प्रभृति तथा ब्राह्मणगण श्रीकृष्ण के पूज्य पद-वाच्य हैं ॥ १४ ॥

श्रीकृष्ण के पितामह का नाम पर्ज्जन्य है। वे मंगलरूप सुधावर्षण के कारण पर्जन्य अर्थात मेघ तुल्य हैं। इनका अंग गौरवर्ण तथा केश शुभ्रवर्ण है। पहिले पर्जन्य जी ने नन्दीश्वरपर्वत में उत्तम सन्तान कामना से देवर्षि नारदजी के उपदेशानुसार लक्ष्मीपति श्रीनारायण की उपासना की थी। पर्ज्जन्यजी व्रज में सर्व्वमान्य तथा श्रीकृष्ण के पितामह थे। तपस्या करने में आकाशवाणी हुई कि "हे पर्जन्य! तुम्हारी इस पवित्र तपस्या के फल रूप पाँच पुत्र उत्पन्न होंगे। उनमें से मध्यम पुत्र सर्व्वमान्य तथा नन्द नाम से विख्यात होगा। उस नन्द का व्रज आनन्दकारी ऐसा विजयी पुत्र होगा कि समस्त सुर, असुर अपने अपने मस्तक के रत्नसमूह के द्वारा उन के चरणकमल की आरती करेंगे ॥ १५ । १८ ॥

तुष्टस्तत्र वसन्नत्र प्रेदम केशिनमागतम् ।
परीवारैः समं सर्व्वै र्ययौ भीतो वृहद्वनम् ॥ १९ ॥
पितामही महामान्या कुसुम्भाभा हरित्पटा ।
वरीयसीति विख्याता खर्व्वा दुग्धाभकुन्तला ॥ २० ॥
पितृव्यौ पितुरूर्जन्यराजन्यौ वल्लवौ च यौ ।
नटी सुवेर्जनाख्यापि पितामहसहोदरा ।
गुणवीरः पतिर्यस्याः सूर्य्यस्याह्वयपत्तनम् ॥ २१ ॥
पिता व्रजजनानन्दो नन्दो भुवनवन्दितः ॥ २२ ॥
तुन्दिलश्चन्दनरुचिर्वन्धुजीवनिभाम्बरः ।
तिलतण्डुलितं कूर्च्चं दधानो लम्बविग्रहः ॥ २३ ॥

पर्जन्यजी कुछ काल वहाँ निवास करते हुए फिर केशी नामक असुर के आगमन से भीत होकर समस्त परिवार के साथ महावन चल दिये ॥ १९ ॥

श्रीकृष्ण की पितामही का नाम वरीयसी है। वे व्रजमण्डल में मान्यगण्या थीं। इनका अंग कुसुम्भपुष्प के तुल्य तथा वसन हरिद्वर्ण था। वे आकार में खर्व्वा थीं तथा उनके केश दूध की तरह सफेद थे ॥ २० ॥

श्रीकृष्ण के पिता व्रजराज के ऊर्जन्य और राजन्य दो पितृव्य (चाचा) थे तथा दोनों गोप ही कह कर माने जाते थे। नृत्यविद्या में चतुरा सुवेर्जना श्रीकृष्ण के पितामह पर्जन्य जी की सहोदरा भगिनी थी। इस सुवेर्जना के पति का नाम गुणवीर था। वे सूर्य्यकुण्ड में वास करते थे ॥ २१ ॥

श्रीकृष्ण के पिता का नाम नन्द है। वे भुवनवन्दित तथा व्रजवासीगण के आनन्दरूप थे। उनका उदर स्थूल, तथा अंगकान्ति बाँधुली पुष्प की तरह थी। तिल-तण्डुलित अर्थात् श्वेतकृष्णवर्ण मिश्रित दाढ़ी से युक्त लम्बायमान शरीर था ॥ २२। २३ ॥

उपनन्दानुजो नन्दो वसुदेवसुहृत्तमः।
गोपराजयशोदे च कृष्णतातौ ब्रजेश्वरौ ॥ २४ ॥
वसुदेवोऽपि वसुभिर्दीव्यतीत्येष भण्यते।
यथा द्रोणस्वरूपश्च ख्यातश्चानकदुन्दुभिः ॥ २५ ॥
नामेद गारुडे प्रोक्तं मथुरामहिमक्रमे।
वृषभानुर्व्रजे ख्यातो यस्य प्रियसुहृद्वरः ॥ २६ ॥
माता गोपयशोदात्री यशोदा श्यामलद्युतिः।
मूर्त्ता वत्सलतेवासौ शक्रचापनिभाम्बरा ॥ २७ ॥
नातिस्थूलतनुः किञ्चिद्दीर्घमेचककुन्तला।
ऐन्दवी-कीर्त्तिदा यस्या प्रिया प्राणसखी वरा ॥ २८ ॥

नन्द जी के बड़े भैया उपनन्द जी थे तथा वसुदेव जी इनके परम मित्र हुए। ब्रज के ईश्वर अर्थात ब्रजेश्वर-ब्रजेश्वरी कह कर ख्यात गोपराज यशोदा दोनों ही श्रीकृष्ण के पिता-माता हैं ॥ २४ ॥

वसु शब्द पुण्य, रत्न, धन, गुणवाची है। विशुद्ध सत्व गुण को वसु कहते हैं। वसु के द्वारा जो क्रीडाशील हैं वे वसुदेव हैं। वसुदेव जी शुद्ध सत्वगुण सम्पन्न थे। वे पहिले जन्म में द्रोणनामक वसु भी रहे। उनका एक नाम आनकदुन्दुभि भी था। यह नाम गरुडपुराण में मथुरामाहात्म्य के प्रसंग में कहा गया है। श्रीराधिका के पिता वृषभानु महाराज इनके परम सुहृत् थे ॥ २५। २६ ॥

श्रीकृष्ण की माता का नाम यशोदा है गोपगणों में यश को देने के कारण यशस्विनी अर्थात् यशोदा है। इनकी अंगकान्ति श्यामल वर्ण है। वह वात्सल्यरस की मूर्त्ति है। इनका वसन इन्द्रधनुवर्ण की तरह है ॥ २७ ॥

इनका शरीर न अति स्थूल न अति कृश है। केशकलाप कुछ लम्बे मेचक (कृष्ण) वर्ण है। ऐन्दवी और कीर्त्तिदा इनकी प्राणतुल्य प्रियतमा एवं श्रेष्ठा दो सखी थीं ॥ २८ ॥

गोकुलाधीशगृहिणी यशोदा देवकी सखी ।
गोपेश्वरी गोष्ठराज्ञी कृष्णमातेति भण्यते ॥ २९ ॥

तथा च आदिपुराणे—

द्वे नाम्नी नन्दभार्य्याया यशोदा देवकीति च ।
अतः सख्यमभूत्तस्या देवक्याः शौरिजायया ॥ ३० ॥
रोहिणी वृहदम्बास्य प्रहर्षारोहिणी सदा ।
स्नेहं या कुरुते रामस्नेहात् कोटिगुणं हरौ ॥ ३१ ॥
उपनन्दोऽभिनन्दश्च पितृव्यौ पूर्व्वजौ पितुः ।
पितृव्यौ तु कनीयांसौ स्यातां सन्नन्दनन्दनौ ॥ ३२ ॥
आद्यः सितारुणरुचिर्दीर्घकूर्च्चो हरित्पटः ।
तुङ्गी प्रियास्य साङ्गवर्णा साङ्गशाटिका ॥ ३३ ॥

गोकुलाधीशगृहिणी, यशोदा, देवकीसखी, गोपेश्वरी, गोष्ठरानी, कृष्णमाता कह कर बोली जाती थीं ॥ २९ ॥

आदिपुराण में कहा है कि—नन्दपत्नी के दो नाम हैं यशोदा और देवकी । इसीलिये वसुदेव की पत्नी देवकी के साथ यशोदा का विशेष सख्यभाव था ॥ ३० ॥

बलराम जी की माता रोहिणी आनन्द की मूर्त्ति थीं तथा श्रीकृष्ण की बड़ीमाता कह कर पुकारी जाती थीं और बलराम से भी श्रीकृष्ण के ऊपर कोटिगुण अधिक स्नेह करती थीं ॥ ३१ ॥

नन्द जी के उपनन्द और अभिनन्द दोनों बड़े भ्राता तथा सन्नन्द और नन्दन दोनों कनिष्ठ भ्राता थे । वे सब श्रीकृष्ण के पितृव्य रहे ॥ ३२ ॥

उपनन्द जी की अंगकान्ति धवल और अरुणवर्ण थी । दाढ़ी दीर्घ तथा वस्त्र हरिद्वर्ण था । पत्नी का नाम तुङ्गी था वह चातकवर्णा और चातकवर्ण की साड़ी पहिनने वाली थी ॥ ३३ ॥

द्वितीयः कम्बुरुचयो लम्बकूर्चोऽसिताम्बरः ।
भार्य्यास्य पीवरी नीलपटा पाटलविग्रहा ॥ ३४ ॥
सुनन्दापरपर्य्यायः सन्नन्दस्य च पाण्डरः ।
श्यामचेलः सितद्वित्रिकेशोऽयं केशवप्रियः ॥ ३५ ॥
भार्य्या कुवलयारक्तचेला कुवलयच्छविः ।
नन्दनः शितिकण्ठाभश्चण्डातकुसुमाम्बरः ॥ ३६ ॥
अपृथग्वसतिः पित्रा तस्यात्यन्तप्रियो हरौ ।
अतुल्यास्य प्रिया विद्युत्कान्तिरभ्रनिभाम्बरा ॥ ३७ ॥
सानन्दा नन्दिनी चेति पितुरेते सहोदरे ।
कल्माषवसने रिक्तदन्ते च फेनसोचिषी ॥ ३८ ॥

दूसरे अभिनन्द जी शंख के तुल्य गौरवर्ण तथा लम्बी दाढ़ी वाले और कृष्णरंग के वस्त्र पहिनने वाले थे। पत्नी का नाम पीवरी था। पीवरी के वस्त्र नीलवर्ण तथा अंग पाटलवर्ण था ॥३४॥

सन्नन्द का दूसरा नाम सुनन्द है। इनका वर्ण पीला तथा श्याम वर्ण वस्त्र है। केवल दो तीन केश सफेद हैं। वे कृष्ण के परम-प्रिय थे ॥ ३५ ॥

भार्य्या का नाम कुवलया है। लाल वस्त्र को पहिनने वाली तथा कुवलय की तरह अंग कान्ति वाली थी। नन्दन का वर्ण मयूर-कंठ तुल्य तथा वसन चण्डात पुष्प के सदृश है ॥ ३६ ॥

वे श्रीहरि के अत्यन्त प्रिय थे तथा पिताजी के साथ एकत्र वास करते थे। इनकी पत्नी अतुल्या नाम की थी वह विद्युत्वर्णा तथा मेघ की तरह वस्त्र पहिनने वाली थी ॥ ३७ ॥

श्रीकृष्ण के पिता व्रजराज की सानन्दा और नन्दिनी नाम वाली दो सहोदरा भगिनी थीं। वे विविध प्रकार के वर्ण वाले वस्त्र पहिनने वाली थीं। उनकी दन्तपंक्ति विरला थी अर्थात् वह दो चार दान

महानीलः सुनीलश्च रमणावेतयोः क्रमात् ।
पितुराद्यपितृव्यस्य पुत्रौ कण्डवदण्डवौ ।
सुवले मुदमाप्तौ यौ ययोश्चारु मुखाम्बुजम् ॥ ३६ ॥
राजन्यौ यौ तु दायादौ नाम्ना तौ चाटुवाटुकौ ।
दधिसारा-हविःसारे सधर्मिण्यौ क्रमात्तयोः ॥ ४० ॥
मातामहो महोत्साहो स्यादस्य सुमुखाभिधः ।
लम्बकम्बुसमश्मश्रुः पक्वजम्बूफलच्छविः ॥ ४१ ॥
ख्याता मातामही गोष्ठे पाटला नामधेयतः ।
मातामही तु महिषी दधिपाण्डरकुन्तला ।
पाटला पाटलीपुष्पपटलाभा हरित्पटा ॥ ४२ ॥
प्रिया सहचरी तस्या मुखरा नाम वल्लवी ।

वाली थीं । फेन की तरह अंग शुभ्रवर्ण था । सानन्दा के पति का नाम महानील और नन्दिनी के पति का नाम सुनील था । दोनों श्रीकृष्ण के मौसा थे ॥ ३८ ॥

श्रीकृष्ण के आदि पितृव्य उपनन्द जी के कण्डव तथा दण्डव नामक दो पुत्र थे । दोनों सुबलजी से विशेष आमोद प्रमोद प्राप्त करते थे तथा दोनों का मुख कमल तुल्य सुन्दर था । चाटु वाटु नाम वाले नन्दजी के दो क्षत्रिय भ्राता थे । इनके पिता वसुदेवजी की ज्ञाति के थे । चाटु की दधिसारा तथा वाटु की हविःसारा नाम वाली पत्नीयाँ थीं॥३६।४०

श्रीकृष्ण के मातामह सुमुख विशेष उत्साही थे । वे लम्बे शंख की तरह सफेद दाढ़ी वाले तथा पके जामुन के तुल्य अंग कान्ति वाले हुए ॥ ४१ ॥

श्रीकृष्ण की मातामही पाटला व्रज में रानी कहकर प्रसिद्धा थीं दही के तुल्य कुछ पीले उनके केश थे । पाटली पुष्प की तरह पाटल-वर्ण तथा हरा वसन पहिनने वाली थीं ॥ ४२ ॥

मातामही पाटला की मुखरा नामक एक प्रिय सहचरी गोपी थी

व्रजेश्वर्य्यै ददौ स्तन्य सर्वास्नेहभरेण या ॥ ४३ ॥
सुमुखस्यानुजश्चारुमुखोऽञ्जननिभच्छवि ।
भार्य्यास्य कुलटीवर्णा वलाका नाम वल्लवी।
गोलो मातामहीभ्राता धूमलावसनच्छवि ॥ ४४ ॥
हसितो य स्वसुर्भर्ता सुमुखेन क्रु धोद्धुर ।
दुर्व्वाससमुपास्यैव कुल लेभे व्रजोज्वलम् ॥ ४५ ॥
यस्य सा जटिला भार्य्या ध्वांक्षवर्णा महोदरी।
यशोधर-यशोदेव सुदेवाद्यास्तु मातुला ॥ ४६ ॥
अतसीपुष्परुचय· पाण्डराम्बरसवृता ।
येषा धूम्रपटा भार्य्या कर्कटीकुसुमत्विष ॥ ४७ ॥
रेमा रोमा सुरेमाख्या· पावनस्य पितृव्यजा ।
मातृष्वसु पतिर्मल्ल स्वसा मातुर्यशस्विनी।

जो कि पाटला के स्नेह से व्रजेश्वरी यशोदा को दूध पिलाया करती थी ॥ ४३ ॥

सुमुख के छोटा भैया चारुमुख है। उसकी कान्ति अञ्जन की तरह है। उसकी भार्य्या वलाका कुलटी वर्णा थी। मातामह के भैया का नाम गोल तथा वसन धूम्रवर्ण का था। भगिनीपति सुमुख जब हास्य करते थे तब गोल क्रोध के मारे व्यतिव्यस्त हो जाते थे। इन्हों ने पहले दुर्वासा जी की उपासना कर व्रज में उज्वल वश मे जन्म लाभ किया था ॥ ४४ । ४५ ॥

इनकी पत्नी जटिला काकवर्णा और स्थूलोदरी थीं। यशोधर, यशोदेव, सुदेव आदिक श्रीकृष्ण के मामा थे ॥ ४६ ॥

इन सबकी कान्ति अतसी पुष्प (अलसी के फूल) की तरह थी। वे सब पीले वस्त्र पहिनते थे। इन सबकी भार्य्या धूँआट वस्त्र पहनती थीं और कर्कटी पुष्प की तरह कान्तिवाली थीं ॥ ४७ ॥

यशोदेवी यशस्विन्यावुभे मातु: सहोदरे ॥ ४८ ॥
दधिसारा-हविःसारे इत्यन्ये नामनी तयोः ।
ज्येष्ठा श्यामानुजा गौरी हिंगुलोपमवाससी ॥ ४९ ॥
चाटुवाटुकयोर्भार्ये ते राजन्यतनूजयोः ।
पुत्रश्चारुमुखस्यैकः सुचारुर्नामशोभनः ॥ ५० ॥
गोलभ्रातु सुता यस्य भार्या नाम्ना तुलावती ।
पितामहसमास्तुण्ड-कुटेरपुरटादयः ॥ ५१ ॥
किलाऽन्तकेल-तीलाट-कृपीट-पुरटादयः ।
गोण्डकल्लोट्टकारण्ड-तरीपणवरीपणाः ।
वीरारोह-वरारोह-मुख्या मातामहोपमाः ॥ ५२ ॥
वृद्धाः पितामहीतुल्याः शिलाभेरी शिखाम्बरा ।
भारुणी भंगुरा भङ्गी भारशाखा शिखादयः ॥ ५३ ॥

रेमा, रोमा, सुरेमा नामक पावन जी की तीन पितृव्यकन्या थीं। यशोदेवी और यशस्विनी श्रीकृष्ण की माता यशोदा जी की सहोदरा भगिनी हैं। यशस्विनी के पति का नाम मल्ल था ॥ ४८ ॥

यशोदेवी और यशस्विनी का नामान्तर दधिसारा हविःसारा भी था। ज्येष्ठा यशोदेवी श्यामवर्ण तथा कनिष्ठा गौरवर्ण थी। हिंगुल के सदृश दोनों का वस्त्र था ॥ ४९ ॥

वे दोनों पहिले कहे हुए क्षत्रिय तनय चाटु और वाटुक की भार्या थीं। चारुमुख के सुचारु नामक एक सुन्दर पुत्र हुआ था ॥५०॥

पहिले कहे हुए गोल जी की जो भ्रातृकन्या तुलावती थी, वही सुचारु की भार्या थी। तुण्ड, कुटेर और पुरटादिक सब श्रीकृष्ण के पितामह के तुल्य थे ॥ ५१ ॥

किल, अन्तकेल, तीलाट, कृपीट, पुरट, गोण्ड, कल्लोट्ट, तरीपण, वरीपण, वीरारोह, वरारोह आदिक श्रीकृष्ण के मातामह के तुल्य हैं ॥ ५२ ॥

भारुण्डा जटिला भेला कराला करवालिका ।
घर्घरा मुखरा घोरा घण्टा घोणी सुघण्टिका ॥
ध्वाङ्क्षरुण्टी हाण्डी तुण्डी डिण्डिमा मञ्जुवाणिका ।
चक्किणी चोण्डिका चुण्डी डिण्डिमा पुण्डवाणिकाः ।
डामणी डामरी डुम्बी डङ्का मातामही समाः ॥ ५४ ॥
मङ्गलः पिङ्गलः पिङ्गो माठरः पीठपट्टिशौ ।
शङ्करः सङ्गरो भृङ्गो घृणिघाटिकसारघाः ॥
पटीर-दण्डि-केदारा सौरभेय-कलाङ्कुराः ।
धुरीण धुर्व चक्राङ्ग मस्करोत्पल कम्बला ॥
सुपक्ष सौध हारीत हरिकेश हरादयः ।
उपानन्दादयश्चान्ये सर्वेऽमी जनकोपमाः ॥ ५५-५८ ॥
पर्ज्जन्य सुमुखश्चेमौ मिथः सख्यं परं गतौ ।
यावन्धं चरतः प्रीत्या कैशोरे तौ सुहृद्वरौ ।

शिलाभेरी, शिखाम्बरा, भारुणी, भङ्गुरा, भङ्गी, भारशाखा आदिक वृद्धागण पितामही तुल्य हैं ॥ ५३ ॥
भारुण्डा, जटिला, भेला, कराला, करबालिका, घर्घरा, मुखरा, घोरा, घण्टा, घोणी, सुघण्टिका, ध्वाङ्क्षरुण्टी, हाण्डी, तुण्डी, डिण्डिमा, मञ्जुवाणिका, चक्किणी, चोण्डिका, चुण्डी, डिण्डमा, पुण्डवाणिका, डामणी, डामरी, डुम्बी, डङ्का आदिक सब वृद्धा श्रीकृष्ण की मातामही सदृश हैं ॥ ५४ ॥

मङ्गल, पिङ्गल, पिङ्ग, माठर, पीठ, पट्टिश, शंकर, संगर, भृंग, घृणि, घाटिक, सारघ, पटीर, दण्डि, केदारा, सौरभेय, कलाङ्कुर, धुरीण, धुर्व, चक्राङ्ग, मस्कर, उत्पल, कम्बल, सुपक्ष, सौध, हारीत, हरिकेश और हरादिक एवं उपनन्दादिक अन्यान्य गोपगण-समूह श्रीकृष्ण के पिता के तुल्य हैं ॥ ५५-५८ ॥

तेन नन्दादि नामानस्तिष्ठन्त्यन्येऽपि वल्लवाः ॥ ५६ ॥

वत्सला कुशला ताली मेदुरा मसृणा कृपा ।
शङ्किनी विम्बिनी मित्रा सुभगा भोगिनी प्रभा ॥
शारिका हिङ्गुला नीति कपिला धमनोधरा ।
पक्षति पाटका पुण्डी सुतुण्डा तुष्टिरञ्जना ॥
तरङ्गाक्षी तरलिका शुभदा मालिकाङ्गदा ॥
वत्सला कुशला ताली मेदुरापि तथैव च ।
विशाला शल्लकी वेणा वर्त्तिकाद्या प्रसूपमाः ॥ ६०।६२ ॥
अम्बिका च किलिम्बा च धातृके स्तन्यदायिके ।
अम्बिकेय तयोर्मुख्या व्रजेश्वर्योः प्रिया सखी ॥ ६३ ॥

अथ महीसुराः ॥

महीसुरास्तु द्विविधा गोकुलान्तर्वसन्ति ये ।

पर्जन्य और सुमुख दोनों परस्पर प्रीति के साथ बन्धु सूत्र में बन्धे हुए थे। दोनों का शरीर हृष्ट पुष्ट था। अपने पुत्र नन्द, उपनन्दादिक के नाम के तुल्य और भी सब अपने पुत्रों के नाम इसी प्रकार के रखेंगे ऐसा एक परस्पर में वाग्बन्ध अर्थात् मौखिक नियम स्थिर हुआ था। इसी कारण से श्रीवृन्दावन में नन्दादिक नाम धारी और और भी सब गोप देखने में आते थे ॥ ५६ ॥

वत्सला, कुशला, ताली, मेदुरा, मसृणा, कृपा, शङ्किनी, विम्बिनी मित्रा, सुभगा, भोगिनी, प्रभा, शारिका, हिङ्गुला, नीति, कपिला, धमनीधरा, पक्षति, पाटका, पुण्डी, सुतुण्डा, तुष्टि, अञ्जना, तरङ्गाक्षी, तरलिका, शुभदा, मलिकाङ्गदा, वत्सला, कुशला, ताली, मेदुरा, विशाला, शल्लकी, वेणा और वर्त्तिका आदिक गोपाङ्गनागण श्रीकृष्ण की मातृ तुल्या हैं ॥ ६० । ६२ ॥

अम्बिका और किलिम्बा दो श्रीकृष्ण की धात्री तथा स्तन देने वाली

कुलमाश्रित्य वर्त्तन्ते केचिदन्ये पुरोहिताः ॥
वेदगर्भो महायज्वा भागुर्य्याद्याः पुरोधसः ।
सामधेनी महाकव्या वेदिकाद्यास्तदङ्गनाः ॥ ६४ ॥
सुलभा गौतमी गार्गी चण्डिलाद्या द्विजस्त्रियः ।
कुञ्जिका वामनी स्वाहा सुलता शाण्डिली स्वधा ॥
भार्गवीत्यादयो वृद्धा ब्राह्मण्यो व्रजपूजिताः ॥ ६५ ॥
पौर्णमासी भगवती सर्व्वसिद्धिविधायिनी ।
काषायवसना गौरी काशकेशीदरायता ॥
मान्या व्रजेश्वरादीना सर्व्वेषा व्रजवासिनां ।
देवर्षेः प्रियशिष्येयमुपदेशेन तस्य या ।

हैं। दोनोंमे से अम्बिका बड़ी थी तथा व्रजेश्वरीकी प्रियसखी है॥६३॥

अब महीसुरों का वर्णन करते हैं। गोकुल के बीच में वास करने वाले ब्राह्मण गण दो भागों में विभक्त हैं। एक तो श्रीकृष्ण के पितृकुलों के आश्रित है और दूसरे पुरोहितगण हैं। वेदगर्भ, महायज्वा, और भागुरि आदिक पुरोहित हैं जिनकी पत्नियों का नाम क्रम से सामधेनी, महाकव्या, और वेदिका है ॥ ६४ ॥

सुलभा, गौतमी, गार्गी, चण्डिला, कुञ्जिका, वामनी, स्वाहा, सुलता, शाण्डिली, स्वधा, भार्गवी आदिक श्रेष्ठ स्त्रीगण व्रजमण्डल में पूज्या ब्राह्मणी हैं ॥६५ । ६६ ॥

श्रीकृष्ण की समस्त लीलाओं के सकल विषयों का निर्वाह करने वाली योगमाया भगवती ही पौर्णमासी देवी हैं। इनका वस्त्र कषाय अर्थात् गैरिक वर्ण है। शरीर गौरवर्ण तथा काशपुष्प के सदृश सफेद केश हैं। वे आकार में कुछ लम्बी थीं। पौर्णमासी जी व्रज में नन्दादिक सकल व्रजवासियों की पूज्या थी। आप नारद जी की प्रियशिष्या थीं। उन्हीं के उपदेशानुसार श्रीकृष्ण और बलदेवजी

सान्दीपनि सुत प्रेष्ठ हित्वावन्तीपुरीमपि ।
स्वाभीष्टदैवतप्रेम्ना व्याकुला गोकुल गता ॥ ६७-६६ ॥

अथ यूथ ॥
यूथ परिजनाना स्यात् द्विविधाना महोच्चय ।
वयस्यो दासिका दूत्य इत्यसो त्रिकुलो मत ॥ ७० ॥
यूथस्यावान्तरा भेदा कुल तस्य तु मण्डल ।
गणस्य समवाय स्यात् समवायस्य सञ्चय ॥
सञ्चयस्य समाज स्यात् समाजस्य समन्वय ।
इति भेदा नव ज्ञेया लघव क्रमशो बुधै ॥ ७१ । ७२ ॥

अथ सखीवर्ग ॥
तत्रादौ कुलमालीना लिख्यते तत् त्रिमण्डल ।
तारतम्यात्तयो प्रेम्नो कुलस्यास्य त्रिरूपता ।

के विद्यागुरु श्रीसान्दीपनि जी को जो कि उनके पुत्र हैं वे उन्हें अवन्तिकापुरी में छोडकर निज अभीष्टदेव श्रीकृष्ण के प्रेम में वशीभूत होकर गोकुल में वास करने लगीं ॥ ६७ । ६६ ॥

दो प्रकार के परिजनों की महान् समष्टि को यूथ कहते हैं। वयस्यगण, दासीगण और दूतीगण भेद से यूथ तीन प्रकार के हैं॥७०॥

यूथ, कुल, मण्डल, वर्ग, गण, समवाय, सचय, समाज, समन्वय भेद से यूथ के और भी नौ प्रकार के भेद हैं। यूथ के छोटे छोटे विभाग कुल और उसके छोटे छोटे विभाग मण्डल, मण्डल के वर्ग, वर्ग के गण, गण के समवाय, उसके सचय, सचय के समाज और समाज के समन्वय इत्यादि प्रकार से जानना चाहिए ॥७१।७२॥

पहिले सखियों का त्रिमण्डल रूप कुल का विषय लिखा जा रहा है। प्रेम के तारतम्य से कुल फिर समाज, मण्डल और गण भेद से तीन प्रकार का है। परम प्रियतम सखियों की समष्टि को समाज

समाजो मण्डलञ्चेति गणश्चेति तदुच्यते ॥
समाजः परमप्रेष्ठसखीनां प्रथमो मतः ।
वरिष्ठश्च वरश्चेति स समन्वययुग्मभाक् ॥ ७३ । ७५ ॥

तत्र वरिष्ठः ॥

वरिष्ठः सर्व्वतः ख्यातः सदा सचिवतां गतः ।
तयोरेवासमोद्ध्वो वा नासौ प्रेम्नः समाश्रयः ॥ ७६ ॥
प्रपन्नः सर्वसुहृदां परमादरणीयतां ।
अपारगुणरूपादि-माधुरीभिश्च भूषितः ॥ ७७ ॥

अथ अष्टसख्यः ॥

ललिता च विशाखा च चित्रा चम्पकमल्लिका ।
तुङ्गविद्ये न्दुलेखा च रंगदेवी सुदेविका ॥ ७८ ॥

[१] तत्र ललिता ॥

तत्राद्या ललितादेवी स्यादष्टासु वरीयसी ।
प्रियसख्या भवेज्ज्येष्ठा सप्तविंशतिवासरैः ॥ ७९ ॥

कहते हैं, यह प्रथम गिना जाता है। यह समाज फिर दो-दो मिलकर वरिष्ठ और वर रूप से दो प्रकार का है ॥ ७३ । ७५ ॥

वरिष्ठ नाम के यूथ सर्व्व प्रकार से विख्यात तथा श्रीराधाकृष्ण के सहायक रूप से प्राप्त हैं। प्रेम में न कोई इसके समान और न कोई इससे बढ़कर ऊपर है ॥ ७६ ॥

यह समस्त सुहृदों का परम आदरणीय तथा अपार गुण-रूप-माधुरियों से भूषित है ॥ ७७ ॥

अब अष्टसखियों का वर्णन करते हैं। ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, तुंगविद्या, इन्दुलेखा, रंगदेवी, सुदेवी अष्टसखी हैं। ७८॥

इनमें से ललितादेवी सबसे श्रेष्ठा हैं। प्रियसखी श्रीराधा से सत्ताईस दिन बड़ी हैं जो अनुराधा कह कर ख्याता हैं तथा वामा-

अनुराधातया ख्याता वामप्रखरतां गता ।
गोरोचना-निभाङ्गी सा शिखिपिच्छनिभाम्बरा ॥ ८० ॥
जाता मातरि सारद्यां पितुरेषा विशोकतः ।
पतिर्भैरवनामास्याः सखा गोवर्द्धनस्य यः ॥ ८१ ॥

२ । विशाखा ॥

विशाखात्र द्वितीया स्यादेकाचारगुणान्वता ।
प्रियसख्या जनिर्यत्र तत्रैवाभ्युदिता क्षणे ॥
तारावलिदुकूलेयं विद्युन्निभतनुद्युतिः ।
पितुः पावनतो जाता मुखरायाः स्वसुः सुतात् ।
जटिलायाः स्वसुः पुत्र्यां दक्षिणायान्तु मातरि ।
भवेद्विवाह कर्त्तास्याः वाहिको नाम वल्लवः ॥ ८२-८३ ॥

३ । चम्पकलता ॥

तृतीया चम्पकलता फुल्लचम्पकदीधितिः ।

और प्रखरा नायिका के गुणों से भूषिता हैं । ललिता जी की अंग-कान्ति गोरोचना तुल्य है । वस्त्र मयूरपंख के सदृश हैं ॥७६ ।८०॥

ललिता जी पिता विशोक के द्वारा सारदी माता के गर्भ में से उत्पन्न हैं । इनके पति भैरव नाम से प्रसिद्ध हैं जो कि गोवर्द्धन गोप के सखा हैं ॥ ८१ ॥

दूसरी विशाखा जी हैं । भाव, रूप, गुणों से श्रीराधिका के तुल्य हैं । जिस समय श्रीराधिका का जन्म हुआ था ठीक उसी समय विशाखा का जन्म हैं । विशाखाजी का वस्त्र बूँटेदार नीलाम्बरी है । अंगकान्ति सौदामिनी के सदृश है । पिता का नाम पावन तथा माता का नाम दक्षिणा है । वह दक्षिणा जटिला की भगिनीकन्या थी । पवन भी मुखरा की भगिनी के पुत्र थे । विशाखा के विवाहित पति वाहिक नामक गोप हैं ॥ ८२ । ८३ ॥

एकेनान्हा कनिष्ठेयं चापपद्मनिभाम्बरा ॥ ८४ ॥
पितुरारामतो जाता वाटिकायान्तु मातरि ।
वोढा चण्डाक्षनामास्या विशाखा सदृशी गुणैः ॥ ८५ ॥

४ । चित्रा ॥

चित्रा चतुर्थी काश्मीरगौरी काचनिभाम्बरा ।
षड्विंशत्या कनिष्ठान्हा माधवामोदमेदुरा ॥ ८६ ॥
चतुराख्यात् पितुर्जाता सूर्यमित्रपितृव्यजा ।
जनन्यां चर्च्चिकाख्यायां पतिरस्यास्तु पीठरः ॥ ८७ ॥

५ । तुंगविद्या ॥

पञ्चमी तु ङ्गविद्या स्याज्ज्यायसी पञ्चभिर्दिनैः ।
चन्द्रचन्दनभूयिष्ठा कुङ्कुमद्युति शालिनी ॥ ८८ ॥
पाण्डुमण्डलवस्त्रेयं दक्षिणप्रखरोदिता ।
मेधायां पुष्कराज्जाता पतिरस्यास्तु बालिशः ॥ ८९ ॥

तीसरी चम्पकलता की अंगकान्ति खिले हुए चम्पक पुष्पों के सदृश है। यह श्री राधा से एक दिन छोटी हैं तथा इनके वस्त्र चापपंग के तुल्य हैं। इनके पिता का नाम आराम तथा माता का नाम वाटिका है। चण्डाक्ष इनके विवाहित पति हैं। इनके विशाखा के बराबर गुण समूह हैं ॥ ८४ । ८५ ॥

चौथी चित्रा की अंगकान्ति कुकुंम के तुल्य तथा काँच के समान वस्त्र हैं। श्रीराधा से छब्बीस दिन छोटी है। चित्रा श्रीकृष्ण के आनन्द में आनन्दिता हैं। इनके पिता का नाम चतुर तथा माता का नाम चर्च्चिका है। पति का नाम पीठर है। चतुर सूर्यमित्र के काका हैं ॥ ८६ । ८७ ॥

पाँचवी तुंगविद्या श्री राधिका जी से पाँच दिन बड़ी हैं। कपूर मिश्रित चन्दन के तुल्य अंगगन्ध वाली हैं। इनकी अंगकान्ति कुं-

६। इन्दुरेखा ॥

इन्दुरेखा भवेत् षष्ठी हरितालोज्ज्वलद्युतिः ।
दाडिम्बपुष्पवसना कनिष्ठा वासरैस्त्रिभिः ॥ ६० ॥
वेला-सागरसंज्ञाभ्यां पितृभ्यां जनिमीयुषी ।
वामप्रखरतां याता पतिरस्यास्तु दुर्व्बलः ॥ ६१ ॥

७। रङ्गदेवी ॥

सप्तमी रङ्गदेवीयं पद्मकिञ्जल्ककान्तिभाक् ।
जवारागिदुकूलेयं कनिष्ठा सप्तभिर्दिनैः ॥ ६२ ॥
प्रायेण चम्पकलतासदृशी गुणतो मता ।
करुणारङ्गसाराभ्यां पितृभ्यां जनिमीयुषी ॥ ६३ ॥

८। सुदेवी ॥

अस्या रक्ते च्चणो भर्त्ता कनीयान् भैरवस्य यः ।
सुदेवीरङ्गदेव्यास्तु यमजा मृदुरष्टमी ॥ ६४ ॥

कुम के सदृश है। वसन पीला है। तुंगविद्या दक्षिणा और प्रखरा नामक नायिका के गुणों से युक्त हैं। माता का नाम मेधा है। और पिता पुष्कर जी हैं। पति का नाम बालिश है ॥ ८८ । ८६ ॥

छटवीं इन्दुलेखा की अंगकान्ति हरिताल के बराबर उज्ज्वल है। इनका वसन अनार पुष्प के सदृश है। श्रीराधा से तीन दिन छोटी है। माता का नाम वेला तथा पिता का नाम सागर है। इन्दुलेखा वामा और प्रखरा नायिका गुणों से युक्त हैं। इनके पति दुर्वल नामक हैं ॥ ६० । ६१ ॥

सातवीं रंगदेवी की अंगकान्ति कमल केशर के समान है। वसन जवा पुष्प के तुल्य लाल हैं। श्रीराधा से सात दिन छोटी हैं तथा प्रायः चम्पकलता के बराबर गुणवाली हैं। पिता का नाम रंगसार माता का नाम करुणा है ॥ ६२ । ६३ ॥

आगत्य तरसा तस्यालोकात् किञ्चिदभक्षयत् ।
पशुपाली हरिण्युभे ततो गर्भमवाप्तु ॥ १०६ ॥
सुचन्द्रा सुषुवे पुत्रं स्तोककृष्णं ब्रुवन्ति यम् ।
असोष्ट गोष्ठमध्ये सा हिरण्याङ्गी कुरङ्गिका ॥ १०७ ॥
या सखी प्रियगान्धर्व्वा गान्धर्व्वायाः प्रिया सदा ।
फुल्लापराजिताश्रेणीविराजिपटमण्डिता ॥ १०८ ॥
एतां दारतयोदारां ददौ वृद्धाय गोदुहे ।
जरसा राजयायोऽसौ गिरा गौरवतः पिता ॥ १०९ ॥

(घ) रत्नलेखा ॥

सुतो मातृष्वसुः सूर्यसाह्वयस्य पयोनिधिः ।
तस्य पुत्रवतः पत्नी मित्रा कन्याभिलाषिणी ॥ ११० ॥
श्रद्धयाराधयाञ्चक्रे भास्करं सुतवत्करा ।
प्रसादेन द्युरत्नस्य रत्नलेखामसूत सा ॥ १११ ॥

के लिये प्रदान किया । उस चरु के भोजन के समय आंगन में रं-गिणी की माता व्रज में विचरण करने वाली, सुरंगा नामक हरिणी ने आकर उसके देखते-देखते उस चरु में से कुछ खा गई । दोनों के गर्भ हुआ । सुचन्द्रा ने एक पुत्र का प्रसव किया जिसे स्तोककृष्ण करके सब कोई कहते हैं । कुरङ्गिका हरिणी ने गोष्ठ में हिरण्याङ्गी का प्रसव किया, जो कि श्रीराधिका की सर्वदा अति प्रिया थीं तथा खिले हुए अपराजित पुष्पों के सदृश वस्त्रों को पहिनती थीं । पिता ने उदार मति वाली इसका बड़े गौरव के साथ एक वृद्ध गोप के साथ विवाह कर दिया था ॥ १०१ । १०६ ॥

(रत्नलेखा) सूर्यसा नामक माता की भगिनी का पयोनिधिनामक पुत्र था । पुत्रवती उसकी मित्रा नामक पत्नी ने कन्या की इच्छा से श्रद्धा के साथ सूर्य की आराधना की । सूर्य के प्रसाद से उनने रत्न-

मनःशिलारुचिरसौ रोलम्बरुचिराम्बरा ।
वृषभानुसुताप्रेष्ठा भानुशुश्रूषणे रता ।
चर्चारिकेन भावेन माता यस्यार्द्धचारिका ।
घूर्णयन्ती दृशौ घोरे माधवं प्रेक्ष्य तर्ज्जति ॥ ११२ ॥

(ङ) शिखावती ॥

धन्यधन्यादभूत् कन्या सुशिखायां शिखावती ॥ ११३ ॥
कर्णिकारद्युतिः कुन्दलतिकायाः कनीयसी ।
जरत्तित्तिरकिर्म्मीरपटा मूर्त्तेव माधुरी ।
उदूढ़ा गरुडेनेयं गर्जराख्येन गोदुहा ॥ ११४ ॥

(च) कन्दर्पमञ्जरी ॥

कन्दर्पमञ्जरी नाम जाता पुष्पाकराद् पितुः ।
जनन्यां कुरुविन्दायां यस्याः पित्रा हरिं वरम् ॥ ११५ ॥
हृदि कृत्य न कुत्रापि विवाहोऽन्यत्र कार्य्यते ।
किङ्किरातोज्ज्वलरुचि र्विचित्रसिचया वृता ॥ ११६ ॥

लेखा का प्रसव किया । रत्नलेखा मनःशिला की तरह कान्ति वाली तथा भ्रमर के सदृश सुन्दर वस्त्र को पहिनती थीं । वह श्रीराधिका की परमप्रिया और वृषभानु जी की सेवा में अनुरता थी । अर्द्धचारिका नाम वाली जिसकी माता नेत्रों को भयानक रूप से घुमाती हुई माधव को देख कर तर्जना किया करती थी ॥ ११० । ११२ ॥

शिखावती धन्यधन्या से सुशिखा गर्भ में शिखावती हुई थी। वह कर्णिकार की तरह अंगकान्तिवाली तथा कुन्दलता से कुछ छोटी थी । वृद्ध तित्तिर पक्षि के सदृश वस्त्र को धारण करती थी । शिखावती मानों माधुरी की मूर्त्ति थी । गर्जर नामक गोप से उसका विवाह हुआ था ॥ ११३ । ११४ ॥

पिता पुष्पाकर तथा माता कुरुविन्दा से कन्दर्पमञ्जरी उत्पन्ना

आगत्य तरसा तस्यालोकात् किञ्चिदभक्षयत् ।
पशुपाली हरिण्युभे तनो गर्भमवापतु ॥ १०६ ॥
सुचन्द्रा सुषुवे पुत्र स्तोककृष्ण ब्रुवन्ति यम् ।
असोष्ट गोष्ठमध्ये सा हिरण्याङ्गी कुरङ्गिका ॥ १०७ ॥
या सखी प्रियगान्धर्व्वा गान्धर्व्वाया प्रिया सदा ।
फुल्लापराजिता श्रेणोविराजिपटमण्डिता ॥ १०८ ॥
एता दारतयोदारा ददौ वृद्धाय गोदुहे ।
जरसा राजयायेत्योऽसौ गिरा गौरवत पिता ॥ १०९ ॥

(घ) रत्नलेखा ॥

सुतो मातृस्वसु सूर्यसाह्वयस्य पयोनिधि ।
तस्य पुत्रवत पत्नी मित्रा कन्याभिलाषिणी ॥ ११० ॥
श्रद्धयाराधयाञ्चक्रे भास्कर सुतवत्सला ।
प्रसादेन द्युरत्नस्य रत्नलेखामसूत सा ॥ १११ ॥

के लिये प्रदान किया । उस चरु के भोजन के समय आगन म र-गिणी की माता व्रज में विचरण करने वाली, सुरगा नामक हरिणी ने आकर उसके देखते देखते इस चरु मे से कुछ खा गई । दोनों के गर्भ हुआ । सुचन्द्रा ने एक पुत्र का प्रसव किया जिसे स्तोककृष्ण करके सब कोई कहते हैं । कुरङ्गिका हरिणी ने गोष्ठ में हिरण्याङ्गी का प्रसव किया, जो कि श्रीराधिका की सर्वदा अति प्रिया थी तथा खिले हुए अपराजित पुष्पों के सदृश वस्त्रों को पहिनती थीं । पिता ने उदार मति वाली इसका बडे गौरव के साथ एक वृद्ध गोप के साथ विवाह कर दिया था ॥ १०१ । १०९ ॥

(रत्नलेखा) सूर्यसा नामक माता की भगिनी का पयोनिधिनामक पुत्र था । पुत्रवती उसकी मित्रा नामक पत्नी ने कन्या की इच्छा से श्रद्धा के साथ सूर्य की आराधना की । सूर्य के प्रसाद से उसने रत्न-

मन शिलारुचिरसौ रोलम्वरचिराम्वरा।
वृषभानुसुताप्रेष्ठा भानुशुश्रूषणे रता।
चर्चारिकेन भावेन माता यस्यार्द्ध चारिका।
घूर्णयन्ती दृशौ घोरे माधव प्रेक्ष्य तर्ज्जति ॥ ११२ ॥

(ङ) शिखावती ॥

धन्यधन्यादभूत् कन्या सुशिखाया शिखावती ॥ ११३ ॥
कर्णिकारद्युति: कुन्दलतिकाया कनीयसी।
जरत्तित्तिरकिर्म्मीरपट्टा मूर्त्तेव माधुरी।
उदूढा गरुडेनेव गर्जराख्येन गोद्रुहा ॥ ११४ ॥

(च) कन्दर्पमञ्जरी ॥

कन्दर्पमञ्जरी नाम जाता पुष्पाकराद् पितु:।
जनन्या कुरुविन्दाया यस्या पित्रा हरिं वरम् ॥ ११५ ॥
हृदि कृत्य न कुत्रापि विवाहोऽन्यत्र कार्य्यते।
किङ्किरातोज्ज्वलरुचि र्विचित्रसिच्या वृता ॥ ११६ ॥

लेखा का प्रसव किया। रत्नलेखा मन.शिला की तरह कान्ति वाली तथा भ्रमर के सदृश सुन्दर वस्त्र को पहिनती थीं। वह श्रीराधिका की परमप्रिया और वृषभानु जी की सेवा में अनुरता थीं। अर्द्ध-चारिका नाम वाली जिसकी माता नेत्रों को भयानक रूप से घुमाती हुई माधव को देख कर तर्जना किया करती थी ॥ ११० । ११२ ॥

शिखावती धन्यधन्या से सुशिखा गर्भ में शिखावती हुई थी। वह कर्णिकार की तरह अंगकान्तिवाली तथा कुन्दलता से कुछ छोटी थी। वृद्ध तित्तिर पक्षि के सदृश वस्त्र को धारण करती थी। शिखावती मानों माधुरी की मूर्त्ति थी। गर्जर नामक गोप से उसका विवाह हुआ था ॥ ११३ । ११४ ॥

पिता पुष्पाकर तथा माता कुरुविन्दा से कन्दर्पमञ्जरी उत्पन्ना

रूपादिभिः स्वसुः साम्यात् तद्भ्रान्तिभरकारिणी ।
भ्रात्रा चक्रे चरणस्येयं परिणीता कनीयसा ॥ ६५ ॥

अथ वरः ॥

एतदष्टकवत्पाभिरष्टाभिः कथितो वरः ।
एता द्वादशवर्षीयाश्चलद्बाल्याः कलावती ॥ ६६ ॥
शुभाङ्गदा हिरण्याङ्गी रत्नलेखा शिखावती ।
कन्दर्पमञ्जरी फुल्लकलिकानङ्गमञ्जरी ॥ ६७ ॥

(क) तत्र कलावती ॥

मातुलो योऽर्कमित्रस्य गोपो नाम्ना कलाङ्कुरः ।
कलावती सुता तस्य सिन्धुमत्यामजायत ॥
हरिचन्दनवर्णोऽयं कीरद्युतिपटावृता ।
कपोतः पति रेतस्य वाहिकस्यानुजस्तु यः ॥ ६८-६९ ॥

आठवीं सुदेवी रंगदेवी की यमजा (जोड़ली) भगिनी तथा मृदुस्वभाव वाली थी। रूप, गुण, स्वभावादिकों से भगिनी रंगदेवी के साथ बराबर होने से इनको देखकर रंगदेवी का भ्रम होता था। रंगदेवी के पति रक्तचरण के कनिष्ट भ्राता के साथ सुदेवी का विवाह हुआ था ॥ ६४ । ६५ ॥

अथ वर का वर्णन करते हैं। इन अष्टसखियों के बराबर अन्य अष्ट सखियाँ वर नाम से कही जाती हैं। वे सब द्वादश वर्षीया अतीत वाल्यावस्था वाली हैं। उन सबके नाम कलावती, शुभाङ्गदा, हिरण्याङ्गी, रत्नलेखा, शिखावती, कन्दर्पमञ्जरी, फुल्लकलिका, अनङ्गमञ्जरी हैं ॥ ६६ । ६७ ॥

उनमें से कलावती अर्कमित्र के मामा कलाङ्कुर नामक गोप की कन्या तथा सिन्धुमती के गर्भ से उत्पन्न हुई हैं। वह हरिचन्दन के सदृश अंगकान्तिवाली तथा तोता के वर्ण तुल्य वस्त्र पहनने वाली

(ख) शुभाङ्गदा ॥

शुभावदातवर्णेयं विशाखायाः कनीयसी ।
पीठरस्यानुजेनेयं परिणीता पतत्रिणा ॥ १०० ॥

(ग) हिरण्याक्षी ।

हिरण्याक्षी हिरण्याभा हरिणीगर्भसम्भवा ।
सर्वसौन्दर्य्यसन्दोह-मन्दिरी भूतविग्रहा ॥ १०१ ॥
यज्वा यशस्वी धर्म्मात्मा गोपो नाम्ना महावसुः ।
स मित्रं रविमित्रस्य विचित्रगुणभूषितः ॥ १०२ ॥
अभिलष्यन् सुतं वीरं कन्याञ्चातिमनोरमाम् ।
इष्टं भागुरिणारेभे नियतात्मा पुरोधसा ॥ १०३ ॥
ततः सुधामयः कोऽपि सुचारुश्चररुत्थितः ।
नन्दितस्तं सुचन्द्रायै सधर्म्मिण्यै च दत्तवान् ॥ १०४ ॥
तमश्नन्त्यां चरुं तस्यामलिन्दे सम्भ्रमोज्झितः ।
सुरङ्गाख्यना व्रजचरी कुरङ्गी रङ्गिणीप्रसूः ॥ १०५ ॥

हैं। वाह्निक के अनुज कपोत इसके पति हैं ॥ ९८ । ९९ ॥

शुभाङ्गदा मंगलमय सुवर्णों के तुल्य अंगकान्ति वाली, तथा विशाखा से कुछ छोटी हैं। पीठर के अनुज पतत्रि के साथ इन का विवाह हुआ था ॥ १०० ॥

हिरण्याक्षी हिरण्यकान्ति वाली तथा हिरणी-गर्भ से उत्पन्न हुई हैं। उनका शरीर इतना सुन्दर था मानो सौन्दर्य्य का मन्दिर है। महावसु नामक यजनशील, परम यशस्वी धर्मात्मा गोप रहे। वे विचित्र गुणों में विभूषित तथा रविमित्र के मित्र थे। उन्होंने वीर-पुत्र तथा मनोरमा कन्या के अभिलाषा से संयतात्मा पुरोहित भागुरि के द्वारा यज्ञ का आरम्भ किया। उस यज्ञ से अमृतमय कोई सुन्दर चरु उठा जिससे कि महावसु ने प्रसन्न होकर अपनी पत्नी सुचन्द्रा

(छ) फुल्लकलिका ॥

श्रीमल्लात् फुल्लकलिका कमलिन्यामभूत् पितुः ।
सेयमिन्दीवरश्यामा शक्रचापनिभाम्बरा ॥ ११७ ॥
सहजेनान्विता पीततिलकेनालिकस्थले ।
विदुरोऽस्याः पतिर्दूरान्महिषीत्याह्वयत्यमी ॥ ११८ ॥

(ज) अनङ्गमञ्जरी ॥

वसन्तकेतकीकान्तिर्मञ्जुलानङ्गमञ्जरी ।
यथार्थाख्यनामेयमिन्दीवरनिभाम्बरा ॥ ११६ ॥
दुर्मदो मदयानस्याः पति र्यो देवरः स्वसुः ।
प्रियासौ ललितादेव्या विशाखाया विशेषतः ॥ १२० ॥

॥ अथ वयस्यानां सामान्यकर्माणि लिख्यन्ते ॥

वेशः प्रियवयस्याया गुरुवत्यादिवञ्चनम्
हरिणा प्रेमकलहे तस्या एवानुयायिता ॥ १२१ ॥

हुई थी । उसके पिता ने हृदय में हरि को अपना वर मानकर अन्यत्र विवाह नहीं करवाया था । किङ्किरात के सदृश उज्ज्वल कान्ति वाली तथा विचित्र वस्त्र को पहिनती थी ॥ ११५ । ११६ ॥

पिता श्रीमल्ल तथा माता कमलिनी से फुल्लकलिका हुई थी । यह नीलकमल के सदृश श्यामा तथा इन्द्रधनु के बराबर मनोहर वस्त्र को पहिनती थी । फुल्लकलिका स्वभाव से कपाल में पीतवर्ण तिलक को धारण करती थी । विदुर उसका पति था जो कि उसको दूर से महिषी करके आह्वान करता था ॥ ११७ । ११८ ॥

अनङ्गमञ्जरी वसन्त कालीन केतकी की तरह मनोहर कान्ति वाली तथा नीलकमल के सदृश वस्त्र को पहिनती थी । जैसा इसका नाम था वैसी थी भी । उसका पति अभिमानी तथा दुर्म्मद नाम से ख्यात था । जो बहिन का देवर था । अनङ्गमञ्जरी ललितादेवी और विशेष रूप से विशाखा जी की अति प्रिया थी ॥ ११६ । १२० ॥

अभिसारे सहायत्वमन्नादिपरिवेशनम् ।
आस्वादनं सह क्रीडा रहस्यपरिगोपनम् ॥ १२२ ॥
पवित्रचित्तचातुर्य्यं परिचर्य्या यथोचितम् ।
उत्कर्षम्लानिकारित्वं स्वपक्षप्रतिपक्षयोः ॥ १२३ ॥
तौर्य्यत्रिकत्यल्लोल्लासे उभयोः परितोषणम् ।
अवकाशोचिताचारसेवाप्रार्थनभाषणम् ॥ १२४ ॥
इत्यादि सुष्ठु भूयिष्ठं ज्ञेयमासां विचक्षणैः ।
सर्व्वा एवाखिलं कर्म्म जानन्ति कुर्व्वते‌ऽपि च ॥ १२५ ॥
तत्र काश्चिन्नियुक्ताः स्युरनियुक्ताश्च काश्चन ।
नियुक्ताः सुष्ठु या यत्र लिख्यन्ते ताः क्रमादिमाः ॥ १२६ ॥
तथापि परमप्रेष्ठसख्यः श्रेष्ठतयोदिताः ।
सर्व्वत्र ललितादेवी परमाध्यक्षतां गता ॥ १२७ ॥

अब वयस्यों के सामान्य कर्म्म समूह लिखते हैं। प्रियवयस्या श्री राधिका की वेशरचना, -गुरु-पत्यादिकों का वञ्चन, हरि के साथ प्रेमकलह में श्रीराधिका की अनुगामिनी होना, अभिसार में सहाय करना, अन्नादिकों का परिवेशन, लीला आस्वादन, रहस्यों का परिगोपन, यथोचित परिचर्य्या में चित्त में चतुराई रखना, अपने पक्ष में उत्कर्ष तथा प्रतिपक्ष में म्लान दिखाना, नृत्य गीत कलाओं के उल्लास से दोनों को प्रसन्न करना, यथाअवकाश उचित आचार-सेवा प्रार्थना, भाषण करना इत्यादिक अनेक कार्य्य इनके हैं। विचक्षणों से ऐसा जानना चाहिए। ऐसे ही वो समस्त सखियाँ समस्त कार्य्यों को जानती हैं और करती भी हैं। तो भी उन कार्य्यों में कोई नियुक्त हुई हैं कोई अनियुक्त भी हैं। जिस कार्य्य में जो नियुक्त हैं उसको क्रम से कहते हैं। उन सब वयस्यों में परमप्रेष्ठ सखियाँ श्रेष्ठ करके मानी जाती हैं। सब से ललितादेवी परम अध्यक्षता को प्राप्त

स्वीकृताखिलभावेयं सन्धिविग्रहिणी मता ।
अपराध्यति राधायै माधवे चापि दैवत ॥ १२८ ॥
चण्डिम्ना कुञ्चितमुखी सखीद्युतिभिरावृता ।
विग्रहे प्रौढिवादे च प्रतिवाक्योपपत्तिषु ॥ १२६ ॥
प्रतिभामुपलब्धाभिर्धत्ते विग्रहमाग्रहात् ।
आयाति सन्धिसमये तटस्थेव स्थिता स्वयम् ॥ १३० ॥
भगवत्यादिभिर्द्वौ मेधुर्त्ता सन्धिं करोत्यसौ ।
पौष्पाणां मण्डन छत्र शयनोत्थानवेश्मनाम् ॥ १३१ ॥
मदनोन्मादिनी वाट्यां या किन्नरकिशोरिका ।
प्रसून-वल्ली-ताम्बूलवल्ली पूगद्रुमेषु च ॥ १३२ ॥
निर्मिताविन्द्रजाले च प्रहेल्याद्यातिकोविदा ।
ताम्बूलेऽधिकृता या स्युरस्यास्तु दासिकाश्च या ॥ १३३ ॥
सख्यश्च बलदेवस्य वरा मान्योपजीविनाम् ।
या कन्यका स्यु सर्व्वासु तास्वेवाध्यक्षता मता ॥ १३४ ॥

हुई है । वह सकल भावों की स्वीकृति की हुई हैं और दोनों के सन्धि-विग्रह कराने में परम चतुरा है । कभी श्रीमाधव में श्रीराधा के लिये अपराध दिखाती हैं । कभी रिसाय कर मुख कुञ्चन के द्वारा चण्डिमा भाव को धारण करतीं हैं । कभी सखी श्री राधिका की अङ्गकान्ति को धर लेती हैं । विग्रह,(विवाद)प्रौढिवाद,प्रतिवाक्यादिकोंमें प्रतिभा के साथ ऐसी ही बन जाती हैं तथा मिलन समय आने पर स्वय तटस्था हो जाती हैं । वह भगवती पौर्णमासी प्रभृति के द्वारा मिल-कर दोनों का मिलन कराती हैं । दोनों के शयन उत्थान गृहों में पुष्पों के मण्डन में,छत्र के निर्माण करने में,मदनोन्मादिनी नामक वाटिका में नियुक्त जो किन्नर किशोरिकाओंका गण है उनकी,पुष्पलता ताम्बू-लवल्ली-सुपारी वृक्षों की रक्षा में,इन्द्रजालरचनामें,प्रहेलिकादिक विषय में अतिपण्डित तथा ताम्बूल-सेवा में अधिकार प्राप्त करने वाली जो

रत्नलेखादयोऽष्टौ याः प्रियसख्योऽनुकीर्त्तिताः ।
सर्व्वत्र ललितादेव्या ज्ञेयाः प्रत्यन्तराः सदा ॥ १३५ ॥
रत्नप्रभा रतिकले तत्राप्यष्टासु विश्रु ते ।
गुणसौन्दर्य्य वैदग्धी माधुरीभिरुपागते ॥ १३६ ॥

अथ पुष्पेषु मण्डनम् ॥

किरीटं वालपाश्या च कर्णपूरो ललाटिका ।
ग्रै वेयकाङ्गदे काञ्चीकटके मणिबन्धनी ॥ १३७ ॥
हंसकः कञ्चुलीत्यादि विविधं पुष्पमण्डनम् ।
मणिस्वर्णादिक्लृप्तस्य मण्डनस्यात्र यादृशः ।
आकारश्च प्रकारश्च कौसुमस्य च तादृशः ॥ १३८ ॥

१ । किरीटम् ॥

रङ्गिणी हेमयूथीभिर्नवमाली-सुमालिभिः ।
धृतिमाणिक्यगोमेदमुक्ते न्दुमणिकान्तिभिः ।
विन्यस्ताभिर्यथाशोभमाभिः सुष्ठु विनिर्म्मितम् ॥ १३९-१४० ॥

जो दासियों का गण है उनकी,श्रीबलदेव जी की श्रेष्ठ सखीगण की और कन्यकागण सबकी अध्यक्षता को श्रीललिताजी प्राप्त हुई थीं। रत्नलेखादिक जो प्रियसखियाँ कीर्त्तिता हुई हैं,वे सब प्रकार से ललिताजी की प्रीति-अनुगता हैं। इन अष्ट प्रियसखियों में गुण, सौन्दर्य वैदग्ध्य और माधुर्य्यादिक के द्वारा रत्नप्रभा और रत्नकला दोनों अति प्रसिद्ध हैं ॥ १२१ । १३६ ॥

अब पुष्पों के मण्डन का वर्णन करते हैं। किरीट, वालपाश्या, कर्णपूर, ललाटिका, ग्रैवेयक, अङ्गद, काञ्ची, कटक, मणिबन्धनी, हंसक, कञ्चुली ये सब पुष्पों के मण्डन हैं। मणि, सुवर्णादिक के रचित मण्डनों के सदृश आकार-प्रकार में पुष्पों के भी मण्डन ठीक ऐसे ही हैं॥ १३७ । १३८ ॥

कृतसप्तशिखं हेमकेतकी कोरकच्छदैः ।
चित्रकैर्धातुभिश्चित्रैश्चित्तहारिहरेरिदम् ॥ १४१ ॥
किरीटं पुष्पपाराख्यं रत्नपारादपि प्रियम् ।
गान्धर्व्यातः कृतिं यस्य ललिता समशिक्षत ॥ १४२ ॥
तत्तु पञ्चशिखं पुष्पैः पञ्चवर्णैर्विनिर्मितम् ।
कोरकैरपि गान्धर्वाभूषणं मुकुटं भवेत् ॥ १४३ ॥

२ । वालपाश्या ॥
केशबन्धनडोरी च विचित्रैः कोरकादिभिः ।
आवलिगुम्फिता गाढं वालपाश्येति कीर्त्तिता ॥ १४४ ॥

३ । कर्णपूरः ॥
ताडङ्कं कुण्डलं पुष्पी कर्णिका कर्णवेष्टनम् ।
इति पञ्चविधः प्रोक्तः कर्णपूरोऽत्र शिल्पिभिः ॥ १४५ ॥

किरीट-माणिक्य, गोमेद, (लहसनिया) मुक्ता, चन्द्रकान्तमणियों के समान वर्णवाले रङ्गिणी, (नील) हेमयूथी, (सोनजुही) नवमाली, (चमेली) सुमालि (दुपहरिया) पुष्पों के द्वारा जहाँ जैसा शोभित हो उसी प्रकार से बनाये हुए मस्तक के भूषण किरीट है। सुवर्ण केतकी के कोरक पत्र से तथा चित्र विचित्र धातुओं से बिरचित, सप्तशिखा विशिष्ट होता है। यह श्रीहरि के चित्त को हरण करने वाला है। किरीट का नाम पुष्पपार है जो कि रत्नपार से भी प्रिय है,जिसकी रचना गान्धर्वा श्रीराधिका जी से ललिता भली भाँति सीखी थी। वह पाँच वर्ण के पुष्पों से अथवा कोरकों से पाँच शिखाओं से युक्त होने पर श्री राधिका जी का मुकुट होता है ॥१३९-१४३॥

केशबन्धनडोरी विचित्र कोरकादिकों से गाढ़ रूप आवलि के द्वारा गुंथी जाने से वालपाश्या कही जाती है ॥ १४४ ॥

ताटङ्क, कुण्डल, पुष्पी, कर्णिका, कर्णवेष्टन रूप से कर्णपूर शि-

(क) ताडङ्कम् ॥

तालपत्राकृतिर्भूषा ताडङ्कः स द्विधोदितः ।
चित्रपुष्पकृतः स्वर्णकेतकीदलजस्तथा ॥ १४६ ॥

(ख) कुण्डलम् ॥

मयूरमकराम्भोज-शशाङ्कार्द्धादिसन्निभम् ।
स्वानुरूपैः कृतं पुष्पैः कुण्डलं बहुधोदितम् ॥ १४७ ॥

(ग) पुष्पी ॥

चतुर्व्वर्णैः क्रमात् पुष्पैश्चक्रवालतया कृतः ।
मध्ये पर्य्याप्तगुञ्जोऽयं स्तवकैः पुष्पिकोच्यते ॥ १४८ ॥

(घ) कर्णिका ॥

राजीवकर्णिकायाश्च पीतपुष्पैर्विनिर्म्मिता ।
भृङ्गिकादाडिमीपुष्पप्रोतमध्यात्र कर्णिका ॥ १४९ ॥

(ङ) कर्णवेष्टनम् ॥

यत्तु कर्णौ वेष्टयति वृत्तं तत् कर्णवेष्टनं ॥ १५० ॥

स्त्रियों के द्वारा पाँच प्रकार का है । तालपत्र के आकार का भूषण ताडङ्क दो प्रकार का है । विचित्र पुष्पों से निर्म्मित तथा सुवर्ण केतकीपत्रों से जात । मयूर, मकर, अम्भोज, अर्द्ध चन्द्रादिक के तुल्य तद्नुरूप पुष्पों से निर्मित कुण्डल बहुत प्रकार के हैं ॥१४५ । १४७॥

चक्रवाल रूप से रचित क्रम से चार वर्ण के पुष्पों के द्वारा स्तवक के आकार वाला मध्य में पर्य्याप्त गुञ्जा-युक्त पुष्पिका है । पद्म-कर्णिका के (पीला) गौरवर्ण पुष्पों से विरचित बीच में भ्रमरी युक्त एक अनारपुष्प से गुंथी हुई कर्णिका है । जो कुण्डल कर्णदेश को वेष्टन करके रहता है अर्थात् जो कुछ गोलाकार और वृहत् है उसे कर्णवेष्टन कहते हैं ॥ १४८-१५० ॥

४। ललाटिका ॥

द्विवर्णपुष्परचिता द्विपार्श्वा शोणमध्यमा।
अलकावलिमूलस्था पुष्पपाटी ललाटिका ॥ १५१ ॥

५। ग्रैवेयकम् ॥

वर्त्तुलाश्र चतुर्ग्रीवा कौमुस्यो यत्र कोष्टिकाः।
तद्वर्णपुष्पकैर्मध्यं ज्ञेयं ग्रैवेयकस्तु तत् ॥ १५२ ॥

६। अङ्गदम् ॥

कल्पतपुष्पलतातन्तु प्रोतैर्मण्डलतां गतैः।
त्रिवर्णोपर्युपयुतत्रिपुष्पाननमङ्गदम् ॥ १५३ ॥

७। काञ्ची ॥

क्षुद्रझल्लरिसंवीता चित्रगुम्फनलम्बिता।
पञ्चवर्णैर्विरचिता कुसुमैः काञ्चिरुच्यते ॥ १५४ ॥

ललाटिका दो वर्णों पुष्पों के द्वारा विरचित है। इसका मध्य-भाग रक्तवर्ण है। इसके दो पार्श्व हैं तथा जो कि अलकावली के मूलदेश में अर्थात् ललाट के ऊपर क्षुद्र केशों के मूलदेश में रहता है। यह पुष्पों की परिपाटी से युक्त होती है ॥ १५१ ॥

समष्टि में गोलाकार और मध्य में लतापताओं से शोभित, पुष्प रचित चतुष्कोण से युक्त, कर्णिका वर्ण के तुल्य पुष्पों से मध्य भाग में अलंकृत ग्रैवेयक अर्थात् कण्ठभूषा है ॥ १५२ ॥

लतातन्तु अर्थात् लता के सूत से गुँथे हुए पुष्पों के द्वारा जिस का मध्यभाग विरचित है, तीनों वर्णों के पुष्प जिसके ऊपरि भाग में विन्यस्त हैं, जिसमें तीनों पुष्प मुख्य युक्त होकर वर्त्तमान हैं इस प्रकार के भूषण को अङ्गद अथवा ताड़ कहते हैं ॥ १५३ ॥

छोटे छोटे झालरों से वेष्टित, विचित्र गुम्फन से युक्त और प-

८। कटकः॥

कुड्यवृन्तैर्लतातन्तौ प्रोतै रेकैकशस्तु यः।
कल्पितो विविधैः पुष्पैः कटका बहुधोदिताः॥ १५५॥

९। मणिबन्धनी॥

चतुर्वर्णप्रसूनाङ्ग गुच्छलम्बित्रिधारिका।
करडोरी कुसुमजा कीर्त्तिता मणिबन्धनी॥ १५६॥

१०। हंसकः॥

पृथुला च चतुः शृङ्गी पुष्पशृङ्गाटलम्बिका।
पार्श्वे सौमनसा गुम्फाः स्फुरन्ति हंसको भवेत्॥ १५७॥

११। कञ्चुली॥

षड्वर्णपुष्पविन्यास सौष्ठवेनातिचित्रिता।
कस्तूरीवासिता कण्ठलम्बिगुच्छात्र कञ्चुली॥ १५८॥

स्वर्ण पुष्पों से विरचित भूषण काञ्ची-अर्थात् स्त्रियों का कटिभूषण चन्द्रहार है॥ १५४॥

पुष्पों की कली और वृन्त (बोंटा) समूह को लतासूतों में एक एक करके गूँथने से कटक बनता है। इसमें नाना प्रकार के पुष्प रहते हैं तथा यह चरण का भूषण है। नामान्तर मल्ल है यह अनेक प्रकार का है। चार वर्ण के पुष्पों के द्वारा विरचित गुच्छ में लम्बायमान तीन धार वाली पुष्पों से जात मणिबन्धनी अर्थात् हाथ की डोरी विशेष है॥ १५५-१५६॥

हंसक चरणों का भूषण है। यह अधिक रूप से चरणों को वेष्टन करके मौजूद रहता है तथा इसका आकार गोलाकार सींग के तुल्य है। प्रधान पुष्पों से लम्बमान होता है। इसके पार्श्वदेश में पुष्प रचना समूह वर्त्तमान रहता है॥ १५७॥

छै वर्ण के पुष्प विन्यास से जिसकी शोभा व्याप्त है तथा जो

१२। छत्रम् ॥
शुक्लैः सूक्ष्मशलाकालिपर्य्यन्तैः कुसुमैः कृतम्।
स्वर्णयूथीचितच्छत्रदण्डं छत्रमुदीर्य्यते ॥ १५९ ॥

१३। शयनम् ॥
चम्पकाशोकपर्य्याप्तमल्लीगुम्फितगेण्डुका।
नवमालीकृता तूली विस्तीर्णा शयनं भवेत् ॥ १६० ॥

१४। उल्लोचः ॥
सूचीव्यापसदृक् चित्रपुष्पविन्यासनिर्म्मितः।
खण्डितैः केतकीपत्रैः पर्णवान् मलिलस्त्विभिः ॥ १६१ ॥

१५। चन्द्रातपः ॥
पार्श्वे च सुफलन्मुक्तासिन्धुवार कलापकम्।
मध्यलम्बिनवाम्भोजश्चन्द्रातप इतीर्य्यते ॥ १६२ ॥

कस्तूरी गन्ध से सुवासित है, कण्ठदेश में जिसका गुच्छ लम्बायमान रहता है वह कञ्चुली अर्थात् (काँचोली) है ॥ १५८ ॥

सूक्ष्म-सूक्ष्म शलाका प्रस्तुत करके उसमें पुष्पों को गूँथे तथा सुवर्णजुही पुष्पके द्वारा विचित्र दण्ड निर्म्माण कर छत्र बनावें ॥१५६॥

चम्पक, अशोक और प्रचुर परिमाण से मल्लिका पुष्पों के द्वारा [गेंदुया] गेंद बनावें। नवमल्लिका पुष्पों से दीर्घाकार तकिया प्रस्तुत कर शय्या को सजावें ॥ १६० ॥

उल्लोच एक प्रकार चन्द्रातप है। अल्प समय में पड़े हुए निर्मल जल की भाँति स्वच्छ और विचित्र पुष्पों के विन्यास से विरचित तथा खण्ड खण्ड के बड़ा पत्र के द्वारा पत्रयुक्त कुछ मलीन है॥१६१॥

जिसका पार्श्व भाग में मुक्ता के तुल्य सिन्धुवार पुष्प समूह दीप्तिमान् होता है तथा जिसके मध्यदेश में नवीन पद्म लम्बमान है उसे चन्द्रातप [चाँदोया] कहते है ॥ १६२ ॥

१६। वेश्म ॥

शरकाण्डै कृतस्तम्भ चित्रपुष्पादिसवृते ।
पुष्पै कृतचतु खण्ड विविधैर्वेश्म भण्यते ॥ १६३ ॥

अथ दूत्य ॥

वृन्दा वृन्दारिका मेला मुरल्याद्यास्तु दूतिका. ।
कुञ्जादिसंस्कृताभिज्ञा वृक्षायुर्व्वेदकोविदा ॥
वशीकृतस्थानवरा द्वयोः स्नेहेन निर्भरा ।
गौराङ्गयश्चित्रवसना वृन्दा तासु वरीयसी ॥ १६४ ॥

विशाखा ॥

विशाखा नवतो भद्रा प्रेमनर्म्मसखी मता ।
अखण्डाऽद्वीणमन्त्रेय गोविन्दे नर्म्मकर्म्मका ॥
परिज्ञातार्थहृदया बुद्धिदूत्यैककोविदा ।
साम्नि कान्दर्पिकोपाये दाने भेदे च पेशला ॥

शरकण्डा तृण के दण्ड से जिसका स्तम्भ अर्थात् खूँटी विरचित है तथा खूँटी-समूह विचित्र पुष्पों से आवृत हैं, इस प्रकार विविध पुष्पों से रचित चतुरश विशिष्ट स्थान को वेश्म अर्थात् गृह कहते हैं ॥ १६३ ॥

अब दूतिओं का वर्णन करते हैं। वृन्दा, वृन्दारिका, मेला, मुरली आदिक दूतिका हैं। ये सब कुञ्जादिकों के संस्कार में परम अभिज्ञा तथा जड़ी-बूटी को पहिचाननेवाली आयुर्वेद में परम पण्डिता, सबको वश में रखने वाली और दोनों के स्नेह से निर्भर हृदया, गौराङ्गी और विचित्र वसन पहरने वाली हैं उनमें वृन्दा श्रेष्ठ है ॥ १६४ ॥

विशाखा जी सब से ही मङ्गलरूपिणी, प्रेम—नर्म्मसखी मानी जाती हैं। वह अटूट यथार्थ मन्त्रणा को देने वाली, तथा श्री गो-

पत्रभङ्गादिरचने माल्यापीडादिगुम्फने ।
विचित्रसर्वतोभद्रमण्डलादिविनिर्मितौ ॥
नानाविचित्रमन्त्रेण सुचिरप्रक्रियासु च ।
सूर्य्याराधनसामग्रीसाधने च विचक्षणा ॥
विचित्रदेशीयगीते सुदक्षा ध्रु पदादिषु ।
रत्नावलिप्रभृतयो या सख्यश्चित्रकोविदा ॥ १६५-१६६ ॥

वस्त्रदास्य ॥

माधवी मालती चन्द्ररेखाद्या आलयस्तथा ।
याश्च वस्त्राधिकारिण्य सख्यो दास्यश्च सम्मता ॥ १६७ ॥
या वन्यदेव्यधिकृता सर्वानन्दचमत्कृती ।
याश्च प्रसूनवृक्षेषु सख्योऽधिकृतिमाश्रिता ॥ १६८ ॥
मालिकाद्याश्च यास्तासु सर्व्वास्वध्यक्षतां गता ।
तृतीया चम्पकलता दूत्यतन्त्रप्रघट्टके ॥ १६९ ॥

बिन्द में तन्मैं भाव को रखती हैं। जो हृदय में समस्त बातों को पहिचान लेती है और बुद्धि के द्वारा दूती क्रिया में परम पण्डिता हैं तथा साम, कन्दर्प सम्बन्धी उपाय,दान और भेदों में चतुरा हैं। पत्र-पुष्पों की रचना में, माल्यादिक गूंथने में, सब से विचित्र मङ्गलमय मण्डलादि निर्माण में, नाना प्रकार की विचित्र मन्त्रणाओं के द्वारा बड़े २ कार्य्यों में, सूर्य्य आराधन की सामग्रियों के साधन में विचक्षण तथा विचित्र नाना देशीय गीतों में [ध्रुपदादिकों में] रत्नावलि प्रभृति परम अभिज्ञा जो सखियाँ हैं,माधवी,मालती,चन्द्र-रेखादिक जो आलीगण हैं,वस्त्राधिकारिणी जो सखी-दासीगण हैं, सकल आनन्द-चमत्कार-कृति में अधिकार प्राप्त जो वनदेवियाँ हैं, पुष्प-वृक्षों में अधिकार प्राप्त जो मालिकादि सखियाँ हैं, उन सब की अध्यक्षा ललिता जी हैं। तीसरी चम्पकलताजी दौत्य-मन्त्रणा में

निगूढाम्भसम्भारा वाचोयुक्तिविशारदा ।
उपायेन पटिम्ना च प्रतिपक्षापकर्षकृत् ॥ १७० ॥
फलप्रसूनकन्दाना सन्धानप्रक्रियाविधौ ।
हस्तचातुर्य्यमात्रेण नानामृण्मयनिर्मितौ ॥ १७१ ॥
षड्सानां परीक्षायां शुद्धिशास्त्रे च कोविदा ।
मितोत्पलाकृतिपटु मिष्टहस्तेति विश्रुता ॥
पौगण्डयश्च पचने या सख्यो दासिकाश्च या ।
कुरङ्गाक्षी प्रभृतय सख्यो या अष्टसख्यरा ॥ १७२ ॥
अष्टसखीचरितम् ॥
सखलेषु द्रुमलतागुल्मेष्वधिकृताश्च या ।
सखीप्रभृतय सर्व्वा सम्प्राताध्यक्षतामसौ ॥ १७३ ॥

गुप्त रूप से कार्य्य कराने वाली तथा वचन युक्तियों में परम पण्डिता हे। पटु न्याय के द्वारा प्रतिपक्ष में अपकर्ष देने वाली भी हैं ॥ १६५–१७० ॥

फल, पुष्प, मूलों का सन्धान कार्य्य में, हाथों के चातुर्य्य मात्र से नाना प्रकार की मृण्मय वस्तुओं की रचना में, छै रसों की परीक्षा कारिणी शुद्धि शास्त्र मे पण्डिता, मिसरी–सितोपलादि के बनाने में चतुरा, मिष्टहस्ता नाम से प्रसिद्धा, दुग्धादिकी साम ग्रियों को बनाने वाली जो सखी-दासियाँ हैं तथा समस्तलता, गुल्म वृक्षादिकों में अधिकार प्राप्त कुरङ्गाक्षी प्रभृति जो आठ सखियाँ हैं, उन सबकी अध्यक्षा चम्पकलता जी हैं ॥ १७१–१७३ ॥

चित्रा जी सर्वत्र विचित्र विचित्र कार्य्यो मे पहुँचने वाली हैं। अपनी विचित्र चातुरी से सर्वत्र उनका प्रवेश है। गमन अभिसार- ण में, छै गुणों के लेख में, सङ्केत जानने में, नाना देशीय भाषा बोलने में, दृष्टिमात्र से क्षीर मधु प्रभृति वस्तुओं के पहिचानने में,

प्रवेशनीया सर्व्वत्र चित्रादिपूर्व्वकर्म्मसु ।
चित्रा विचित्रचातुर्य्या सर्व्वत्रासौ प्रवेशिनी ।
यानेऽभिसरणाभिख्ये षड्गुणस्य तृतीयके ॥ १७५ ॥
लेखेऽपीङ्गितविज्ञाने नानादेशीयभाषिते ।
दृष्टिमात्रात् परिचये मध्वाद्यौषधिवस्तुनः ॥ १७६ ॥
काचभाजननिर्म्माणे तन्मध्योर्म्मिचित्रनिर्म्मितौ ।
ज्योतिःशास्त्रे पशुव्रातविद्यायां कार्म्मणेऽपि च ॥ १७७ ॥
वृक्षोपचारशास्त्रे च विशेषात् पाटवं गता ।
रसाना पानकादीना सुष्ठु निर्म्माणकर्म्मणि ॥ १७८ ॥
अष्टौ रसालिकाद्याः स्युः याः सख्यः परिकीर्त्तिता ।
याश्च पेयाधिकारिण्यः सख्यो दास्यश्च सम्मताः ॥ १७९ ॥
दिव्यौषधीना प्रायेण होनाना कुसुमादिभिः ।
तथा वनस्थलीनाञ्च विरुधाञ्चाधिकारिताम् ॥ १८० ॥
लब्धा सख्यादयो याश्च तत्रैवाध्यक्षतां गता ।
तुङ्गविद्या तु विद्यानामष्टादशतयाश्रिता ॥ १८१ ॥
सन्धावतीवकुशला कृष्णविश्रम्भशालिनी ।
रसशास्त्रे नये नाट्ये नाटकाख्यायिकादिषु ॥ १८२ ॥

काचों के बर्त्तनों की रचना में, उनमें (काँच के बर्त्तनों में) नाना चित्रों के निर्माण करने में, ज्योतिषशास्त्र में, पशुविद्या में, शरादिक निर्म्माण में, वृक्षोपचार शास्त्र में विशेष पटुता प्राप्त तथा रसाल-द्रव्य, पानीयद्रव्यों का निर्म्माण कार्य्य में चतुर रसालिकादिक जो आठ सखियाँ कही गयी हैं, दुग्धाधिकारिणी जो सखी दासीगण हैं दिव्य दिव्य औषधि, कुसुम, वनस्थली, लताओं की अधिकारिणी जो सखियाँ हैं उन सबकी अध्यक्षा चित्रा जी हैं ॥ तुंगविद्या जी अठारह विद्या में पण्डिता हैं और श्रीकृष्ण के अति विश्वास पात्री

सर्व्वगान्धर्व्वविद्यायामाचार्य्यत्वमुपागता ।
विशेषान्मार्गगीतादौ वीणायन्त्रादिपण्डिता ॥ १८३ ॥
मञ्जुमेधादय. सख्यो या अष्टौ परिकीर्त्तिता ।
या दूत्य कुशला सन्धौ षड् गुणस्यादिमे गुणे ॥ १८४ ॥
सङ्गीतरङ्गशालाया या. सख्योऽधिकृतिं गता ।
मार्दङ्गिक्य कलावत्यो नर्त्तकी प्रमुखाश्च या ॥ १८५ ॥
वृन्दावनान्तस्थेषु जलेष्वधिकृताश्च या ।
सख्यश्च जलदेव्यश्च तत्रैवाध्यक्षतां गता ॥ १८६ ॥
इन्दुलेखा भवेन्मन्त्रा नागतन्त्रोक्तमन्त्रके ।
विज्ञानस्य च मन्त्रेऽपि सामुद्रकविशेषवित् ॥ १८७ ॥
हारादिगुम्फने चित्रे दन्तरञ्जनकर्म्मणि ।
सर्व्वरत्नपरीक्षाया पट्टडोरादिगुम्फने ॥ १८८ ॥

हैं। रसशास्त्र मे, नीति मे, नाट्य में, नाटक प्रहेलिकादिकों में, समस्त गान्धर्व्वविद्या में, आचार्य्य पदवी प्राप्त और विशेष करके मार्गगीतादिकों मे तथा वीणा-यन्त्रादिकों में पण्डिता मञ्जुमेधादिक जो आठ सखियॉ है, सन्धि कराने मे अतिकुशल जो दूतियॉ हैं, सङ्गीत रङ्गशाला मे अधिकार प्राप्त जो सखियॉ हैं, नर्त्तकी प्रमुख कलावती प्रभृति जो मृदंग बजाने वाली हैं, वृन्दावनस्थ जलों में अधिकार प्राप्त जो सखियॉ तथा जलदेवियॉ हैं उन सबकी अध्यक्षा तु गविद्या जी हैं ॥ १७४–१८६ ॥

इन्दुलेखा जी नागतन्त्रोक्त मन्त्रों मे और विज्ञान मन्त्र मे वलिष्ठा तथा विशेष करके सामुद्रिकशास्त्र को जानने वाली हैं। हारादि गूँथने में, चित्र कर्म्म मे, दन्तरञ्जन कार्य्य मे, समस्त रत्नों की परीक्षा में, पट्टडोरादि गूँथने में, सौभाग्यमन्त्र के लेख मे पारस्परिक अनुराग बढ़ाते हुए दोनों के भुजों में मन्त्र के धारण करने में कुशल

लेभे सौभाग्यमन्त्रस्य कौशलं यद्व्रजे ध्रुवम् ।
अन्योन्यसंगमुत्पाद्य सौभाग्यं जनयद्द्वयम् ॥ १८९ ॥
तुङ्गभद्रादयस्त्वस्याः सख्यः स्यु प्रत्यनन्तराः ।
यास्तु साधारणा दूत्यो द्वयोः पालिन्धिकादयः ॥ १९० ॥
तासां रहस्यवार्त्तानामियं भाजनतां गता ।
अलङ्कारेषु वेशेषु कोशरक्षाविधौ च याः ॥ १९१ ॥
सख्यो दास्योऽप्यधिकृता याश्च वृन्दावनान्तरे ।
स्थलेष्वधिकृता याश्च तास्वध्यक्षतया स्थिता ॥ १९२ ॥
रङ्गदेवी सदोत्तुङ्गा हावेङ्गिततरङ्गिणी ।
कृष्णाग्रेऽपि प्रियसखीनर्मकौतूहलोत्सुका ॥ १९३ ॥
षाड्गुण्यस्य गुणे तस्यै युक्तिवैशिष्ट्यमाश्रिता ।
कृष्णस्याकर्षणे मन्त्रे तपसा पूर्व्वमीयुषी ॥ १९४ ॥
विचित्रेष्वङ्गरागेषु गन्धयुक्तिविधौ च याः ।
कलकण्ठीप्रभृतयः सख्योऽष्टौ याः प्रकीर्त्तिताः ॥ १९५ ॥

तुंगभद्रादिक जो सखियाँ हैं, दोनों की पालिन्धिका प्रभृति जो साधारण दूतिका हैं, रहस्यवार्त्ताओं की जो पात्री हैं, अलङ्काररचना, वेशरचना, कोषरक्षा विषय में नियुक्त जो सखि दासियाँ तथा वृन्दावन में स्थानों का अधिकार प्राप्त जो सब सखिगण हैं उन सबकी अध्यक्षा इन्दुलेखा जी हैं ॥ १८७-१९२ ॥

रंगदेवी जी सदा सर्व्वदा उत्तुंगा, हाव, भाव, इङ्गित की तरङ्गिणी रूपिणी हैं । श्रीकृष्ण के समक्ष में भी प्रियसखी के साथ नर्म्म-कौतूहल करने में उत्सुका हैं तथा छः गुणों में तथा चातुरता में अति युक्ति रखने वाली हैं । पहले इनने श्रीकृष्ण के आकर्षण मन्त्र की तपस्य की थी । विचित्र अंगरागों में, गन्ध वस्तु को लगाने में कलकण्ठी प्रभृति जो आठ सखियाँ कही गई हैं, धूपनकार्य्य में अ-

सख्यो दास्येऽप्यधिकृता याश्च धूपनकर्म्मणि ।
शिशिरेऽङ्गारधारिण्यस्तपर्त्तावपि वीजने ॥ १६६ ॥
आरण्येकेषु पशुषु केशरिषु मृगादिषु ।
सखीप्रभृतयो याश्च तत्रैपाध्यक्षता गता ॥ १६७ ॥
सुदेवी केशसंस्कार प्रियसख्यस्तथाञ्जनम् ।
अङ्गसम्वाहनं चास्याः कुर्व्वती पार्श्वगा सदा ॥ १६८ ॥
शारिकाशुकशिक्षायां नौकाकुक्कुटखेलने ।
भूरिशाकुनशास्त्रे च पद्यादिरुतबोधने ॥ १६६ ॥
चन्द्रोदयाद्र पुष्पादि वन्हिविद्याविधावपि ।
उद्वर्त्तनविशेषे च सुष्ठु कौशलमागता ॥ २०० ॥
गण्डूपक्षेपपात्रेषु गेण्डुके शयनेऽपि च ।
याः कावेरीमुखाः सख्यस्ता अस्याः प्रत्यनन्तगाः ॥ २०१ ॥

धिकार प्राप्त जो सखी दासियाँ हैं, शीतकाल में जो अग्नि धरने वाली तथा ग्रीष्म में पंखा चलाने वाली हैं,आरण्य पशु, सिंह मृगादिकों का अधिकार प्राप्त जो सखीगण है उन सब की अध्यक्षा रंगदेवी जी हैं ॥ १६३—१६७ ॥

सुदेवी जी निरन्तर प्रिया जी के पास में रहती हैं तथा उनके केश संस्कार, अञ्जन प्रदान, तथा अंग-संवाहन का कार्य्य करती हैं। शारिका-शुक के सिखाने में, नौका चलाने में, कुक्कुटों को खिलाने में, शकुन शास्त्र में, पक्षियों के शब्द पहिचानने में, चन्द्रोदय से आर्द्र पुष्पादिकों को जानने में,अग्निविद्या विधि में, उद्वर्त्तनविशेष में विशेष कुशला हैं। गण्डूष क्षेपणपात्रों में, गेंदों के सम्भाल ने में, शयन कार्य्यों के समाधान में नियुक्ता कावेरी प्रमुख जो सखी गण हैं, आसन सम्भाल ने के कार्य्य में अधिकार प्राप्त जो सखीदासियाँ हैं, प्रतिपक्षों के भावों को जानने के लिये विचरण करने वाली

आसनस्याधिकारे या. सख्यो दास्यश्च सम्मता ।
प्रतिपद्धादिभागाना या ज्ञानाय चरन्ति च ॥ २०२ ॥
धूर्त्ता प्रनिधिरूपेण नानावेशधरा स्त्रिय ।
याश्च पक्षिषु वन्येषु द्वेके त्वधिकृतास्तथा ॥
सख्यश्च वनदेव्यश्च तत्रै पाध्यक्षतां गता ॥ २०३ ॥

सखीनां निभिन्नभावा ॥

अथ शिल्पनियोगादेर्विवृति क्रियतेऽधुना ॥ २०४ ॥
निग्रहे ग्रहिला सख्य पिण्डका निर्वितण्डका ।
पुण्डरीका सितारवण्डी चारुचण्डी सुदन्तिका ॥ २०५ ॥
अकुण्ठिता कलाकण्ठी रामची मेचिकादय. ।
ताम्राशुकापि कान्तभा पिण्डके निश्चितागमम् ॥ २०६ ॥
शिलष्टैर्वचनशौण्डिर्ये र्विलज्जयति माधवम् ।
हरिद्राभा हरिच्चेला हरिमिश्रापि या गिरा ।
वितण्डिका त्रितण्डाभिर्निग्रहे. स्थानमानयेत् ॥ २०७ ॥

तथा नाना वेश धारिणी जो स्त्रियाँ है, वन्य पक्षियों (वीरकोकिलादि) मे अविकार प्राप्त जो सब सखी वनदेवियाँ हैं उन सबकी अध्यक्षा सुदेवी जी हैं ॥ १९८-२०३ ॥

अब सखियों के निभिन्न भाव बतलाते है तथा शिल्प नियोगों का विवरण कहते हे। निग्रह मे हठ रखने वाली जो सखियाँ हैं उन में पिण्डका, निर्वितण्डिका, पुण्डरीका, सितारवण्डी, चारुचण्डी, सुदन्तिका, अकुण्ठिता, कलाकण्ठी, रामची, मेचिकादिक ये सब हैं। पिण्डका मनोहर कान्तिवाली, ताम्रवर्ण वस्त्र को पहिनती है। वह निश्चिन्त हृदय से शिलष्ट वचन परिपाटी के द्वारा माधव को लज्जित करती है। वितण्डिका हरिद्वर्णा तथा हरिद्वस्त्र को पहरने वाली हैं। जो वाणी से हरिमिश्रा है। यह वितण्डा सखी निग्रह के द्वारा श्रीहरि

पुण्डरीका पटं धृत्वा पुण्डरीकाजिनच्छवि।
पुण्डरीकाङ्गभा तर्ज्जेत् पुण्डरीकाक्षमागसि ॥ २०८ ॥
शिखण्डिनीत्विषा गौरीनाम्ना सिताम्बरा सदा।
वक्ति काठिन्यमाधुर्य्यात् सिताखण्डीति या हरेः ॥२०९ ॥
चारुचण्डी भगिन्यस्या भृङ्गश्यामा तडित्पटा।
चारुचण्डतया वाचां चारुचण्डीति भण्यते ॥ २१० ॥
सुदण्डिका शिरीषाभा कुरुण्टकनिभाम्बरा।
करोत्युज्ज्वलमप्येषा पाटवैरसमुज्ज्वलम् ॥ २११ ॥
अकुण्ठिताब्जकाण्डाभा विसकाण्डसिताम्बरा।
आगःकृष्णस्य या वष्टि स्वसमाज-समृद्धये ॥ २१२ ॥

के स्थान पर लाती है। पुण्डरीका पुण्डरीक (सफेद कमल) की तरह अंगकान्ति वाली तथा ऐसा ही वस्त्र पहिनती है। पुण्डरीका अपराधकारी पुण्डरीकाक्ष श्री हरि का पटाञ्चल धारण कर तर्जना करती है ॥ २०८ ॥

सिताखण्डी शिखण्डिनी की तरह अंगकान्ति वाली, शुभ्रवस्त्र धारिणी, गौरी नाम से ख्यात है। वह माधुर्य्य युक्त कठिन वचन बोलती है ॥ २०९ ॥

चारुचण्डी सिताखण्डी की भगिनी, भ्रमर की तरह अंगकान्ति वाली,विद्युत्वस्त्रा है। मनोहर चण्ड वचन बोलने के कारण चारुचण्डी नाम से कही जाती है ॥ २१० ॥

सुदण्डिका शिरीष पुष्प की तरह कान्ति वाली, कुरण्डक कान्ति के तुल्य वस्त्र पहिनती है। वह पाटव वचनों से उज्वलरस को उत्पन्न कराती है ॥ २११ ॥

अकुण्ठिता कमलकांड की तरह कान्ति वाली तथा विषकाण्ड के तुल्य शुभ्रवस्त्र को पहिनती है। वह निज समाज की समृद्धि के लिये श्रीकृष्ण के अपराध को व्यक्त करती है ॥ २१२ ॥

कलकण्ठी कुलीपुष्पवर्णा क्षीरोदकाम्बरा ।
वष्टि गान्धर्विकामान या हेरश्चाटुभंगया ॥ २१३ ॥
रामची ललिताधात्र्या पुत्री गौरी शुकांशुका ।
यया हरिर्दुर्वचोभिरुद्धवे परिहस्यते ॥ २१४ ॥
पिण्डपुष्परुचि पालङ्कुकूला मेचका सदा ।
कृष्णस्य कुरुते व्यक्तमागस्तस्यैव या गिरा ॥ २१५ ॥
अथ दूत्य ॥
साग्रहा निग्रहादौ स्युर्दूत्य स्खलितयौवना ।
पेटरी वारुडी चारी कोटरा कालटिप्पनी ॥ २१६ ॥
मरुण्डा मोरटा चूड़ा चुण्डरी गोण्डिकादय ।
पिण्डकेलि पुरोगानामेता स्युरनुगा सदा ॥ २१७ ॥
विपक्षाण्डोपमजटा पेटरी वृद्धगुर्जरी ।
वारुडी गारुडीवेशीसदक् चिकुरवेणिका ॥ २१८ ॥

कलकण्ठी कुलीपुष्प की तरह कान्ति वाली हैं तथा दुग्ध जल मिश्रित कान्ति के तुल्य वस्त्र को पहिनती हैं। जो चाटुनास्यों से श्री राधिका के मान को श्रीहरि को सुनाती हैं ॥ २१३ ॥
रामची ललिताजी की धात्रीपुत्री हैं तथा गौरांगी हैं। शुककान्ति वाले वस्त्र को पहिनती हैं। इन्होंने उद्धव जी के समक्ष दुर्व्वचनों से श्री हरि का परिहास किया था ॥ २१४ ॥

मेचका पिण्डपुष्पों की तरह कान्तिवाली हैं, सदा पीला वस्त्र पहिनती हैं। यह श्रीकृष्ण का उनके ही वचनों से अपराध व्यक्त कराती हैं ॥ २१५ ॥

निग्रहादिक में आग्रह रखने वाली,स्खलित यौवना दूतियाँ हैं। उनके नाम पेटरी,वारुडी, चारी,कोटरा, कालटिप्पनी,मरुण्डा, मोरटा, चूड़ा,चुण्डरी, गोण्डिकादिक हैं। ये सब पिण्डकेलि की अग्रगामिनी वनचारिणी हैं ॥ २१६ । २१७ ॥

कुचारीभगिनी चारी तप कात्यायनी स्मृता
कठोरतपसा कात्यायनी देवी समाश्रिता।
आभीरी कोटरा जात्या तिलतण्डुलकेशभाक् ॥ २१९ ॥
पलिता पाण्डुचिकुरा रजनी कालटिप्पनी।
मरुण्डा मुण्डितशिरा पाण्डुभ्रू कुलालिका ॥ २२० ॥
जाताली मोरगा काशकुसुमोपममूर्द्धजा।
चूडावलिदिग्धमुखा ललाटे पलितोज्ज्वला ॥ २२१ ॥
चुण्डरी पुण्डरीकाक्षस्तत्तार्द्धजरती द्विजा।
गोण्डिकेय जरद्गोण्डी मुण्डपाण्डुशिखोज्ज्वला ॥ २२२ ॥
अथ सन्धिदूत्य ॥
चातुर्यसन्धिकुशला शिवदा सौम्यदर्शना।
सुप्रसादा सदाशान्ता शान्तिदा कान्तिदादय ॥ २२३ ॥

पेटरी विपकाण्ड की तरह जटावाली, वृद्ध गूजरी हैं। वारुडी गारुडी वेणी के तुल्य वेणी को धारण करने वाली हैं। कुचारी की भगिनी चारी हैं। जिन्होंने कठोर तपस्या से कात्यायनी-देवी का आश्रय प्राप्त कर लिया था। कोटरी जाति में अहिरिणी तथा तिल तण्डुल केशवाली हैं। कालटिप्पनी वृद्धा, पीले केशवाली, रजकिनी है। मरुण्डा मुण्डित मस्तक तथा पीले भ्रू वाली है। मोरगा काश पुष्प की तरह केशवाली यवनी है। चूडा-वलि पलित मुख वाली उज्ज्वला है। चुण्डरी पुण्डरीक सदृश नेत्रवाली, अर्द्धवृद्धा ब्राह्मणी है। गोण्डिका जरद्गोण्डी वाली है उसका मस्तक पीले केश से उज्ज्वल है। ॥ २१८। २२०॥

अब सन्धिदूतियों का वर्णन करते हैं। शिवदा, सौम्यदर्शना, सुप्रसादा, सदाशान्ता, शान्तिदा, कान्तिदादि सन्धि चातुर्य में कुशल सन्धिदूतियाँ हैं। वे सब सर्व प्रकार से ललितादेवी से वर्तती

सर्वथा ललितादेवीजीविता वस्तुतस्त्विमाः ।
माधवस्य परीवारैस्तस्यास्ता इति मन्यते ॥ २२४ ॥
गान्धर्व्वायां प्रपन्नायां कलहान्तरितां दशाम् ।
ललितेङ्गितमासाद्य हरे र्गणतया स्थिताः ॥ २२५ ॥
स्वीया इति धिया तेन निसृष्टाः पृथुयत्नतः ।
कृतितुष्टा निजाभीष्टं सन्धिमेव सुमन्त्रिताः ॥ २२६ ॥
विधाय सुष्ठु गोविन्दाद्विन्दन्त्यः पारितोषिकम् ।
यान्ति वृन्दावनेश्वर्य्याः प्रसादभरपात्रताम् ॥ २२७ ॥
राघवी शिवदा सौम्यदर्शना सोमवंशजा ।
पौरवी सुप्रसादेयं सदा शान्ता तपस्विनी ॥ २२८ ॥
शान्तिदाकान्तिदे चेति भूमिदेवकुलोद्भवे ।
प्रसादादेव देवर्षे रेता वासं व्रजे ययुः ॥ २२९ ॥

अथ द्वितीयमण्डलम् ॥

द्वितीयोऽस्मान्मनाङ्न्यूनप्रेमा स्यान्मण्डलात् पुरः ।
समासमप्रेमरूपस्तद्वर्गोऽयं निगद्यते ॥ २३० ॥

हैं तथा श्रीमाधव के परिवार में गिनी जाती हैं। श्री-राधिका जी कलहान्तरिता दशा को जब प्राप्त होती हैं तब ये सब ललिताजी के इसारे से श्रीहरि के गण होकर ठहरती हैं। स्वीय बुद्धि से महान् यत्न के द्वारा निज अभीष्ट सन्धि का विधान कर श्रीगोविन्द से पारितोषिक चाहती हैं तथा श्रीवृन्दावनेश्वरी की करुणा पात्रता को प्राप्त होती हैं। शिवदा रघुवंशी तथा सौम्यदर्शना चन्द्रवंशी हैं। सुप्रसादा पुरवासिनी तथा सदाशान्ता तपस्विनी हैं। शान्तिदा, कान्तिदा दोनों भूमिदेव (ब्राह्मण) कुल में उत्पन्न हैं। ये दोनों देवर्षि जी के प्रसाद से व्रज में बास करती हैं ॥ २२३ । २२९ ॥

अब दूसरे मण्डल का वर्णन करते हैं। दूसरा मण्डल पहिले

वर्गः प्रियसखीनां यः समप्रेमेत्यसौ मतः ।
स द्विधा स्यान्नित्यसिद्धो भक्तिसिद्धस्तथा भवेत् ॥ २३१ ॥
नित्यप्रियाणां तत्रापि दशकोटिमितो गणः ।
समवायो नियुतानां लक्षैरष्टाभिरेव च ॥ २३२ ॥
यदष्टकं परप्रेष्ठसखीरष्टानुगच्छति ।
वह्यः सञ्चयास्तत्र सहस्रैः कोऽपि पञ्चभिः ॥ २३३ ॥
भवेत् कश्चिच्चतु पञ्चैः कश्चित्त्रिचतुरैरपि ।
कुतश्चिदिह साधर्म्यात् प्रायः स्यात् सञ्चयैकता ॥ २३४ ॥
समाजः सञ्चयोऽनेकै रेपाप्येकसमाजता ।
भवेत् स्नेहविशेषेण कश्चित् षोडशभागिह ॥ २३५ ॥

मण्डल से प्रेम में कुछ न्यून है तथा समप्रेम असमप्रेम रूप से दो प्रकार का है । इसीलिये वह दूसरा मण्डल वर्ग नाम से कहा जाता है । प्रियसखियों का वर्ग समप्रेम करके सम्मत है । वह नित्यसिद्ध तथा भक्तिसिद्ध करके दो प्रकार का है । इनके मध्य में नित्यसिद्ध प्रियसखियों का गण दश कोटि परिमित है । नियत काल के लिये श्रीराधाकृष्ण की सेवा में आसक्त सखियों का दल आठ लक्ष हैं ।
॥ २३० । २३२ ॥

पहले जो आठ और छै सखियों का उल्लेख किया गया है वे सब प्रधान अष्टसखियों की अनुगामिनी हैं । इनके मध्य में भी बहुत प्रकार का सञ्चय अर्थात् दलभेद हैं ! उनमें से कोई सञ्चय पाँच हजार कोई छै हजार संख्या में हैं । फिर भी कोई चार-पाँच हजार कोई तीन-चार हजार संख्या में हैं । वस्तुतः किसी प्रकार से परस्पर साधर्म्य रहने के कारण समस्त सञ्चयों की प्रायः एकता है । अनेक संख्यक सखिमण्डल के द्वारा एक सञ्चय नामक गण की सृष्टि होती है परन्तु उनमें से प्रत्येक का एकमात्र समाज है । तो भी स्नेह के विशेष रहने के कारण कोई कोई समाज षोलह भाग में विभक्त होता

विंशत्यापि तथा पञ्चविंशत्या त्रिंशता तथा।
षष्ठ्या कश्चित् समाजः स्याच्चतुः षष्ठ्यादिभिस्तथा ॥ २३६ ॥
चतुष्षष्ठ्यादिभिस्तत्र समाजोऽयं प्रपञ्च्यते।
द्वाभ्यां द्वित्रैस्त्रिचतुरादिभिश्चालीजनैर्भवेत् ॥ २३७ ॥
चत्वारिंशद्यूथः कश्चिदेवं पञ्चाशता भवेत्।
सर्व्वभावेण साधर्म्म्ये समाजोऽपि समन्वयः ॥ २३८ ॥
रत्नप्रभा रतिकला सुभद्रा रतिका तथा।
सुमुखी च धनिष्ठा च कलहंसी कलापिनी ॥ २३९ ॥
माधवी मालती चन्द्ररेखिका कुञ्जरी तथा।
हरिणी चपलानाम्नी सुरभिश्च शुभानना ॥ २४० ॥
कुरङ्गाक्षी सुचरिता मण्डली मणिकुण्डला।
चन्द्रिका चन्द्रलतिका पङ्कजाक्षी सुमन्दिरा ॥ २४१ ॥
रसालिका तिलकिनी शौरसेनी सुगन्धिका।
रामिणी कामनगरी नागरी नागवेणिका ॥ २४२ ॥

है। कोई समाज विंशतिजन सखी का, कोई पञ्चविंशति (२५) का, कोई तीस (३०) का,कोई साठ (६०)का,कोई समाज चौसठ (६४) जन सखी का गठन होता है। चौसठ सखी का समाज अब विस्तृत भाव से प्रदर्शित होरहा है। कोई दो जन,कोई दो-तीन जन,कोई तीन चार जन सखी के द्वारा गठित होता है। शेषोक्त समाज बहुविध सख्या विशिष्ट है। उल्लेखित समाज के मध्य में चत्वारिंशत् अर्थात् (४०) यूथ हैं। इस प्रकार समाज को भी ५०० भाग में विभक्त किया जाता है। सर्वभाव से साधर्म्म्य अर्थात् समानधर्म्म रहने के कारण समाज समसंख्या से निर्दिष्ट होता है ऐसा जानना चाहिए। समसंख्या समाज के प्रधान सखियों के ६४ नाम उल्लेखित किये जाते हैं। इसे ६४ सखियों के समाज का विस्तार जानना चाहिए ॥२३३।२३८॥

रत्नप्रभा इत्यादि लेकर मनोहरा इति अन्त पर्य्यन्त मूलश्लोकों

मञ्जुमेधा सुमधुरा सुमध्या मधुरेक्षणा ।
तनुमध्या मधुस्पन्दा गुणचूडा वराङ्गदा ॥ २४३ ॥
तुङ्गभद्रा रसोत्तुङ्गा रङ्गवाटी सुसङ्गता ।
चित्ररेखा विचित्राङ्गी मोदनी मदनालसा ॥ २४४ ॥
कलकण्ठी शशिकला कमला मधुरेन्दिरा ।
कन्दर्पसुन्दरी कामलतिका प्रेममञ्जरी ॥ २४५ ॥
कावेरी चारुकवरा सुकेशी मञ्जुकेशिका ।
हारहीरा महाहीरा हारकण्ठी मनोहरा ॥ २४६ ॥

श्रीराधाया अष्टसख्यः सम्मोहनतन्त्रे-

लीलावती साधिका च चन्द्रिका माधवी तथा ।
ललिता विजया गौरी तथा नन्दा प्रकीर्त्तिता ॥ २४७ ॥

अन्याश्चाष्टौ ॥

कलावती रसवती श्रीमती च सुधामुखी ।
विशाखा कौमुदी माध्वी शारदा चाष्टमी स्मृता ॥ २४८ ॥

तत्र रत्नभवाः ॥

एता नोपेक्षिता उक्ता नित्यानामत्रधारणे ॥ २४९ ॥
इत्येतत्परिवाराणां श्रीवृन्दावननाथयोः ।
असंख्यानां गणयितुं दिग्मात्रमिह दर्शितम् ॥ २५० ॥

को देखें—अर्थ सरल है ॥ २३६ । २४६ ॥

श्री राधाकी अष्टसखियाँ सम्मोहनतन्त्र में—लीलावती, साधिका, चन्द्रिका, माधवी, ललिता, विजया, गौरी, नन्दा हैं। अन्य अष्टसखियाँ – कलावती, रसवती, श्रीमती, सुधामुखी, विशाखा, कौमुदी, माध्वी, शारदा हैं ॥ २४७ । २४८ ॥

नित्यों के निर्णय में इन सब की उपेक्षा नहीं की गयी है ॥२४९॥

यह श्रीवृन्दावननाथ राधाकृष्ण के असंख्य परिवारों की गणना करने में केवल दिङ्मात्र दिखाया गया है ॥ २५० ॥

तल्पान्नपानताम्बूलहिल्लोलस्थासकादय ।
अन्येऽपि ये विशेषाः स्यु स्वयमूह्यास्तु ते बुधै ॥ २५१ ॥
लुप्ततमासीत् कृपया ज्योतिर्घट्येव भानुमत्यासौ ।
रूपनिपयापि दृष्टि सरसान् शब्दानवेक्षिष्ट ॥ २५२ ॥
शाके दृगश्वशक्रे, नभसि नभोमणिदिने षष्ठ्याम् ।
व्रजपतिसद्मनि राधाकृष्णगणोद्देशदीपिकादीपि ॥ २५३ ॥
इति श्रीलरूपगोस्वामिपादविरचितायां श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिकायां
बृहद्भाग: सम्पूर्ण ॥

शय्या, अन्न, पान, ताम्बूल, दोला, झूलन, तिलकरचनादिक अन्यलीला समूह का तथा उस उस लीला की अनुसारिणी अन्य अन्य सखियों के नाम इस ग्रन्थ मे उह्य है। रसिक पण्डितगण विभिन्न ग्रन्थों से उद्धार कर समझ लेवं ॥ २५१ ॥

कालरूप अन्धकार से श्रीराधानाथ के परिवारवर्गों का नाम एक प्रकार से विलुप्त हो रहा था किन्तु श्रीरूप की दृष्टी भगवत्कृपा रूप ज्योतिर्घटा के द्वारा भानुमती अर्थात् सूर्यप्रकाशरूप लाभ कर सरस शब्दों के अवलोकन मे सक्षम हुई है। तात्पर्य यह है श्रीरूप गोस्वामी ने परिवारों के नाम का विविध शास्त्रों से भगवत् कृपा शक्ति के द्वारा उद्धार किया है ॥ २५२ ॥

दृक् २ अश्व ७ शक १४ हैं। अङ्को की गति वाँयदिशा मे है इस नियम से १४७२ शकाब्द श्रावणमास रविवार षष्ठि तिथी मे श्री नन्दमहाराज के शोभायमान गृह मे अर्थात् महावन मे श्रीरूपगोस्वामिपाद इस "श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका" ग्रन्थ का प्रणयन करते हैं ॥ २५३ ॥

इति श्रील श्रीपादरूपगोस्वामिविरचित श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका के बृहद्भाग सम्पूर्ण हुआ। अनुवाद भी सम्पूर्ण हुआ ॥

❀ परिशिष्टम् ❀

(लघु) श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका

श्रीकृष्णस्य रूपादिकम् ॥

सुधालावण्यमाधुर्य्यदलिताञ्जनचिक्कणः ।
इन्द्रनीलमणिः किंवा नीलोत्पलरुचिप्रभा ॥ १ ॥
किंवा नव्यतमालोऽपि मेघपुञ्जमनोहरः ।
प्रभा मारकती कान्तिः सुधालावण्यवारिधिः ॥ २ ॥
पीतवस्त्रपरिधानो वनमालाविभूषितः ।
नानारत्नभूषिताङ्गो नानाकेलिरसाकरः ॥ ३ ॥
दीर्घकुञ्चितकेशोऽपि बहुगन्धसुगन्धितः ।
नानापुष्पमालया च चूडादीप्तिर्मनोहरा ॥ ४ ॥
श्रीमल्ललाटपाटीरस्तिलकालकशोभितः ।
लीलोन्नतभ्रूविलासः कामिनीचित्तमोहनः ॥ ५ ॥

अब श्रीकृष्ण के रूपादिकों का वर्णन करते हैं। ये सुधा-लावण्यता-माधुर्य्य से युक्त और दलित काजर के तुल्य चिक्कण हैं। किम्वा इन्द्रनीलमणि अथवा नीलकमल कान्ति के सदृश श्यामल हैं तथा नवीनतमाल के तुल्य सुन्दर अथवा मेघपुञ्ज के सदृश मनोहर हैं। मारकतमणि की भाँति उनकी कान्ति थी। वे सुधा-लावण्यता के सागर रूप रहे हैं। वे पीताम्बर धारण करने वाले, विविध वनमालाओं से विभूषित, नाना प्रकार के रत्नों से मण्डित अंगवाले, नाना प्रकार के केलिरस के सागर हैं। उनका केश लम्बायमान तथा कुञ्चित हैं जो विविध गन्धों से सुवासित हो रहे हैं। चूड़ा की कान्ति नाना प्रकार के पुष्पों की माला से मनोहर है। शोभायमान ललाट देश तिलक और अलकावली से विशेष सुन्दर हो रहा है। वे लीला से उन्नत भ्रूविलास के द्वारा कामिनी गणों के चित्त को मो-

घूर्णयमान सुनयन रक्तनीलोत्पलप्रभम् ।
खगेन्द्रचञ्चुलावण्य-सुनासाग्रजसुन्दर ॥ ६ ॥
मनोहारिकर्णयुग्म मणिकुण्डलशोभितम् ।
नानामणिकुण्डलाढ्यगण्डस्थलविराजित ॥ ७ ॥
मुखपद्म सुलावण्य कोटिचन्द्रप्रभाकरम् ।
नानाहास्यसुमधुरश्चिवुको दीप्तिमान् भवेत् ॥ ८ ॥
कण्ठदेश सुलावण्यो मुक्तामाला विभूषित ।
त्रिभङ्गो ललितस्निग्धग्रीवस्त्रैलोक्यमोहन ॥ ६ ॥
वक्ष स्थलञ्च लावण्यैरमणीरमणोत्सुकम् ।
मणिकौस्तुभविद्युद्भामुक्ताहारविभूषितम् ॥ १० ॥
आजानुलम्बितौ भुजौ केयूरवलयान्वितौ ।
रक्तोत्पलहस्तपद्मौ नानाचिन्हसुशोभितौ ॥ ११ ॥
गदा शङ्ख-यव-च्छत्र चन्द्रार्द्धाङ्कुशशोभितौ ।
ध्वज-पद्म-यूप-हल घट-मीन विराजितौ ॥ १२ ॥

हित करने वाले हैं। उनके नयन-युगल घूर्णायमान तथा रक्त-नील उत्पल की प्रभा के तुल्य हैं। गरुड चञ्चु के सदृश तथा लावण्यमय सुन्दर नासिका से वे शोभायमान हैं। मणि-कुण्डलों से शोभित मनोहरणकारी उनका कर्णयुगल हैं। वे नाना मणिकुण्डलों से युक्त गण्डस्थल के द्वारा विशेष शोभा युक्त हैं। उनका मुखकमल लावण्यमय कोटि चन्द्रमा की कान्ति के तुल्य है। उनका नाना प्रकार के हास्य रस से सुमधुर, दीप्तिमान् चिवुक है। उनका कठदेश सुन्दर लावण्यमय तथा मुक्तामालाओं से विभूषित है। त्रिभंगी से ललित, त्रैलोक्यमोहन स्निग्ध ग्रीवा तथा लावण्यों से रमणीगण के रमण में उत्सुक वक्षस्थल है। जो कौस्तुभमणि और विद्युत्कान्ति वाले मुक्ता हारों से विभूषित है। केयूर तथा वलयादिक से युक्त जानुलम्बि भुज

उदरञ्च सुमधुरं लावण्यकेलिसुन्दरम् ।
पृष्ठपार्श्वं सुधारम्यं रमणीकेलिलालसम् ॥ १३ ॥
कटिबिम्बं सुधाम्भोजं कन्दर्पमोहनोत्सुकम् ।
रामरम्भे इवोरू द्वौ नारीमोहनकारकौ ॥ १४ ॥
जानू द्वौ च सुलावण्यौ मधुरौ परमोज्वलौ ।
पादपद्मौ सुमधुरौ रत्ननूपुरभूषितौ ॥ १५ ॥
जवापुष्पसमरुची नानाचिन्हसुशोभितौ ।
चक्रार्द्धचन्द्राष्टकोण-त्रिकोण-यवशोभितौ ॥ १६ ॥
अम्बर-च्छत्र-कलस-शंख-गोष्पद-स्वस्तिकौ ।
अङ्कुशाम्भोज-धनुषा जाम्बवेन च शोभितौ ॥ १७ ॥
अंगुल्योऽरुणभाः सम्यङ् नखचन्द्रसमन्विताः ।
श्रीयुतौ चरणाम्भोजौ नानाप्रेमसुखार्णवौ ॥ १८ ॥

युगल हैं। नाना चिन्हों से सुशोभित रक्त उत्पल की तरह हस्तकमल हैं जो कि गदा, शंख, यव, छत्र, अर्द्ध चन्द्र, अंकुश से शोभायमान तथा ध्वजा, पद्म, यूप, हल, घट, मीन के चिन्हों से विराजमान हैं। लावण्य क्रीड़ा से युक्त सुन्दर सुमधुर उदर है। रमणियों की केलि में लालस, सुधा से भी सुन्दर पृष्ठ और पार्श्वदेश हैं। कन्दर्प मोहन में उत्सुक, सुधामय कमल की तरह कटिबिम्ब है। नारीगण 'मोहनकारी, मनोहर रम्भा की भाँति ऊरु युगल हैं। मधुर, परमोज्वल, सुन्दर लावण्यमय दोनों जंघा हैं। रत्न, नूपुरों से भूषित, नाना चिह्नों से सुशोभित, जवापुष्पों की तरह कान्तिवाले महा-सुमधुर युगल चरण कमल हैं। जो चक्र, अर्द्ध चन्द्र, त्रिकोण, यव, अम्बर, छत्र, कलस, शंख, गोष्पद, स्वस्तिक, अंकुश, कमल, धनुष, जामन चिह्नों से शोभायमान हैं। अंगुलियाँ अरुण कान्ति के तुल्य तथा नखचन्द्रों से युक्त हैं। यह चरण युगल शोभायुक्त,

एतेषां कृष्णरूपाणां तुलना नहि विद्यते।
किञ्चिदुद्दीपनार्थाय दिङ्मात्रमिह दर्शितम् ॥ १९ ॥

अथ वयस्याः ॥

अथ श्रीकृष्णचन्द्रस्य सखिवृन्दश्च कथ्यते।
अग्रगामी वयस्यानां प्रलम्बारातिरग्रजः ॥ २० ॥

वयस्यभेदाः ॥

सुहृत्-सखि-प्रियसखाः-प्रियनर्मसखस्तथा।
वयस्याः कृष्णचन्द्रस्य स्फुटमत्र चतुर्विधाः ॥ २१ ॥

तत्र सुहृत् ॥

सुभद्रः कुण्डली दण्डी मण्डलोऽमी पितृव्यजाः।
सुनन्दो नन्दिरानन्दी इत्याद्या यातरः स्मृताः ॥ २२ ॥
शुभद्रो मण्डलीभद्र-भद्रवर्द्धन-गोभटाः।
यक्षेन्द्र-भट-भद्राङ्ग-वीरभद्र महागुणाः ॥ २३ ॥
कुलवीरो महाभीमो दिव्यशक्तिः सुरप्रभः।
रणस्थिरादयो ज्येष्ठकल्पाः सरक्षणाय ये ॥ २४ ॥

नाना प्रेम सुख के सागर रूप हैं। इन सब श्रीकृष्ण के रूपों की जगत् में तुलना नहीं है। परन्तु किञ्चिन्मात्र उद्दीपन के लिये यहाँ दिङ्मात्र दिखाया गया है ॥१—१९॥

अथ श्रीकृष्णचन्द्र के सखावृन्दों को कहते हैं। वयस्यों में अग्रज प्रलम्बारि बलदेव जी अग्रगामी हैं ॥ २० ॥

सुहृत्, सखा, प्रियसखा, प्रियनर्मसखा के भेद से श्रीकृष्ण के चार प्रकार के वयस्य हैं। पहिले सुहृत् का भेद कहते हैं। सुभद्र, कुण्डल, दण्डी, मण्डल ये सब चचेरे भाई तथा सुनन्द, नन्दि, आनन्दि ये सब यातर हैं। सुभद्र, मण्डलीभद्र, भद्रवर्द्धन, गोभट, यक्षेन्द्र, भट, भद्रांग, वीरभद्र, ये सब महान् गुण वाले हैं। कुलवीर, महा-

पितृभ्यामभितो भीतचित्ताभ्यां दुष्टकंसतः ।
प्राणकोट्यधिकप्रेष्ठपुत्राभ्यां विनियोजिताः ॥
अत्राध्यक्षोऽम्बिकासूनु विजयाक्षस्तपस्यया ।
यः किलाम्बिकया लेभे धात्र्योपास्य सदाम्बिकाम् ॥ २५ ॥

तत्र सुभद्रः ॥
सुचिक्कणो नीलवर्णः सुभद्रो दीप्तिमान् भवेत् ।
पीतवस्त्रपरीधानो नानाभरणशोभितः ॥ २६ ॥
उपनन्दः पिता तस्य तुला माता पतिव्रता ।
परमोज्ज्वलकैशोरः पत्नी कुन्दलता भवेत् ॥ २७ ॥

अथ सखायः ॥
विशाल-वृषभौजस्वि देवप्रस्थ-वरूथपाः ।
मन्दार-कुसुमापीड-मणिबन्धकरास्तथा ॥ २८ ॥
मन्दरश्चन्दनः कुन्दः कलिन्दकुलिकादयः ।
कनिष्ठकल्पाः सेवायां सखायो विपुलाग्रहाः ॥ २९ ॥

भीम, दिव्यशक्ति,सुरप्रभ,रणस्थिरादिक बलदेव जी के सदृश बड़े हैं तथा कंस से भयभीत पिता माता के द्वारा प्राणकोटि से अधिक प्रिय श्रीकृष्ण की संरक्षा के लिये नियुक्त किये हुए हैं। इन सबके अध्यक्ष अम्बिकापुत्र विजयाक्ष हैं। धात्री अम्बिका ने निरन्तर अम्बिकादेवी की उपासना कर विजयाक्ष को पुत्ररूप से लाभ किया है ॥२१–२५॥

इनमें से सुभद्र स्निग्ध-नीलवर्ण-कान्तिमान् हैं तथा पीतवस्त्र-धारी–नाना आभरण से शोभित हैं। उनके पिता का नाम उपनन्द और माता पतिव्रता तुलादेवी हैं। सुभद्र परम उज्ज्वल कैशोर अवस्था के हैं। उनकी पत्नी कुन्दलता है ॥ २६–२७ ॥

अब सखाओं का वर्णन करते हैं—विशाल, वृषभ, ओजस्वि, देवप्रस्थ, वरूथप, मन्दार, कुसुमापीड, मणिबन्धकर, मन्दर, चन्दन, कुन्द, कलिन्द, कुलिकादिक सखा हैं। वे सब सखा सेवा में विपुल

अथ प्रियसखाः ॥

श्रीदामा दामा सुदामा वसुदामा तथैव च ।
किङ्किणिभद्रसेनांशुस्तोककृष्णा विलासिनः ॥ ३० ॥
पुण्डरीक-विटङ्काक्ष-कलविङ्क-प्रियङ्कराः ।
श्रीदामाद्याः समास्तत्र श्रीदामा पीठमर्दकः ॥ ३१ ॥
समस्तमित्रसेनाना भद्रसेनश्चमूपतिः ।
स्तोककृष्णो यथार्थाख्यः कृष्णस्य प्रत्यनन्तरः ॥ ३२ ॥
रमयन्ति प्रियसखाः केलिभिर्विविधैरमी ।
नियुद्धदण्डयुद्धादिकौतुकैरपि केशवम् ॥ ३३ ॥
एते प्रियसखाः शान्ताः कृष्णप्राणसमा मताः ॥ ३४ ॥

अथ प्रियनर्मसखाः ॥

सुवलार्जुनगन्धर्ववसन्तोज्ज्वलकोकिलाः ।
सनन्दनविदग्धाद्याः प्रियनर्मसखा मताः ॥ ३५ ॥

आग्रह रखने वाले कनिष्ठ कल्प है ॥ २८–२६ ॥

अब प्रिय सखाओं का वर्णन करते हैं। श्रीदाम, दाम, सुदाम, वसुदाम, किङ्किणि, भद्रसेन, अंशुमान्, स्तोककृष्ण, विलासि,पुण्डरीक, विटङ्काक्ष, कलविङ्क, प्रियङ्कर, ये सब प्रियसखा हैं। श्रीदामादिक समान वयः और रूप वाले हैं। श्रीदामा पीठमर्दक तथा भद्रसेन समस्त मित्रसेनाओं के सेनापति हैं। स्तोककृष्ण श्रीकृष्ण के प्रति अपने यथार्थ नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रियसखागण विविध क्रीड़ाओं से तथा नियुद्ध-दण्डयुद्धादिक विविध कौतुकों से केशव को सुखी करते हैं। ये सब शान्त प्रकृति के तथा कृष्ण के परम प्राण रूप हैं। ॥ ३०–३४ ॥

अब प्रियनर्मसखाओं का वर्णन करते हैं।—सुवल, अर्जुन, गन्धर्व, वसन्त, उज्ज्वल, कोकिल, सनन्दनादिक तथा विदग्धादिक

तद्रहस्यन्तु नास्त्येव यदमीषां न गोचरः ।
मधुमङ्गलपुष्पाङ्क हासङ्काद्या विदूषकाः ॥
श्रीमान् सनन्दनस्तत्र सौहृदानन्दसुन्दरः ।
मूर्त्तिमानेव रसराडुज्ज्वलश्च महोज्ज्वलः ।
विलासिशेखरो यस्य विलासेन वशीकृतः ॥ ३६ ॥

तत्रादौ श्रीदामा ॥

श्रीदामा श्यामलरुचिरङ्गकान्ति र्मनोहरा ।
पीतवस्त्रपरिधानो रत्नमालाविभूषितः ॥ ३७ ॥
वयः षोडशवर्षैश्च किशोरः परमोज्ज्वलः ।
श्रीकृष्णस्य प्रियतमो बहुकेलिरसाकरः ॥ ३८ ॥
वृषभानुः पिता तस्य माता च कीर्त्तिदा सती ।
राधानङ्गमञ्जरी च कनिष्ठा भगिनी भवेत् ॥ ३९ ॥

तत्र सुदामा ॥

ईषद्गौरः सुदामा च देहकान्तिर्मनोहरा ।
नीलवस्त्रपरिधानो रत्नाभरणभूषितः ॥ ४० ॥

प्रियनर्मसखा हैं। ऐसा कुछ रहस्य नहीं था जो कि इनके गोचर न हों। मधुमङ्गल, पुष्पाङ्क, हासङ्कादिक विदूषक थे। उनमें से सनंदन परम श्रीमान् सुहृदता के आनन्द मे सुन्दर था। उज्ज्वल तो मूर्त्तिमान् रसराज की तरह महान् उज्ज्वल था। विलासि शेखर श्रीकृष्ण जिसके विलास से वशीभूत हो गये थे ॥ ३५—३६ ॥

पहिले श्रीदामा का वर्णन करते हैं। श्रीदामा श्यामलरुचि अंगकान्ति से मनोहर हैं। वे पीताम्बर धारण करने वाले तथा रत्नमालाओं से विभूषित हैं। षोडश वर्षीय कैशोर अवस्था से परम उज्ज्वल हैं जो कि श्रीकृष्ण के प्रियतम तथा बहु केलिरस के भंडार रूप हैं। उनके पिता वृषभानु जी और माता कीर्त्तिदा सती हैं। श्रीराधा और अनङ्गमञ्जरी ये दोनों छोटी भगिनी हैं ॥ ३७—३९ ॥

पिता च मटुको नाम रोचना जननी भवेत्।
सुकिशोरवयो वेशः नानाकेलिरसोत्करः ॥ ४१ ॥

१। अथ सुवलः ॥

सुवलस्य गौरकान्तिर्नीलवस्त्रमनोहरः।
नानारत्नभूषिताङ्गो नानापुष्पविभूषितः ॥ ४२ ॥
सार्द्धं द्वादशवर्षीयः कैशोरवयसोज्ज्वलः ।
सखीभावं समाश्रित्य नानासेवापरिप्लुतः ॥ ४३ ॥
द्वयोर्मिलननैपुण्यो मधुरो भावभावितः।
नानागुणसखोपेतः कृष्णप्रियतमो भवेत् ॥ ४४ ॥

२। अर्ज्जुनः ॥

रक्तोत्पलनिभा कान्तिरर्ज्जुनो दीप्तिमान् भवेत्।
वसनं चन्द्रकान्तिश्च नानारत्नसुशोभितः ॥ ४५ ॥
पिता सुदक्षिणस्तस्य भद्रा च जननी भवेत्।
ज्येष्ठो भ्राता वसुदामा द्वयोः प्रेमपरिप्लुतः ॥ ४६ ॥

सुदामा जी ईषत् गौरवर्ण हैं। उनकी अंगकान्ति परम मनोहर है। वे नीलाम्बर पहरने वाले तथा रत्नमय आभरणों से विभूषित हैं। पिता का नाम मटुक और रोचना जननी है। सुन्दर कैशोर वयः वेश से युक्त तथा नाना केलिरस से उत्सुक हैं ॥ ४०—४१ ॥

सुवल जी की अंगकान्ति गौरवर्ण है। वे नीलाम्बर से मनोहर तथा नाना रत्नों से भूषित अंग वाले हैं। नाना पुष्पों से विभूषित हैं। साढ़े द्वादश वर्षीय कैशोर अवस्था से परम उज्ज्वल हैं। सुवल जी सखीभाव का आश्रय कर नाना प्रकार से सेवा करते हैं। दोनों का मिलन कराने में परम निपुन, मधुर, भावों से विभावित, नाना गुणों से आनन्दयुक्त, श्रीकृष्ण के प्रियतम हैं ॥ ४२—४४ ॥

अर्जुन जी की कान्ति रक्तोत्पल की तरह है। वे परम दीप्तिमान् हैं तथा चन्द्रमाकान्ति के तुल्य वस्त्र को पहरने वाले हैं। और

सार्द्धचतुर्द्दश समा वयः कैशोरकोज्ज्वलः ।
नानापुष्पभूषिताङ्गो वनमालाविभूषितः ॥ ४७ ॥

३। गन्धर्व्वः ॥
निशाकरप्रभाकान्तिर्गन्धर्व्वो रूपवान् भवेत् ।
रक्तवस्त्रपरिधानो नानाभरणसंयुतः ॥ ४८ ॥
वयो द्वादशवर्षञ्च किशोरवयसोज्वलः ।
नानापुष्पभूषिताङ्गो गन्धर्व्वश्च सुशोभितः ॥ ४९ ॥
माता मित्रा सुसाध्वी च विनाको जनको महान् ।
श्रीकृष्णस्य प्रियतमो नानाकेलिकुतूहलः ॥ ५० ॥

४। वसन्तः ॥
ईषद्गौराङ्गकान्तिश्च वस्त्रं चन्द्रसमोज्ज्वलम् ।
नानामणिभूषिताङ्गो वसन्त उज्ज्वलो भवेत् ॥ ५१ ॥

नाना रत्नों से सुशोभित हैं। पिता सुदक्षिण और माता भद्राजी हैं। बड़े भ्राता वसुदामा जी हैं। अर्जुन जी दोनों के प्रेम से परिप्लुत हैं। साढ़े चौदह वर्ष वाली कैशोर अवस्था से उज्ज्वल हैं। वे नाना पुष्पों से विभूषित अंग वाले तथा वनमालाओं से विभूषित हैं। ॥ ४५—४७ ॥

गन्धर्व परम रूपवान् है। उसकी कान्ति चन्द्रमा की तरह है। वह रक्तवस्त्र को पहरने वाला तथा नाना आभरण से युक्त है। अवस्था द्वादश वर्ष की है तथा कैशोर अवस्था से उज्ज्वल है। गन्धर्व नाना पुष्पों से भूषित अंगवाला और परम शोभायमान है। माता सुसाध्वी मित्रा जी और पिता विनाक जी हैं। गन्धर्व श्रीकृष्ण के प्रियतम तथा नाना केलियों से कुतूहली है ॥४८—५०॥

वसन्त की अंगकान्ति ईषद् गौरवर्ण है। उसका वस्त्र चन्द्रमा के तुल्य उज्ज्वल है। वसन्त नाना मणियों से भूषित अंग वाला

एकादशवर्षवया नानामाल्यविभूषितः ।
माता च शारदी साध्वी पिङ्गलो जनको महान् ॥ ५२ ॥

५ । उज्ज्वलः ॥
रक्तवर्णप्रभा कान्तिरुज्ज्वलः परमोज्वलः ।
तारावलीसमं वस्त्रं मुक्तापुष्पविराजितः ॥ ५३ ॥
सागराख्यः पिता तस्य माता वेणी पतिव्रता ।
त्रयोदशवर्षवयाः किशोरः परमोज्वलः ॥ ५४ ॥

६ । कोकिलः ॥
शुभ्रकान्तिः सुलावण्यः कोकिलः परमोज्वलः ।
नीलवस्त्रपरिधानो नानारत्नविभूषितः ॥ ५५ ॥
वर्षैकादशकं मासाश्चत्वारो यद्वयःक्रमः ।
जनकः पुष्करो नाम मेधा माता यशस्विनी ॥ ५६ ॥

७ । सनन्दनः ॥
ईषद्गौराङ्गकान्तिश्च शोभितश्च सनन्दनः ।
नीलवस्त्रपरिधानो नानाभरणभूषितः ॥ ५७ ॥

परम उज्ज्वल है । उसकी अवस्था एकादश वर्ष की है । वह नाना प्रकार मालाओं से विभूषित है । माता साध्वी शारदी और पिता पिङ्गल महान् हैं ॥ ५१-५२ ॥

उज्ज्वल की कान्ति रक्तवर्ण है तथा वह परम उज्ज्वल है । तारा समूह की तरह उसका वस्त्र है तथा मुक्ता पुष्पों से विराजमान है । पिता का नाम सागर है माता पतिव्रता वेणी जी हैं । त्रयोदश वर्षीय किशोर अवस्था से परम उज्ज्वल है ॥ ५३-५४ ॥

कोकिल शुभ्रवर्ण, लावण्यमय, परम उज्ज्वल है तथा नील वस्त्र पहरने वाला और नाना रत्नों से विभूषित है । उसकी अवस्था ग्यारह वर्ष चार महीना है । पिता का नाम पुष्कर तथा माता यश को देने वाली मेधा जी हैं ॥ ५५-५६ ॥

सार्द्धाश्चतुर्दश समा वयो माल्यविराजितः ।
अरुणाक्षः पिता तस्य माता च मल्लिका भवेत् ॥ ५८ ॥
श्रीमान् सनन्दनस्तत्र सौहृदानन्दसुन्दरः ।
मूर्त्तिमानेव रसराडुज्ज्वलश्च महोज्ज्वलः ॥ ५९ ॥

८। विदग्धः ॥

रूपं चम्पकवर्णाढ्यं विदग्धो दीप्तिमान् भवेत् ।
शिखिकण्ठवर्णवासा मुक्तामालाविभूषितः ॥ ६० ॥
चतुर्दशवर्षपूर्णः किशोरः परमोज्ज्वलः ।
पिता च मटुको नाम जननी रोचना भवेत् ॥ ६१ ॥
सुदामा चाग्रजभ्राता भगिनी सुशीलापि च ।
श्रीकृष्णस्य प्रियतमो युग्मभावविभावितः ॥ ६२ ॥

तत्र श्रीमधुमङ्गलः ॥

ईषच्छ्यामलवर्णोऽपि श्रीमधुमङ्गलो भवेत् ।
वसनं गौरवर्णाढ्यं वनमालाविराजितः ॥ ६३ ॥

सनन्दन कुछ गौर अंग कान्ति वाला तथा परम शोभाशील है यह नीलवस्त्र का धारण करने वाला तथा नाना आभरणों से भूषित है। उसकी अवस्था साढ़े चौदह वर्ष है तथा वह मालाओं से विराजमान है। पिता अरुणाक्ष तथा माता मल्लिका जी हैं। श्रीमान् सनन्दन सौहृदता सुख में परम सुन्दर है और उज्ज्वल मूर्त्तिमान् रसराज के सदृश है ॥ ५७-५९ ॥

विदग्ध की अंगकान्ति चम्पकवर्ण है। विदग्ध परम दीप्तिमान् तथा मयूरकंठ की तरह श्यामवस्त्र पहरने वाला है। अनेक प्रकार की मुक्तामालाओं से विभूषित है। उसकी चौदह वर्ष परिपूर्ण अवस्था है। परम उज्ज्वल किशोर है। पिता का नाम मटुक तथा माता रोचना जी हैं। सुदामा जी उसके बड़े भ्राता तथा भगिनी सुशीला है। विदग्ध श्रीकृष्ण के प्रियतम और युगल भाव से विभावित है ॥ ६०–६२ ॥

पिता मान्दीपनिर्देवो माता च सुमुखी सती ।
नान्दीमुखी च भगिनी पौर्णमासी पितामही ॥ ६४ ॥
विदूषकः कृष्णस्य श्रीमधुमङ्गलः सखा ॥ ६५ ॥

अथ श्रीबलराम ॥

शुभ्रः स्फटिकवर्णाढ्यो बलरामो महाबलः ।
नीलवस्त्रपरिधानो वनमालाविराजितः ॥ ६६-६७ ॥
दीर्घकेशः सुलावण्यश्चूडा चारु मनोहरा ।
रत्नकुण्डलयुग्मञ्च कर्णयुग्मे विराजितम् ॥ ६८ ॥
नानापुष्पमणेर्हारः कण्ठदेशे सुशोभितः ।
केयूरवलयौ युग्मौ बाहुयुग्मे विराजितौ ॥ ६९ ॥
रत्ननूपुरयुग्मञ्च पादयुग्मे सुशोभितम् ।
वसुदेवः पिता तस्य माता च रोहिणी भवेत् ॥ ७० ॥

मधुमङ्गल ईषत् श्यामल वर्ण हैं। उसका वसन गौरवर्ण है तथा वह वनमालाओं से विराजमान है। पिता सान्दीपनि ऋषिजी माता सुमुखी सती हैं। नान्दीमुखी उसकी भगिनी तथा पौर्णमासी जी पितामही (दादी) है। मधुमङ्गल श्रीकृष्ण के सदा सर्वदा सखा और विदूषक भी है ॥ ६३–६५ ॥

श्रीबलदेव जी शुभ्रवर्ण तथा महान् बली हैं। ये नीलाम्बरधारी तथा विविध वनमालाओं से विराजमान हैं। दीर्घ उनके केश हैं तथा मनोहर चूटा से परमसुन्दर, लावण्यमय हैं। दोनों कर्णों में दो रत्न कुण्डल विराजमान हैं। कठदेश में नाना पुष्पों की माला तथा मणि-माला शोभायमान है। दोनों भुजाओं में केयूर, वलय, विराजमान हैं। चरण युगल में दो रत्ननूपुर शोभायमान हैं। पिता वसुदेव जी माता रोहिणी जी हैं। उनके पिता जी व्रजराजनन्द जी के परममित्र और माता जी परम सती तथा यशोदा जी की मित्राणी हैं। छोटे

नन्दो मित्रं पितुस्तस्य माता माध्वी यशोमती ।
भ्राता कनीयान् श्रीकृष्णः सुभद्रा भगिनी च सा ॥ ७१ ॥
वयः षोडश-वर्षश्च किशोरः परमोज्ज्वलः ।
श्रीकृष्णस्य प्रियतमो नानाकेलिरसाकरः ॥ ७२ ॥

अथ विटाः ॥
कडार-भारतीवन्ध गन्धवेदादयो विटाः ।
विविधाः सेवकास्तस्य सेवासौख्यपरायणाः ॥ ७३ ॥

अथ चेटाः ॥
चेटा भंगुरभृङ्गारसान्धिकग्रहिलादयः ।
रक्तकः पत्रकः पत्री मधुकंठो मधुव्रतः ।
शालिकस्तालिको माली मानमालाधरादयः ॥ ७४ । ७५ ॥
तद्वे णुशृङ्ग मुरली यष्टि-पाशादिधारिणः ।
अमीषां घटकाश्चामी धातूनां चोपहारकाः ॥ ७६ ॥

तत्र ताम्बूलिकाः ॥
पृथुकाः पार्श्वगाः केलिकलालापकलाङ्कुराः ।
पल्लवो मङ्गलः फुल्लः कोमलः कपिलादयः ॥ ७७ ॥

भैय्या श्रीकृष्ण जी हैं तथा सुभद्राजी भगिनी हैं। षोलह वर्ष उनकी अवस्था है और वे किशोरता से परम उज्ज्वल हैं। वे श्रीकृष्ण के प्रियतम तथा नाना केलि रस के सागर रूप हैं ॥६६-७२॥

कडार, भारतीवन्ध, गन्धवेदादिक विट हैं। सेवासौख्य से रत विविध प्रकार से श्रीकृष्ण के सेवक हैं ॥ ७३ ॥

भङ्गुर, भृङ्गार, सान्धिक, ग्रहिलादिक तथा रक्तक, पत्रक, पत्री, मधुकंठ, मधुव्रत, शालिक,तालिक,माली,मान,मालाधरादिक चेट हैं। वे सब श्रीकृष्ण के वेणु, शिंगा, मुरली,यष्टि, पाशादिक धारण करने वाले हैं। इनके घटकगण धातुओं के उपहार बनाने वाले हैं॥७४-७६॥

सुविलास-विलासाक्ष रसाल रसशालिनः ।
जम्बुलाद्याश्च ताम्बूलपरिष्कारविचक्षणाः ॥ ७८ ॥

जलसेवकाः ॥

पयोदवारिदाद्याश्च नीरसंस्कारकारिणः ।

वस्त्रसेवकाः ॥ (रजकाः)

वस्त्रोपचारनिपुणाः सारङ्गवकुलादयः ॥ ७९ ॥

वेशकारिणः ॥

प्रेमकन्दो महागन्धः सैरिन्ध्रमधुकन्दलाः ।
मकरन्दादयश्चामी सदा शृङ्गारकारिणः ॥ ८० ॥

गान्धिकाः ॥

सुमनः कुसुमोल्लास पुष्पहास हरादयः ।
गन्धाङ्गरागमाल्यादि पुष्पालंकृतकारिणः ॥
दक्षाः सुबन्धकर्पूरसुगन्धकुसुमादयः ॥ ८१ ॥

नापिताः ॥

नापिताः केशसंस्कारे मर्दने दर्पणार्पणे ।
कोपाधिकारिणः स्वच्छसुशीलप्रगुणादयः ॥

पल्लव, मङ्गल, फुल्ल, कोमल, कपिलादिक और सुविलास, विलासाक्ष, रसाल, रसशालि, जम्बुलादिक ताम्बूल बनाने में विचक्षण हैं । ये सब बालक पास में रहने वाले तथा केलिकला की आलापविद्या में चतुर हैं ॥ ७७-७८ ॥

पयोद, वारिदादिक जलसंस्कार (जलघडिया) करने वाले तथा सारङ्ग, वकुलादिक वस्त्र संस्कार में परम निपुण हैं ॥ ७९ ॥

प्रेमकन्द, महागन्ध, सैरिन्ध्र, मधुकन्दल, मकरन्दादिक वेश बनाने वाले हैं ॥ ८० ॥

सुमन, कुसुमोल्लास, पुष्पहास, हरादिक, गन्ध अंगराग-माल्यादिक तथा पुष्पों का अलङ्कार रचना करने वाले हैं । सुबन्ध, कर्पूर

अपरा ॥
विमल कमलाद्याश्च स्थालीपीठादिधारका ॥ ८२ ॥

परिचारिका ॥
धनिष्ठा चन्दनकला गुणमाला रतिप्रभा ।
तरणीन्दुप्रभा शोभा रम्भाद्या परिचारिका ।
गृहमार्ज्जनसंस्कारालेपक्षीरादिकोविदा ॥ ८३ ॥

अथ चेट्य ॥
चेट्य कुरङ्गी भृङ्गारी सुलम्बा लम्बिकादय ॥ ८४ ॥

अथ चरा ॥
चतुरश्चारणो धीमान् पेशलाद्याश्चरोत्तमा ।
चरन्ति गोपगोपीषु नानावेशेन ये सदा ॥ ८५ ॥

अथ दूता ॥
दूता विशारदास्तुङ्गवावदूकमनोरमा ।
नीतिसारादय केलौ कलौ गोपीकुलेषु च ॥ ८६ ॥

सुगन्ध, कुसुमादिक इन विषयों में परम दक्ष हैं ॥ ८१ ॥
स्वच्छ, सुशील, प्रगुणादिक नापित हैं। वे सब केशसंस्कार, मर्द्दन, दर्पण के समर्पण कार्य्य में तथा कोषागार में नियुक्त रहते हैं। विमल, कोमलादिक थाली, पीढादिकों के रखने वाले हैं ॥ ८२ ॥

धनिष्टा, चन्दनकला, गुणमाला, रतिप्रभा, तरुणी, इन्दुप्रभा, शोभारम्भादिक परिचारिका दासी हैं। वे सब गृहों के संस्कार मार्जन, लेपन के कार्य्य में तथा दुग्धादिकों के आवर्त्तनादि कार्य्य में परम पण्डिता हैं ॥ ८३ ॥
कुरङ्गी, भृङ्गारी, सुलम्बा, लम्बिकादिक चेटी हैं ॥ ८४ ॥

चतुर, चारण, धीमान्, पेशलादिक उत्तम चर हैं। वे सब नानावेश से गोप गोपिया में विचरण करते हैं ॥ ८५ ॥

अथ श्रीकृष्णस्य दूतीप्रकरणम् ॥

पौर्णमासी वीरा वृन्दा वंशी नान्दीमुखी तथा ।
वृन्दारिका तथा मेला मुरल्याद्याश्च दूतिकाः ॥ ८७ ॥
नानासन्धानकुशला तयोर्मिलनकारिणी ।
कुञ्जादिसंस्क्रियाभिज्ञा वृन्दा तासु वरीयसी ॥ ८८ ॥

तत्र पौर्णमासी ॥

पौर्णमास्या अङ्गकान्तिस्तप्तकाञ्चनसन्निभा ।
शुक्लवस्त्रपरीधाना बहुरत्नविभूषिता ॥ ८९ ॥
पिता सुरतदेवश्च माता चन्द्रकला सती ।
प्रबलस्तु पतिस्तस्या महाविद्या यशस्करी ॥ ९० ॥
भ्रातापि देवप्रस्थश्च व्रजे सिद्धा शिरोमणिः ।
नानासन्धानकुशला द्वयोः सङ्गमकारिणी ॥ ९१ ॥

विशारद, तुङ्ग, वावदूक, मनोरम, नीतिसारादिक केलि तथा विवाद में कुशल हैं और गोपीगणों में दूत का कार्य्य करते हैं ॥८६॥

अब श्रीकृष्ण के दूती प्रकरण का वर्णन करते हैं। पौर्णमासी, वीरा, वृन्दा, वंशी, नान्दीमुखी, वृन्दारिका, मेला और मुरली प्रभृति दूतिका हैं। वे सब नाना सन्धान में कुशल, दोनों के मिलन कराने वाली और कुञ्जादि संस्कार में अभिज्ञा हैं। उनमें से वृन्दा श्रेष्ठा हैं ॥ ८७-८८ ॥

पौर्णमासी जी की अंगकान्ति तपायमान सुवर्णकी तरह है। वे शुक्लवस्त्र पहरने वाली तथा नाना रत्नों से विभूषिता हैं। पिता सुरतदेव तथा माता चन्द्रकला सती हैं। पति का नाम प्रबल है। भ्राता देवप्रस्थ हैं। पौर्णमासी परम पण्डिता, यशस्करी, तथा व्रज में सिद्ध शिरोमणि हैं। नाना सन्धान कार्य्य में कुशल तथा दोनों का संगम कराने वाली हैं ॥ ८९-९१ ॥

तत्र वीरा ॥

वीरा नाम वरा दूती ख्यातान्या पूजिता व्रजे ।
वीरा प्रगल्भवचना वृन्दा चाटूक्तिपेशला ॥
एषा श्यामलकान्तिश्च शुक्लाभवसनोज्वला ।
नानारत्नपुष्पमाला भूषणै र्भूषितापि च ॥ ६२ ॥
कवलः पतिरेतस्या माता च मोहिनी सती ।
तस्याः पिता विशालोऽपि भगिनी कवला भवेत् ।
जटिलायाः प्रियतमा जावटाख्यपुरस्थिता ॥ ६३ ॥
नानासन्धाननिपुणा द्वयोर्मिलनचेष्टिता ॥ ६४ ॥

तत्र वृन्दाया विशेषः ॥

तप्तकाञ्चनवर्णाभा वृन्दा कान्तिर्मनोहरा ।
नीलवस्त्रपरीधाना मुक्तापुष्पविराजिता ॥ ६५ ॥
चन्द्रभानुः पिता तस्याः फुल्लरा जननी तथा ।
पतिरस्या महीपालो मञ्जरी भगिनी च सा ॥ ६६ ॥

वीरा नामक और भी श्रेष्ठा दूती व्रज में पूजिता है । वीरा प्रगल्भ वचन को बोलने वाली तथा वृन्दा चाटु वचन में अभिज्ञा हैं । वीरा श्यामल कान्तिवाली और शुक्ल कान्ति वसन से उज्ज्वल है । नाना रत्न-पुष्पमालाओं से भूषिता भी है । इसकी माता मोहिनी सती तथा पिता विशाल जी हैं । पति का नाम कवल और भगिनी कवला है । वीरा जटिला की प्रियतमा तथा जावट में रहने वाली है । नाना सन्धान कार्य्य में निपुण तथा दोनों के मिलन चेष्टा में नियुक्त है ॥ ६२-६४ ॥

वृन्दा तपायमान काञ्चन वर्ण वाली तथा कान्ति से परम मनोहरा है । नीलवस्त्र को पहरने वाली और मुक्ता पुष्पों से विराजमाना हैं । उसके पिता चन्द्रभानु जी और माता फुल्लरा हैं । पति का नाम

वृन्दावन सदावासा नानाकेलीरसोत्सुका ।
उभयोर्मिलनाकाङ्क्षी तयोः प्रेमपरिप्लुता ॥ ९७ ॥

तत्र नान्दीमुखी ॥

नान्दीमुखी गौरवर्णा पट्टवस्त्रविधारिणी ।
सान्दीपनिः पिता तस्य माता च सुमुखी सती ॥ ९८ ॥
भ्राता मधुमङ्गलोऽस्याः पौर्णमासी पितामही ।
नानारत्नभूषिताङ्गी कैशोरवयसोज्ज्वला ॥ ९९ ॥
नानासन्धानकुशला नाना शिल्पविधायिनी ।
द्वयोर्मिलननैपुण्या सदा प्रेमयुता भवेत् ॥ १०० ॥

अथ साधारणभृत्याः ॥

शोभनदीपनाद्याश्च दीपिकाधारिणो मताः ।
सुधाकर सुधानाद सानन्दाद्या मृदङ्गिनः ॥
कलावन्तस्तु महतीवादिनो गुणशालिनः ॥ १०१ ॥

महीपाल और भगिनी मञ्जरी है। वृन्दा सदा सर्वदा वृन्दावन में वास करती है। वह नाना केलिरस से उत्कण्ठिता तथा दोनों का मिलन चाहने वाली और दोनों के प्रेम से परिप्लुता है ॥ ९५–९७ ॥

नान्दीमुखी गौरवर्णा तथा पट्टाम्बर धारण करने वाली है। उस के पिता सान्दीपनि जी माता सुमुखी सती हैं। भ्राता मधुमङ्गल तथा पौर्णमासी जी पितामही (दादी) हैं। नान्दीमुखी नाना रत्नों से भूषित अंगवाली तथा कैशोर अवस्था से उज्ज्वल हैं। वह नाना सन्धान कार्य्य में कुशल तथा नाना शिल्प कार्य्य की रचना करने वाली और दोनों को मिलाने में निपुण तथा निरन्तर प्रेम युक्त हैं। ॥ ९८–१०० ॥

अथ साधारण भृत्यों का वर्णन करते हैं। शोभन, दीपन आदिक दीवट धारण करने वाले हैं। सुधाकर, सुधानाद, सानन्दादिक

विचित्ररावमधुरावाद्यास्तस्य वन्दिनः ।
नर्त्तकाश्चन्द्रहासेन्दुहासचन्द्रमुखादयः ॥ १०२ ॥
कलकण्ठः सुकण्ठश्च सुधाकण्ठादयोऽप्यमी ।
भारतः सारदो विद्याविलाससरसादयः ।
सर्व्वप्रबन्धनिपुणा रसज्ञास्तालधारिणः ॥ १०३ ॥
कञ्चुकादिविनिर्माता रौचिको नाम सौचिकः ।
निर्णेजकास्तु सुमुखो दुर्लभो रञ्जनादयः ॥ १०४ ॥
पुण्यपुञ्जस्तथा भाग्यराशिरित्यस्य हड्डिपौ ॥ १०५ ॥
स्वर्णकारावलङ्कारकारौ रङ्गनटङ्कनौ ।
कुलालौ मन्थनापारीकारौ पवनकर्म्मठौ ॥ १०६ ॥
वर्द्ध की वर्द्ध मानाख्यौ खट्टाशकटकारकौ ।
सुचित्रश्च विचित्रश्च ख्यातौ चित्रकरावुभौ ॥ १०७ ॥
दाममन्थानकुठारपेटीशिक्यादिकारिणः ।
कारवः कुण्ड कण्ठोल-करण्ड कट्टलादयः ॥ १०८ ॥

मृदंगीया हैं। ये सब मद्दनी बजाने वाले, गुणशाली कलावन्त हैं। विचित्रराव, मधुरराव आदिक स्तुति गाने वाले वन्दिगण हैं। चन्द्रहास, इन्दुहास, चन्द्रमुख आदिक नर्त्तकगण हैं। कलकंठ, सुकंठ, सुधाकंठ आदिक गायकवृन्द हैं। भारत, सारद, विद्याविलास, सरस आदिक समस्त प्रबन्ध में निपुण, रसज्ञ तालधारी हैं। काँचोली आदिक निर्माण करने वाला रौचिक नामक दर्जी है। सुमुख, दुर्ल्लभ, रञ्जनादिक धोबी (रजक) हैं। पुण्यपुंज तथा भाग्यराशि नामक दो मेहतर हैं। रङ्गन, टङ्कन ये दोनों विविध अलङ्कार बनाने वाले सोनार हैं। पवन, कर्म्मठ ये दोनों मथनी आदिक बनाने वाले कुम्भकार हैं। वर्द्धक वर्द्धमान ये दोनों खाट, बैलगाड़ी आदिक बनाने वाले बढ़ई हैं। सुचित्र विचित्र दोनों चित्रकार हैं। कारव, कुण्ड,

मङ्गला पिङ्गला गङ्गा पिशङ्गी मणिकस्तनी ।
हंसी वंशीप्रियेत्याद्या नैचिक्यस्तस्य सुप्रियाः ॥ १०६ ॥
पद्मगन्धपिशङ्गाख्यौ बलीवर्दावतिप्रियौ ।
सुरङ्गाख्यः कुरङ्गोऽस्य दधिलोभाभिधः कपिः ॥ ११० ॥
व्याघ्रभ्रमरकौ श्वानौ राजहंसः कलस्वनः ।
शिखी ताण्डविकाभिख्यः शुकौ दक्षविचक्षणौ ॥ १११ ॥

स्थानविवरणम्—
वृन्दावनं महोद्यानं श्रेयो निःश्रेयसादपि ।
क्रीडागिरिर्यथार्थाख्यः श्रीमान् गोवर्द्धनो मतः ॥ ११२ ॥
नीलमण्डपिका घट्टः कन्दरा मणिकन्दली ।
घट्टो मानसगङ्गायाः पारङ्गो नाम विश्रुतः ॥ ११३ ॥
सुविलासतरा नाम तरिर्यत्र विराजते ।
नाम्ना नन्दीश्वरः शैलो मन्दिरं स्फुरदिन्दिरम् ॥ ११४ ॥

कण्ठोल, करण्ड, कटुल आदिक जेवरी, मथनिया, कुठार, पेटी, शिक्का प्रभृति बनाने वाले है। मङ्गला, पिङ्गला, गङ्गा, पिशंगी, मणिकस्तनी, हंसी, वंशीप्रिया इत्यादिक गाभीगण श्रीकृष्ण के परमप्रिय हैं। पद्मगन्ध, पिशङ्गाक्ष ये दोनों बिजार अतिप्रिय हैं। श्रीकृष्ण के हरिण का नाम सुरङ्ग है तथा बन्दर का नाम दधिलोभ है। व्याघ्र तथा भ्रमर नामक दो कुत्ते भी थे। राजहंस का नाम कलस्वन था। मयूर का नाम ताण्डविक है। दक्ष, विचक्षण नामक दो शुकपक्षी भी थे ॥ १०९–१११ ॥

अब श्रीकृष्ण के प्रिय स्थानों का वर्णन करते हैं।—सकल कल्याण से कल्याणरूप श्रीवृन्दावन महान् उद्यान (बाग) है। क्रीड़ापर्वत यथार्थ नाम से श्रीमान् गोवर्द्धन है। घाट नीलमण्डपिका नाम से विख्यात है। कन्दरा (निभृतगुहा) का नाम मणिकन्दली

आस्थानीमण्डपः पाण्डुगण्डशैलासनोज्वलः ।
आमोदवर्द्धनो नाम परमामोदवासितः ॥ ११५ ॥
पावनाख्यं सरः क्रीडाकुञ्जपुञ्जस्फुरत्तटम् ।
कुञ्जं काममहातीर्थं मन्दारो मणिकुट्टिमः ॥ ११६ ॥
न्यग्रोधराजो भाण्डीरः कदम्बस्तु कदम्बराट् ।
अनङ्गरङ्गभूर्नाम लीलापुलिनमुच्यते ॥ ११७ ॥
यमुनाया महातीर्थं खेलातीर्थं तदुच्यते ।
परमप्रेष्ठया सार्द्धं सदा यत्र स खेलति ॥ ११८ ॥

अथ श्रीकृष्णस्य व्यवहार्य्यद्रव्याणि ॥

शारदिन्दुस्तु मुकुरो व्यजनं मधुमारुतम् ।
लीलापद्मं सदास्मेरं गोण्डुकश्चित्रकोरकः ॥ ११९ ॥
शिञ्जिनी मञ्जुलशरः मणिबन्धाटनीयुगम् ।
विलासकार्म्मणं नाम कार्म्मुकं स्वर्णचित्रितम् ॥ १२० ॥

है । मानसगङ्गा का घाट पारङ्ग नाम से प्रसिद्ध है । जहाँ सुविलासतरा नामक नाव विराजमान है । पर्वत का नाम नन्दीश्वर तथा उसमें स्फुरदिन्दिर नामक निज मन्दिर है । शुभ्र शिलाओं के टूकडे से उज्ज्वल तथा विविध सुगन्धियों से सुवासित आमोदवर्द्धन नामक मंडप है । सरोवर का नाम पावनसरोवर है । जिसका तट क्रीड़ाकुञ्ज-समूह से शोभायमान है । कुञ्ज का नाम काममहातीर्थ है । मणिमय कोठरी का नाम मन्दार है । वटराज का नाम भाण्डीर तथा कदम्ब का नाम कदम्बराज है । लीलापुलिन का नाम अनङ्गरङ्ग भूमि है । यमुना जी के महातीर्थ खेलातीर्थ नाम से विख्यात है जहाँ परमप्रिया श्रीराधिका के साथ श्रीकृष्ण निरन्तर क्रीड़ाविलास करते हैं ॥११२-११८ ॥

अब श्रीकृष्ण के व्यवहार द्रव्यों का वर्णन करते हैं ।—दर्पण का

दिव्यरत्नस्फुरन्मुष्टिस्तुष्टिदा नाम कर्त्तरी ।
मन्द्रघोषो विषाणोऽस्य वशी भुवनमोहिनी ॥ १२१ ॥
राधाहृन्मीनबडिशी महानन्दाभिधापि च ।
षड्रन्ध्ररन्ध्रा वेणुः स्याता मदनभङ्कृतिः ॥ १२२ ॥
कामली मूक्तिपिका मुरली सरलाभिधा ।
गौडी च गुर्ज्जरी चेति रागावत्यन्तवल्लभौ ॥ १२३ ॥
जप्यः साध्याङ्कित प्रेष्ठाभिधानो मनुरद्भुतः ।
दण्डस्तु मण्डनो नाम वीणा नाम तरङ्गिणी ।
पाशौ पशुवशीकारो दोहन्यमृतदोहनी ॥ १२४ ॥

अथ भूषणानि ॥

अस्त्रार्पिता महारक्षा नवरत्नाङ्किता भुजे ॥ १२५ ॥

नाम शरदिन्दु (शरच्चन्द्रमा) तथा पंखा का नाम वसन्तपवन है। लीलाकमल का नाम सदास्मेर तथा गेंद का नाम चित्रकोरक है। विलासकार्म्मुण नामक स्वर्ण से चित्रित धनुष है जिसमें शिञ्जिनी नामक मनोहर बाण है जो दोनों तरफ मणि से बँधा हुआ है। मुँठी दिव्यरत्नोंसे जडित तुष्टिदा नामक कैंचीहै। श्रीकृष्णके विषाण(सींगा) का नाम मन्द्रघोष है। वशी का नाम भुवनमोहिनी है। श्रीराधा के हृदय रूप मीन के काँटे स्वरूप वह महानन्दा नाम से भी विख्यात है। मदनझङ्कार नाम से ख्यात छेदों से युक्त सुन्दर वेणु है। मनोहर शब्द से कोकिलगण को चुप करने वाली सरला नामक मुरली है। गौडी तथा गुर्जरी ये दोनों राग श्रीकृष्ण को अतिप्रिय हैं। साध्य वस्तु नाम से युक्त श्रेष्ठ नामक अद्भुत जपने का मन्त्र है। अर्थात् राधामन्त्र जप्य है। दण्ड का नाम मण्डन और बीणा का नाम तरङ्गिणी है। पशुवशीकार नामक दो पाश हैं। दोहनी का नाम अमृत दोहनी है ॥ ११६-१-४ ॥

अङ्गदे रङ्गदाभिख्ये चङ्कने नाम कङ्कणे।
मुद्रा रत्नमुखी पीत वासो निगमशोभनम् ॥ १२६ ॥
किङ्किणी कलझङ्कारा मञ्जीरौ हंसगञ्जनौ।
कुरङ्गनयनाचित्तकुरङ्गहरशिञ्जितौ ॥ १२७ ॥
हारस्तारावली नाम मणिमाला तडित्प्रभा।
राधाप्रतिकृतिर्निष्को हृदयमोदन ॥ १२८ ॥
कौस्तुभाख्यमणिर्येन प्रविश्य ह्रदमौरगम्।
कालियप्रेयसीवृन्दहस्तैरात्मोपहारित ॥ १२९ ॥
कुण्डले मकराकारे रतिरागाधिदैवते।
किरीट रत्नपाराख्य चूडा चामरडामरी ॥ १३० ॥
नवरत्नविडम्बाख्य शिखण्ड मुकुट त्विषु ।
रागवल्ली तु गुञ्जाली तिलक दृष्टिमोहनम् ॥ १३१ ॥

अब श्रीकृष्ण के भूषणों का वर्णन करते हैं।—नौ रत्नों से जडे हुए महारक्षा नामक रक्षायन्त्र हैं जिन्हें माता ने दोनों भुजाओं मे बाँध दिये हैं। अगद का नाम रङ्गद, कङ्कण का नाम चङ्कन है। मुद्रिका का नाम रत्नमुखी तथा पीताम्बर का नाम निगमशोभन है। उनकी किङ्किणी का नाम कलझङ्कारा और हंसगञ्जन नामके दो मञ्जीर हैं। जो कि कुरङ्गनयना व्रजगोपियों के चित्त रूप कुरङ्ग के हरणकारी तथा मनोहर शब्दायमान हैं। हार का नाम तारावली तथा मणिमाला का नाम तडित्प्रभा है। श्रीराधा के प्रतिबिम्ब से युक्त हृदयमोदन नामक पदक है। मणि का नाम कौस्तुभ है। जिसे कि कालियह्रद से उसकी प्रेयसियों के द्वारा स्वयं लब्ध किया था। रति-अधिदेव और रागाधिदेव नाम से ख्यात मकराकार दो कुण्डल हैं। किरीट का नाम रत्नपार और चूडा का नाम चामरडामरी है। नव-रत्नविडम्ब नामसे मयूरमुकुट प्रसिद्ध है। गुंजालीका नाम रागवल्ली

पत्रपुष्पमयी माला वनमाला पदावधिः ।
वैजयन्ती तु कुसुमैः पञ्चवर्णैर्विनिर्मिता ॥ १३२ ॥
जन्मनालंकृता पुण्या कृष्णा भाद्राष्टमी निशा ।
प्रेयस्या सह रोहिण्या शशी यस्यामुदेयिवान् ॥ १३३ ॥

अथ श्रीकृष्णस्य प्रेयस्यः ॥

अथ तस्यानुकीर्त्यन्ते प्रेयस्यः परमाद्भुताः ।
रमादिभ्योऽप्युरुप्रेमसौभाग्यभरभूषिताः ॥ १३४ ॥

तत्र श्रीराधा ॥

आभीरसुभ्रुवां श्रेष्ठा राधा वृन्दावनेश्वरी ।
अस्याः सख्यश्च ललिताविशाखाद्याः सुविश्रुताः ॥ १३५ ॥
चन्द्रावली च पद्मा च श्यामा शैव्या च भद्रिका ।
तारा विचित्रा गोपाली पालिका चन्द्रशालिका ॥ १३६ ॥
मङ्गला विमला लीला तरलाक्षी मनोरमा ।
कन्दर्पमञ्जरी मञ्जुभाषिणी खञ्जनेक्षणा ॥ १३७ ॥
कुमुदा कैरवी शारी शारदाक्षि विशारदा ।
शङ्करी कुङ्कुमा कृष्णा शारङ्गीन्द्रावली शिवा ॥ १३८ ॥
तारावली गुणवती सुमुखी केलिमञ्जरी ।
हारावली चकोराक्षी भारती कमलादयः ॥ १३९ ॥

तथा तिलक का नाम हरिमोहन है। चरण पर्य्यन्त लम्बायमान पत्र पुष्पों से विरचित वनमाला है तथा पञ्चवर्ण पुष्पों से विरचित वैजयन्तीमाला है। भाद्रकृष्णाष्टमी की रात्री जन्मका समय है। जिसमें चन्द्रमा स्व प्रेयसी रोहिणी नक्षत्र के साथ उदित हुए हैं॥१२४-१३३॥

अब लक्ष्मी आदिक से भी अत्यन्त प्रेम-सौभाग्य के अतिशय से विभूषित परम अद्भुत श्रीकृष्ण की प्रेयसियों का वर्णन करते हैं—उन सब गोपांगनाओं में वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिका श्रेष्ठा हैं। ल-

आसां यूथानि शतशः ख्यातान्याभीरसुभ्रु वाम् ।
लक्षसंख्यास्तु कथिता यूथे यूथे वराङ्गनाः ॥ १४० ॥
मुख्याः स्युस्तेषु यूथेषु कान्ताः सर्व्वगुणोत्तमाः ।
राधा चन्द्रावली भद्रा श्यामला पालिकादयः ॥ १४१ ॥
तत्रापि सर्वथा श्रेष्ठे राधाचन्द्रावलीत्युभे ।
यूथयोस्तु तयोः सन्ति कोटिसंख्या मृगीदृशः ॥ १४२ ॥
तयोरप्युभयोर्म्मध्ये सर्व्वमाधुर्यतोऽधिका ।
राधिका विश्रुतिं याता यद्गान्धर्व्वाख्यया श्रुतौ ॥ १४३ ॥
असमानोर्द्ध माधुर्यधुर्यो गोपेन्द्रनन्दनः ।
यस्याः प्राणपरार्द्धानां परार्द्धादपि वल्लभः ॥ १४४ ॥
श्रीराधारूपलावण्यं विशेषात् परिकीर्त्त्यते ।
नानावैदग्धीनैपुण्या सुधार्णवस्वरूपिणी ॥ १४५ ॥

लिता, विशाखादिक इनकी सखी भाव से सुप्रसिद्ध हैं। और सब का नाम मूल श्लोकों से ज्ञात करें। अर्थ सरल है॥ १३४–१३६ ॥

इन सब गोपाङ्गनाओं में एक के सौ-सौ यूथ हैं। एक एक यूथ में लक्षसंख्यक वराङ्गना मौजूद हैं। उन सब यूथों में समस्त गुणों से उत्तम राधा, चन्द्रावली, भद्रा, श्यामला, पालिकादिक कान्तागण है। उनमें से सर्व प्रकार राधा, चन्द्रावली दोनों श्रेष्ठा हैं। दोनों के कोटि संख्यक मृगनयना यूथ हैं। दोनों में से भी सकल माधुर्य्य से अधिक श्रीराधिका जी हैं। जो कि श्रुति में गान्धर्व्वा नाम से विख्यात हैं। समान ऊर्द्ध रहित महामाधुर्य्य के सागर रूप श्री व्रजराजगोपेन्द्रनन्दन जिनके परार्द्ध प्राणों के परार्द्ध प्राणों से भी वल्लभ हैं॥ १४०–१४४ ॥

अब श्रीराधिका जी के रूप लावण्य का विशेष करके वर्णन करते हैं।—श्रीराधिका नाना वैदग्धी में परम पण्डिता तथा सुधा की

नवगोरोचनाभातिर्दतेम समप्रभा ।
किम्वा स्थिरा विद्युदिव रूपातिपरमोज्वला ॥ १४६ ॥
विचित्र नीलवसन तस्याश्च परिशोभितम् ।
नानामुक्ताभूषिताङ्गी नानापुष्पविराजिता ॥ १४७ ॥
दीर्घ केशी सुलावण्य मुक्तामालासुशोभिता ।
पुष्पमाला सुविन्यासा सुवेणी परमोज्वला ॥ १४८ ॥
सुभाल. परमोद्दीप्त सिन्दूरपरिभूषित ।
नाना चित्रालका भान्ति चित्रपत्रसुशोभिता ॥ १४९ ॥
वाहुयुग्म सुलावण्य नीलकङ्कणशोभितम् ।
अनङ्ग-दण्डलावण्यमोहिनी परमा भवेत् ॥ १५० ॥
नयनोत्पलयुग्मश्च आकर्णपरिशोभितम् ।
कज्जलोज्ज्वलदीप्तिश्च त्रैलोक्यजयिनी परा ॥ १५१ ॥
नासिका तिलपुष्पाभा मुक्तानेत्रशोभिता ।
नाना सुगन्धयुक्ता सा परा दीप्तिमती भवेत् ॥ १५२ ॥

सागर रूपिणी हैं। वे नवीन गोरोचनाकी भाँति गोरागी हैं। उनकी प्रभा तपायमान सुवर्ण की तरह अथवा स्थिर-विद्युत् के सदृश रूप की अतिशयता से परम उज्ज्वला है। उनके विचित्र नीलवसन शोभायमान हैं। वे नाना प्रकार की मुक्ताओं से भूषित-अङ्गवाली तथा नाना पुष्पो से विराजमाना हैं। उनके केश अति लम्बायमान है तथा वे लावण्यरूपिणी हैं। विविध मुक्ता मालाओं से सुशोभिता हैं तथा नाना पुष्पमालाओं से सजी हैं। उनकी वेणी परम उज्ज्वला है तथा भालदेश सिन्दूर से परिभूषित दीप्तिमान् है। अलकावली चित्र पत्रों से सुशोभित नाना चित्रमयी है। नील कङ्कण से शोभित सुन्दर लावण्यमय बाहुयुगल हैं। भुजलता अनङ्ग यष्टि की लावण्यता को मोहित करने वाली है। युगल नयनकमल कर्णपर्यन्त शोभाय

रत्नताडङ्कयुगञ्च नाना चित्रविनिर्मितम् ।
ओष्ठाधर सुधारम्यो रक्तोत्पलविनिर्जित ॥ १५३ ॥
मुक्तामाला दन्तपङ्क्ती रसनापरिशोभिता ।
मुखपद्म सुलावण्य कोटिचन्द्रप्रभान्तरम् ।
बिम्बञ्च सुधारम्यप्रेमहास्ययुतं भवेत् ॥ १५४ ॥
चिबुकस्य सुलावण्य कन्दर्पमोहन परम् ।
मसिबिन्दु सुलावण्यो हेमाब्जे भ्रमरी यथा ॥ १५५ ॥
कण्ठदेशे चित्ररेखा मुक्तामालाविभूषिता ।
पृष्ठग्रीवा सुरम्या च पार्श्वेऽपि मोहिनी भवेत् ॥ १५६ ॥
वक्ष स्थल सुलावण्य हेमकुम्भसुशोभितम् ।
कञ्चुल्याच्छादितं तस्या मुक्ताहारविराजितम् ॥ १५७ ॥
सुबाहुयुगल तस्या लावण्यमोहनानि च ।
रत्नाङ्गदे तयोर्मध्ये वलया परिशोभिते ॥ १५८ ॥

मान हैं। जिसकी कान्ति भाजर से उज्ज्वल तथा त्रैलोक्य विजयिनी हो रही है। मुक्तावेशर से शोभित, तिलपुष्प कान्ति के तुल्य नासिका है। वह नाना सुगन्धि से युक्त अति दीप्तिशालिनी है। नाना चित्रों से विनिर्मित दो रत्न ताडङ्क हैं। रक्तोत्पल को जीतने वाला, सुधा सुन्दर ओष्ठाधर है। जिह्वा से परिशोभित मुक्तामाला की तरह दन्तपंक्ति है। कोटि चन्द्रमा प्रभा के तुल्य लावण्यमय मुखपद्म है। सुधा से भी सुन्दर, प्रेम रूप हास्य से युक्त, बिम्ब की तरह चिबुक है, जिसका सुलावण्य कन्दर्प को मोहित करने वाला है। उसमें फिर स्वर्णकमल में भ्रमरी की तरह लावण्यमय मसिबिन्दु है। कण्ठदेश में मुक्तामालाओं से विभूषित चित्ररेखा है। पीठ, ग्रीवा अति सुन्दर तथा दोनों पार्श्व में मोहिनी रूप है। सुवर्णमय स्तन कुम्भों से मानों सुशोभित, काँचोली से आच्छादित, मुक्ताहारों से शोभायमान वक्ष

रत्नकङ्कणदीप्ते च रत्नगुच्छविराजिते ।
रक्तोत्पलं हस्तयुगं नखचन्द्रसुदीप्तकम् ॥ १५६ ॥

करचिन्हानि ॥

भृङ्गाम्भोज शशिकला कुण्डलच्छत्रयूपकः ।
शंखवृक्षकुसुमक्त चामरस्वस्तिकादयः ॥ १६० ॥
एते चिन्हाः शुभकरा नानाचित्रविराजिताः ।
करांगुल्यः सुदीप्ताश्च रत्नांगुरीयभूषिताः ॥ १६१ ॥
उदरं मधुलावण्यं निम्ननाभिसुशोभितम् ।
सुधारसप्रपूर्णञ्च त्रैलोक्यमोहनं परम् ॥ १६२ ॥
क्षीणमध्यं कटितटं लावण्यभरभंगुरम् ।
वलित्रयीलतावद्धा किङ्किणीजालशोभिता ॥ १६३ ॥
उरू द्वौ रामरम्भेव मनोजचित्तमोहनौ ।
जानू द्वौ च सुलावण्यौ नानाकेलिरसाकरौ ॥ १६४ ॥

स्थल है। लावण्य मोहनकारी सुन्दर बाहुयुगल हैं, जो रत्नों के अंगदों तथा वलयों से परिशोभित हैं तथा रक्त कङ्कण से दीप्तिमान और रत्नों के गुच्छ से विराजमान है। रक्तोत्पल की तरह हस्तयुगल है जो कि नख चन्द्रों से अति प्रकाशमान है ॥ १४५–१५६ ॥

भृङ्ग, अम्भोज, चन्द्रकला, कुण्डल, छत्र, यूप, शंख, वृक्ष, पुष्प, चामर, स्वस्तिकादिक ये सब चिह्न शुभकारी तथा नाना चित्रों से विराजमान हैं। करांगुलियाँ सुदीप्त तथा रत्न मुद्रिकाओं से विभूषित हैं। उदर मधु से भी लावण्यमय तथा गम्भीर नाभि से सुशोभित है। वह सुधारस से परिपूर्ण तथा तीन लोक को मोहन करने वाला है। मध्य में क्षीण, लावण्य के अतिशय से सुन्दर कटिदेश है। जो त्रिवलीलता से वेष्टित और किङ्कणी जालों से शोभित है। ऊरू युगल मनोहर रम्भा की तरह है तथा कन्दर्प चित्त का मोहन

श्रीपादपद्मयुग्मञ्च मणिनूपुरभूषितम् ।
चक्रराजसुलावण्य पदाङ्गुरीयशोभितम् ॥ १६५ ॥

अथ चरणचिन्हानि ॥

शङ्खेन्दुकुञ्जरयवाङ्कुशाश्च रथध्वजौ ।
डोमरुस्वस्तिमत्स्यादि शुभचिन्हौ पदावपि ॥ १६६ ॥
आपञ्चदशवर्षञ्च वयः कैशोरकोज्ज्वलम् ॥ १६७ ॥
मातृकोटेरपि स्निग्धा यत्र गोपेन्द्रगेहिनी ।
वृषभानु पिता तस्या वृषभानुरिवोज्वल. ॥ १६८ ॥
रत्नगर्भेति ख्याता कीर्त्तिदा जननी भवेत् ।
पितामहो महीभानुरिन्दुर्मातामहो मत. ॥१६९ ॥
मातामही-पितामह्यौ मुखरा सुखदे उभे ।
रत्नभानु. शुभानुश्च भानुश्च भ्रातरः पितु. ॥ १७० ॥

कारक है । दोनों जया नाना मेलि रम के आकर सुन्दर लावण्य रूप हैं। दोनों श्रीचरणकमल मणिनूपुर से भूषित हैं तथा लावण्यमय अ गुरिया से शोभित हैं ॥ १६०-१६५ ॥

-- शंख, चन्द्र, हस्ति, दो यव, अ कुश,रथ, ध्वजा,डम्बरु,स्वस्तिक, मत्स्यादिक शुभचिह्नों से युक्त दोनों चरण हैं ॥ १६६ ॥

कैशोरता से उज्ज्वल पञ्चदशवर्ष पर्य्यन्त अवस्था है । श्रीराधिका में गोपेन्द्रगेहिनी श्रीयशोदा कोटिमाता के सदृश स्निग्धा थीं । उनके पिता वृषभानु जी हैं जो कि वृषराशिस्थ सूर्य्य की तरह परम उज्ज्वल थे । पृथ्वी में रत्नगर्भा नाम से ख्याता कीर्त्तिदा जी माता हैं । पितामह महीभानु और मातामह इन्दु है । मुखरा मातामही और सुखदा पितामही हैं । रत्नभानु, सुभानु, भानु, ये पिता के भैय्या हैं। भद्रकीर्त्ति, महाकीर्त्ति, कीर्त्तिचन्द्र ये मामा हैं । मेनका, षष्ठी, गौरी, धात्री, धातकी, ये मामी हैं । माता की भगिनी कीर्त्तिमती तथा पिता

भद्रकीर्त्तिर्महाकीर्त्तिः कीर्त्तिचन्द्रश्च मातुलाः ।
मातुल्यो मेनका षष्ठी गौरी धात्री च धातकी ॥ १७१ ॥
स्वसा कीर्त्तिमती मातु र्भानुमुद्रा पितृस्वसा ।
पितृस्वसृपतिः काशो मातृस्वसृपतिः कुशः ॥ १७२ ॥
श्रीदामा पूर्वजो भ्राता कनिष्ठानङ्गमञ्जरी ।
श्वशुरो वृकगोपश्च देवरो दुर्मदाभिधः ॥ १७३ ॥
श्वश्रू स्तु जटिलाख्याता पतिम्मन्योऽभिमन्युकः ।
ननन्दा कुटिलानाम्नी सदाच्छिद्रविधायिनी ।
परमप्रेष्ठसख्यस्तु ललिता सविशाखिका ।
सुचित्रा चम्पकलता रङ्गदेवी सुदेविका ।
तुङ्गविद्ये न्दुलेखे ते अष्टौ सर्वगणाग्रिमाः ॥ १७४ ॥

(क) अथ प्रियसख्यः ॥

प्रियसख्यः कुरङ्गाक्षी मण्डली मणिकुण्डला ।
मालती चन्द्रलतिका माधवी मदनालसा ॥
मञ्जुमेधा शशिकला सुमध्या मधुरेक्षणा ।
कमला कामलतिका गुणचूडा वराङ्गदा ।

की भगिनी भानुमुद्रा हैं । कीर्त्तिमति का पति कुश और भानुमुद्रा का पति काश है । श्रीराधा के बड़े भ्राता श्रीदामा और कनिष्ठा भगिनी अनङ्गमञ्जरी हैं । श्वसुर वृकगोप और देवर दुर्म्मद नाम से हैं । जटिला सास तथा अभिमन्यु पतिम्मन्य (अर्थात् अपने को पति का अभिमान रखने वाले हैं । ननन्द कुटिला है जो कि निरन्तर छिन्द्रानुसन्धान रखने वाली थी । ललिता, बिशाखा, सुचित्रा, चम्पकलता, रङ्गदेवी, सुदेवी, तुङ्गविद्या, इन्दुलेखा ये अष्टसखी समस्त गणों में अग्रिम, परमप्रेष्ठसखी हैं ॥ १६७–१७४ ॥

अब प्रिय सखियों का नाम वर्णन करते हैं–वे सब कोटि कोटि

माधुरी चन्द्रिका प्रेममञ्जरी तनुमध्यमा ।
कन्दर्पसुन्दरी मञ्जुकेशीत्याद्यास्तु कोटिशः ॥

(ख) अथ जीवितसख्यः ॥

उक्ता जीवितसख्यस्तु लासिका केलिकन्दली ।
कादम्बरी शशिमुखी चन्द्ररेखा प्रियंवदा ।
मदोन्मदा मधुमती वासन्ती कलभाषिणी ।
रत्नावली मणिमती कर्पूरलतिकादयः ॥

(ग) अथ नित्यसख्यः ॥

नित्यसख्यस्तु कस्तुरी मनोज्ञा मणिमञ्जरी ।
सिन्दूरा चन्दनवती कौमुदी मदिरादयः ॥

अथ श्रीराधाया मञ्जर्य्यः ॥

अनङ्गमञ्जरी रूपमञ्जरी रतिमञ्जरी ।
लवङ्गमञ्जरी रागमञ्जरी रसमञ्जरी ॥ १७५ ॥
विलासमञ्जरी प्रेममञ्जरी मणिमञ्जरी ।
सुवर्णमञ्जरी काममञ्जरी रत्नमञ्जरी ॥ १७६ ॥
कस्तुरीमञ्जरी गन्धमञ्जरी नेत्रमञ्जरी ।
श्रीपद्ममञ्जरी लीलामञ्जरी हेममञ्जरी ।
भानुमत्यन्तपर्य्याया सुप्रेमा रतिमंजरी ॥ १७७ ॥

संख्या में हैं जिनके नाम कुरङ्गाक्षी इत्यादि हैं। मूल श्लोकों को देखें अर्थ सरल है। (क)

अथ जीवित सखियों का नाम-लसिका इत्यादि है। मूल श्लोकों को देखें। अर्थ सरल है। (ख)।

अथ नित्यसखियों का नाम कस्तूरी इत्यादि है। मूल देखें (ग)

अथ श्रीराधिका की मञ्जरियों का नाम दिखावे हैं। जिनके नाम अनङ्गमञ्जरी इत्यादि है। मूल श्लोकों को देखें। अर्थ सरल है।
॥ १७५-१७७ ॥

अथ श्रीराधाया उपास्य ॥

उपास्यो जगतो चक्षुर्भगवान् पद्मबान्धव ।
जप्य स्वाभीष्टसंसर्गी कृष्णनाम महामनु ।
पौर्णमासी भगवती सर्व्वसौभाग्यवर्द्धिनी ॥ १७८ ॥

अथ सख्यादिविशेषा ॥

ललिताद्या अष्टसख्यो मञ्जर्य्यस्तद्गणाश्च य ।
सर्व्वा वृन्दावनेश्वर्य्या प्राय सारूप्यमागता ॥ १७९ ॥
काननादिगता सख्यो वृन्दाकुन्दलतादय ।
घनिष्ठा गुणमालाद्या व्रजेश्वरगेहगा ॥ १८० ॥
कामदा नाम धात्रेयी सखीभावविशेषभाक् ।
रागलेखा कलाकेली मञ्जुलाद्यास्तु दासिका ॥ १८१ ॥
नान्दीमुखी बिन्दुमतीत्याद्या सन्धिविधायिका ।
सुहृत्पक्षतया ख्याता श्यामला मङ्गलादय ॥ १८२ ॥

अथ श्रीराधिका जी के उपास्य का वर्णन करते हैं। जगवासियों के नेत्र रूप, भगवान् पद्मबन्धु, सूर्य्यदेव उपास्य हैं। निज अभीष्ट ससर्गी कृष्णनाम महामन्त्र जप्य है। पौर्णमासी भगवतीजी समस्त सौभाग्यों को बढाने वाली हैं ॥ १७८ ॥

अथ सखियों की विशेषता का वर्णन करते हैं। ललितादि अष्ट सखियाँ, मजरियाँ, उनके समस्त गण ये सब प्राय वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिका जी के सारूप्य (समान रूपता) को प्राप्त हुए हैं॥१७९॥

वृन्दा, कुन्दलतादिक सखियाँ वनादिको में जाने आने वाली तथा घनिष्ठा, गुणमालादिक व्रजराज के घर पर रहने वाली हैं। कामदा नामक धात्रेयी विशेष करके सखी भाव से युक्त है। रागलेखा, कलाकेलि, मजुलादि दासिका है। नान्दीमुखी, बिन्दुमती प्रभृति विवाद में सन्धि कराने वाली हैं। श्यामला,मङ्गलादिक सुहृत्पक्षा तथा

प्रतिपक्षतया ख्यातिं गताश्चन्द्रावली मुखाः ॥ १८३ ॥
कलावत्यो रसोल्लासा गुणतुङ्गा स्मरोद्धुरा ।
गन्धर्वास्तु कलाकण्ठी सुकण्ठी पिककण्ठिका ।
या विशाखाकृतगीतीर्गायन्त्यः सुखदा हरेः ॥ १८४ ॥
वादयन्त्यश्च शुषिरं ततानद्धघनान्यपि ।
माणिकी नर्म्मदा प्रेमवती कुसुमपेशलाः ॥ १८५ ॥
सख्यश्च नित्यसख्यश्च प्राणसख्यश्च काश्चन ।
प्रियसख्यश्च परमप्रेष्ठसख्यः प्रकीर्त्तिताः ॥

अथ श्रीराधाभृत्याः ॥

रागलेखा कलाकेली भूरिदाद्यास्तु दासिकाः ॥
दिवाकीर्त्तितनूजे तु सुगन्धा-नलिनीत्युभे ।
मञ्जिष्ठारङ्गरागाख्ये रजकस्य किशोरिके ॥ १८६ ॥
पालिन्द्री नाम सैरिन्ध्री चित्रिणी चित्रकारिणी ।
मान्त्रिकी तान्त्रिकी नाम्ना दैवज्ञा दैवतारिणी ॥ १८७ ॥

चन्द्रावली आदिक प्रमुख प्रतिपक्ष वाली प्रसिद्धा हैं। रसोल्लासा, गुणतुङ्गा, स्मरोद्धुरा विविध कलावती हैं। कलाकंठी, सुकण्ठी, प्रियकण्ठिका गाने वाली हैं जो कि विशाखा रचित गानों को गा कर हरि को सुख देती हैं। ये सब शुपिर, तत, आनद्ध, घनादिकों को बजाती भी हैं। माणिकी, नर्मदा, प्रेमवती, ये सब पुष्पों की रचना करती हैं। इनमें से कोई कोई सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रियसखी, परमप्रेष्ठसखी करके कीर्त्तिता होती हैं। अब श्रीराधिका की दासियों का वर्णन करते हैं। रागलेखा, कलाकेली, भूरिदादिक दासिका हैं। सुगन्धा, नलिनी दोनों नापित की कन्या हैं। मंजिष्ठा, रङ्गरागा नामक दो रजककन्या हैं। गन्धद्रव्यादिकों को लगाने वाली पालिन्द्री है तथा चित्रकारिणी चित्रिणी है। मान्त्रिकी, तान्त्रिकी दो दैवज्ञा हैं। कात्यायनी आदिक वयोऽधिका दूतिका हैं। भाग्यवती, पुंजपुण्या नामक दो मेहतर की कन्या हैं। भृङ्गी, मल्ली, मतल्ली ये

तथा कात्यायनीत्याद्या दूतिका वयसाधिकाः।
उभे भाग्यवती पुण्यपुण्ये हड्डिपकन्यके ॥ १८८ ॥
भृङ्गी मल्ली मतल्ली च पुलिन्दकुलकन्यकाः।
केचित् कृष्णगणाश्चास्याः परिवारतया मताः ॥ १८९ ॥
गार्गी मुख्या महीपूज्या चेट्यो भृङ्गारिकादयः।
सुवलोज्ज्वलगन्धर्व्वमधुमङ्गल-रक्तकाः।
विजयाद्या रसालाद्या पयोदाद्या विटादयः ॥ १९० ॥
आसन्ना सर्वदा तुङ्गी पिशङ्गी कलकन्दला।
मञ्जुला विन्दुला सन्धा मृदुलाद्यास्तु बालिकाः ॥ १९१ ॥
समासमीना सुनदा यमुना बहुलादयः।
पीना वत्सतरी तुङ्गी कक्खटी वृद्धमर्कटी।
कुरङ्गी रङ्गिणी ख्याता चकोरी चारुचन्द्रिका ॥ १९२ ।
निजकुण्डचरी तुण्डीकेरी नाम मरालिका।
मयूरी तुण्डिका नाम्ना शारिके सूक्ष्मधी शुभे ॥ १९३ ॥
वन्यानि ललितादेव्या ललितानि स्वनाथयो।
पठन्त्यौ चित्रया वाचा ये चित्रीकुरुतः सखी. ॥ १९४ ॥

सब पुलिन्द कन्यका हैं। इनमें से कोई तो कृष्णपक्षीया हैं और कोई राधिका के परिवारवाली मानी जाती हैं। गार्गी मुख्या ब्राह्मणीगण है। भृङ्गारिकादिक चेटियाँ हैं। सुवल, उज्ज्वल, गन्धर्व, मधुमङ्गल, रक्तक, विजयादिक, रसालादिक, पयोदादिक विटगण हैं। सदा सर्वदा निकट में रहने वाली तुङ्गी, पिशङ्गी, कलकन्दला, मंजुला, बिन्दुला, सन्धा, मृदुलादिक बालिकायें हैं। सुनन्दा, यमुना, बहुलादिक दूधेली गौएं हैं। गोवत्सा का नाम तुङ्गी है। वृद्ध-मर्कटी के नाम कक्खटी, हरिणी का नाम रङ्गिणी और चकोरी का नाम चारुचन्द्रिका था। अपने कुण्ड में (श्रीराधाकुण्ड) में चरने वाली हंसिनी का नाम तुण्डीकेरी था। तुण्डिका नामक मयूरी और सूक्ष्मबुद्धि वाली दो मङ्गलरूपा शारिकाएं थीं। शारिका युगल श्री ललिता के द्वारा सीखे

अथ भूषणानि ॥

तिलकं स्मरयन्त्राख्यं हारो हरिमनोहरः ।
रोचनौ रत्नताडङ्कौ घ्राणमुक्ता प्रभाकरी ॥ १९५ ॥
छन्नकृष्णप्रतिच्छायं पदकं मदनाभिधम् ।
स्यमन्तकान्यपर्यायः शंखचूडशिरोमणिः ॥ १९६ ॥
पुष्पवन्तौ क्षिपन् कान्त्या सौभाग्यमणिरुच्यते ।
कटकाश्चटकाराया: केयूरे मणिकर्बु रे ॥ १९७ ॥
मुद्रा नामाङ्किता नाम्ना विपक्षमदमर्दिनी ।
काञ्ची काञ्चनचित्राङ्गी नूपुरे रत्नगोपुरे ।
मधुसूदनमारुद्धे ययोः शिञ्जितमञ्जरी ॥ १९८ ॥
वासो मेघाम्बरं नाम कुरुविन्दनिभं तथा ।
आद्यं स्वप्रियमभ्राभं रक्तमन्त्यं हरेः प्रियम् ॥ १९९ ॥
सुधांशुदर्पहरणो दर्पणो मणिबान्धवः ॥ २०० ॥
शलाका नर्मदा हैमी स्वस्तिदा रत्नकङ्कती ।
कन्दर्पकुहली नाम वाटिका पुष्पभूषिता ॥ २०१ ॥

हुए निजनाथ श्रीराधाकृष्ण सम्बन्धी विचित्र वचनों का पाठ कर सखियों को भी आश्चर्य युक्त करा देता था ॥ १८०–१९४ ॥

अब श्रीराधा के भूषणों का वर्णन करते हैं। तिलक का नाम स्मरयन्त्र, हार का नाम हरिमनोहर, दोनों रत्न-ताड़ का नाम रोचन तथा नासिका में विराजमान मुक्ता का नाम प्रभाकरी है। पदक का नाम मदन है जो कि श्रीकृष्ण की प्रतिच्छाया से ढका रहता था। शंखचूड से प्राप्त मणि का नाम सौभाग्यमणि है। जिसका दूसरा नाम स्यमन्तकमणि भी था तथा जो अपनी कान्ति से एक ही साथ चन्द्र सूर्य की कान्ति को फैंकता था। कटक (कड़ला) सब चटकारावा के नाम से कहे जाते थे। दोनों केयूरें (बाजू) का नाम मणिकर्बु र था। मुद्रिका का नाम विपक्षमदमर्दिनी था। काञ्ची (कौंधनी) का नाम काञ्चनचित्राङ्गी, तथा दोनों नूपुरों के नाम रत्नगोपुर

स्वर्णयूथी तडिद्वल्ली कुण्डं ख्यातं स्वनामतः ।
नीपवेदीतटे यस्य रहस्यकथनस्थली ॥ २०२ ॥
मल्लारश्च धनाश्रीश्च रागौ हृदयमोदनौ ।
छालिक्यं दयितं नृत्यं वल्लभा रुद्रवल्लकी ॥ २०३ ॥
जन्मना श्लाघ्यतां नीता शुक्ला भाद्रपदाष्टमी ।
कान्ता षोडशभी रेमे यत्रालिनिलये शशी ॥ २०४ ॥
इत्येतत् परिवाराणां श्रीवृन्दावननाथयोः ।
असङ्ख्यानां गणयितुं दिङ्मात्रमिह दर्शितम् ॥ २०५ ॥
इति श्रीलश्रीपादरूपगोस्वामिविरचितायां
श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिकायां लघुभागः सम्पूर्णः (सम्पूर्णोऽयं ग्रन्थः)

थे। जिनकी शब्द मञ्जरी मधुसूदन श्रीकृष्ण का रोध कर देती थी। मेघाम्बर तथा कुरुविन्दनिभ नाम से दो वस्त्र थे। पहिला तो अपना प्रिय तथा मेघकान्ति के तुल्य था और दूसरा रक्तवर्ण तथा श्रीहरि के प्रिय था। दर्पण का नाम मणिबान्धव था जो कि चन्द्रमा के दर्प को हरण करता था। सुवर्ण शलाका का नाम नर्मदा तथा रत्नकङ्कती (कङ्घा) का नाम स्वस्तिदा था। कन्दर्पकुहली नामक वाटिका थी जो कि पुष्पों से भरपूर थी। सुवर्णयूथी का नाम तडिद्वल्ली तथा अपने नाम से ख्यात कुंड (राधाकुंड) है। जिसके नीपवेदी तट में रहस्यकथनस्थली है। मल्लार और धनाश्री ये दोनों राग हृदय मोहनकारी हैं। श्रीराधा को छालिक्य नामक नृत्य प्रिय था तथा रुद्रवल्लकी परम प्रिया थी। शुक्ला भाद्रपद की अष्टमी जन्म दिवस के कारण प्रशंसनीया है जहाँ अपनी षोलह भार्य्या (-कला) के साथ चन्द्रमा रमण करता है। इति यह श्रीवृन्दावननाथ राधाकृष्ण के असंख्य परिवारों का गणना करने के लिये यहाँ दिङ्मात्र दिखलाया गया है ॥ १९५–२०५ ॥

इति श्रील श्रीपादरूपगोस्वामिविरचित श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका के लघुभाग का अनुवाद सम्पूर्ण हुआ। अनुवादक–कृष्णदास।

श्रीकृष्णलीलास्तवः

श्रीकृष्णाय नमो नमः।

श्रीकृष्णस्य कथासूत्रं यथाभागवतक्रमम्।
लिख्यतेऽष्टोत्तरशतप्रणामानन्दसिद्धये ॥ १ ॥
ब्रह्मब्रह्मन्नमामि त्वामात्मन्नन्दीश्वरेश्वर।
नानावतारकृत् कृष्ण मधुरानन्दपूरद ॥ २ ॥
[एवमादौ यथावदारम्भे नमस्कार एकः]
जय कृष्ण परब्रह्मन् जगत्तत्त्व जगन्मय।
अद्वैत सच्चिदानन्द स्वप्रकाशाखिलाश्रय ॥ ३ ॥

---

* श्रीसनातनगोस्वामिने नमः *

एक सौ आठ प्रणाम कर आनन्दातिशय प्राप्ति के लिये श्रीमद्भागवत क्रम के अनुसार श्रीकृष्ण कथा के सूत्र अर्थात् बीज लिखे जाते हैं ॥ १ ॥

हे ब्रह्मब्रह्मन् अर्थात् ब्रह्मा के अधीश्वर अथवा वेद प्रतिपाद्य परम ब्रह्म !, हे आत्मन् अर्थात् व्यापक अथवा प्रियतम !, हे नन्दीश्वर महादेव के ईश्वर अथवा नन्दग्राम के सर्वप्राधान्यरूप व्रजनवयुवराज !, हे मत्स्य-कूर्म्म-वराहादि नानावतारकारी !, हे सर्वचित्ताकर्षक नन्दनन्दन श्रीकृष्ण !, हे मधुरानन्द पूरद अर्थात् माधुर्य्य सुखसागर अथवा शृंगाररससर्व्वस्व ! आपको नमस्कार है ॥ २ ॥

(यह प्रारम्भ में प्रथम नमस्कार है)

हे कृष्ण !, हे परब्रह्म अर्थात् सर्वाराध्य सर्वश्रेष्ठ !, हे अखिल ब्रह्माण्ड के मूलकारण ! हे जगन्मय अर्थात् एकांश से जगत् स्थिति के कारण जगद्रूप ! हे सर्वाधिक !, हे सच्चिदानन्द अर्थात् सन्धिनी-सम्वित्-ह्लादिनी शक्तिविशिष्ट !, हे स्वयं प्रकाश !, हे अखिल आश्रय ! आप की जय हो ॥ ३ ॥

निर्विकारापरिच्छिन्न निर्विशेष निरञ्जन ।
अव्यक्त सत्य सन्मात्र परम ज्योति रक्षर ॥ ४ ॥ नमः २ ॥
परमात्मन् वासुदेव प्रधानपुरुषेश्वर ।
सर्वज्ञानक्रियाशक्तिदात्रे तुभ्यं नमो नमः ॥ ५ ॥
हृत्पद्मकर्णिकावास गोपाल पुरुषोत्तम ।
नारायण हृषीकेश नमोऽन्तर्यामिणेऽस्तु ते ॥ ६ ॥ नमः ३ ॥

हे निर्विकार ! हे अपरिच्छिन्न ! हे निर्विशेष ! अर्थात् प्राकृत हेयगुण वर्जित ! हे निरञ्जन अर्थात् क्लेशरहित अथवा स्वरूपच्युति-शून्य ! हे अव्यक्त अर्थात् अस्फुट प्रकाश ! हे सत्य अर्थात् यथार्थस्वरूप में स्थित अथवा सदा सर्वदा अव्यभिचारिरूप से विराजमान ? हे सन्मात्र ! हे परम पुरुषोत्तम ! अथवा स्वरूपशक्ति के द्वारा नित्य आलिङ्गित ! हे परम ज्योतिस्वरूप ! हे अक्षर अर्थात् प्रणव स्वरूप ! अथवा जिनकी प्राप्ति होने पर पतन नहीं होता है एतादृश ! ॥ ४ ॥

(दूसरा प्रणाम)

इसके पश्चात् भगवान् के सर्वान्तर्यामित्व-हेतु परमात्म स्वरूप के आविर्भाव का स्तव करते हैं। हे परमात्मन् अर्थात् हे सर्वान्तर्य्यामिन्, हे वासुदेव अर्थात् रोमकूप मे निखिल ब्रह्माण्डनिवासभूत प्रथमपुरुष के देवता !, हे प्रधान पुरुषेश्वर अर्थात् प्रकृतिपुरुष के नियन्ता ! आप समस्त ज्ञान-क्रिया-शक्ति के प्रदाता हैं आपको नमस्कार है नमस्कार है ॥ ५ ॥

आप हृदयपद्म कर्णिका में अर्थात् अनाहतचक्र मे निवास करते हैं, वाह्य इन्द्रिय के द्वारा उपलक्षित सकल इन्द्रियों के पालक होने के कारण गोपाल हैं, आप पुरुषोत्तम हैं। जीव-समूह के आश्रय होने के कारण अथवा अखिललोक के साक्षी होने के कारण आपका नाम नारायण है। आप ईश्वर रूप से सकल इन्द्रियों के अधीश्वर किम्वा अन्तःकरण के नियामक होने के कारण अन्तर्य्यामी हैं। आपको नम-

परमेश्वर लक्ष्मीश सच्चिदानन्दविग्रह ।
सर्वसल्लक्षणोपेत नित्यनूतनयौवन ॥ ७ ॥
सर्वाङ्गसुन्दर स्निग्धघनश्यामाब्जलोचन ।
पीताम्बर सदा स्मेरमुखपद्म नमोस्तु ते ॥ ८ ॥
परमाश्चर्य्यसौन्दर्य्य माधुर्य्यजितदूषण ।
सदा कृपास्निग्धदृष्टे जय भूषणभूषण ॥ ९ ॥
कन्दर्पकोटिलावण्य सूर्य्यकोटिमहाद्युते ।
कोटीन्दुजगदानन्दिन् श्रीमद्वैकुण्ठनायक ॥ १० ॥

स्कार है ॥ ६ ॥ (तीसरा नमस्कार)

इसके अनन्तर विष्णुस्वरूप में आविर्भूत प्रभु का स्तव करते हैं—

हे परमेश्वर ? हे लक्ष्मीपति ! हे सच्चिदानन्दविग्रह अर्थात् परिपूर्ण आविर्भाव के कारण सच्चिदानन्दघन विग्रहधारिन् ! आप अत्युत्तम बत्तीस प्रकार के सल्लक्षण से युक्त हैं और नित्यनवयौवन में स्थित हैं ॥ ७ ॥

हे सर्व्वांगमनोहर ! स्निग्ध जलधर की भाँति आपका वर्ण श्यामल है और आप कमलनयन पीताम्बरधारी हैं। आपका मुखकमल सदा सर्वदा मन्दहास्य से शोभायमान है। आपको नमस्कार है ॥८॥

आपका सौन्दर्य्य परम अद्भुत है तथा श्री अंग की माधुर्य्यता सकल भूषणों का पराभवकारी है अर्थात् भूषणों का भूषणरूप है। हे सदा सर्वदा करुणामृत वर्षण के द्वारा स्निग्ध-दृष्टिवाले ! हे भूषणों के भूषण अर्थात् शोभा समुद्र ! आपकी जय हो ॥ ६ ॥

हे कोटि कोटि काम से भी समधिक लावण्यधारिन् !, हे कोटि कोटि सूर्य्य से भी अधिकतर जाज्वल्यमान कान्तिवाले !, हे कोटि कोटि चन्द्र से भी अति सुन्दर रूपसे जगत् के आनन्द प्रदानकारिन् ! आप सर्व शोभा-सम्पत्ति निषेवित वैकुण्ठ के नायक हैं ॥ १० ॥

शङ्खपद्मगदाचक्रविलसच्छ्रीचतुर्भुज ।
शेषादिपार्षदोपास्य श्रीमद्गरुडवाहन ॥ ११ ॥
स्वानुरूपपरीवार सर्वसद्गुणसेवित ।
भगवन् हृद्वचोऽतीत महामहिमपूरित ॥ १२ ॥
दीननाथैकशरण हीनार्थाधिकसाधक ।
समस्तदुर्गतित्रात वाञ्छातीतफलप्रद ॥ १३ ॥ नम ४ ॥
सर्वावतारबीजाय नमस्ते त्रिगुणात्मने ।
ब्रह्मणे सृष्टिकर्त्रेऽथ संहर्त्रे शिवरूपिणे ॥ १४ ॥

हे शङ्ख पद्म-गदा-चक्र विलासी सुन्दर चतुर्भुज विशिष्ट !, हे शेषादि पार्षदों के उपास्य !, हे गरुडवाहन ! ॥ ११ ॥

हे स्वानुरूप परिकरों से परिसेवित !, हे निखिल कल्याणमयगुणों के द्वारा अलङ्कृत !, हे ऐश्वर्य्य वीर्य्यादि षड्भगों से युक्त अर्थात् षडैश्वर्य्य परिपूर्ण स्वयं भगवान् !, हे त्रिपाद् विभूति में अर्थात् दिव्य चिन्मय धाम में नित्य विराजमान रहने के कारण वाक्य-मन के अगोचर ! अतएव ब्रह्मादिदेवताओं को मोह के उत्पादक परम विस्मय कारी महान् ऐश्वर्य्य से परिपूर्ण ॥ १२ ॥

हे निष्किञ्चन जनों के प्रभु तथा एकमात्र आश्रय! हे निष्किञ्चन निज भक्तों में चतुर्वर्ग तिरस्कारकारी प्रेम महाधन का वितरण करने वाले ! हे समस्त लोगों के त्रितापादि दुःखों के त्राणकारी तथा उनको वाञ्छातीत फल के दाता ! आपको नमस्कार है ॥ १३ ॥

(चतुर्थ नमस्कार)

अब महाविष्णुरूप से स्तव करते हैं।—हे मत्स्य-कूर्म्मादि समस्त अवतारों के मूलकारण अर्थात् सर्वावतार बीजरूप ! आप से ही गुणत्रय का प्रकाश होता है। आप सृष्टि के मूलकर्त्ता होने के कारण ब्रह्मारूप तथा संहार के कारण शिवरूप हैं। आपको नमस्कार है ॥ १४ ॥

भक्तेच्छापूरणव्यग्र शुद्धसत्त्वघन प्रभो ।
वन्दे देवाधिदेवं त्वां कृपालो विश्वपालक ॥ १५ ॥
सर्वधर्मस्थापकाय सर्वाधर्मविनाशिने ।
सर्वासुरविनाशाय महाविष्णो नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥
नानामधुररूपाय नानामधुरधामिने ।
नानामधुरलीलाय नानासत्त्वाय ते नमः ॥ १७ ॥ नमः ५ ॥
श्रीचतुःसनरूपाय तुभ्यं श्रीनारदात्मने ।
श्रीवराहाय यज्ञाय कपिलाय नमो नमः ॥ १८ ॥
दत्तात्रेय नमस्तुभ्यं नरनारायणौ भजे ।
हे हयग्रीव हे हंस ध्रुवप्रिय नमोऽस्तु ते ॥ १९ ॥

हे भक्तेच्छा पूर्ति के लिये निरन्तर व्यग्रमानस तथा शुद्ध सत्त्वगुण के आश्रय के द्वारा विष्णुस्वरूप में अवस्थित ! आप देवाधिदेव, कृपालु तथा विश्वपालक हैं। आपकी वन्दना करता हूँ ॥ १५ ॥

हे सकलधर्म्मं के स्थापक तथा सकल अधर्म्म नाशकारी ! हे समस्त असुरों के विघातक ! हे महाविष्णु ! आपके श्रीचरण में नमस्कार है ॥ १६ ॥

हे भक्तचित्त विनोदनार्थ विविध माधुर्यमय रूप धारणकारी ! हे दास्य सख्य-वात्सल्य मधुर रस के आस्वादक ! आप की लीला अनन्त तथा नाम भी अनन्त हैं। आपको नमस्कार है ॥ १७ ॥

(पञ्चम नमस्कार)

अब चौदह मन्वन्तरावतार तथा लीलावतार रूप से स्तव करते हैं।—हे सनत्कुमार-सनातन-सनक-सनन्दन स्वरूप ! हे नारदरूप ! हे वराह-यज्ञ-कपिल स्वरूप ! आपको नमस्कार है नमस्कार है ॥१८॥

हे दत्तात्रेय ! आपको नमस्कार है। हे नर नारायण ! आपका भजन करता हूँ। हे हयग्रीव ! हे हंस ! हे ध्रुवप्रिय ! आपके लिये नमस्कार है ॥ १९ ॥

पृथुं त्वामृषभं चैव वन्दे स्वायंभुवेऽन्तरे।
द्वितीये विभुनामानं तृतीये सत्यसेनकम् ॥ २० ॥
चतुर्थे श्रीहरिं वन्दे वैकुण्ठं पञ्चमे तथा।
षष्ठेऽजितं महामीनं शेषं च धरणीधरम् ॥ २१ ॥
श्रीनृसिंहं च कूर्मं च सधन्वन्तरिमोहिनीम्।
सप्तमे वामनं वन्दे नमः परशुराम ते ॥ २२ ॥
श्रीरामचन्द्र हे व्यास नमस्ते श्रीहलायुध।
हे बुद्ध कल्किन् मां पाहि प्रपन्नाशनिपञ्जर ॥ २३ ॥नमः ६॥
अष्टमे सार्वभौमस्त्वमृषभो नवमे भवान्।
विश्वक्सेनश्च दशमे धर्मसेतुस्ततःपरम् ॥ २४ ॥

हे पृथु! तथा हे ऋषभ! आपकी वन्दना करता हूँ। ये बारह स्वरूप स्वायम्भुव मन्वन्तर में अवतीर्ण हुए हैं। द्वितीय मन्वन्तर में अर्थात् स्वारोचिष में विभु, तृतीय औत्तमीय में सत्यसेन, चतुर्थ तामसीयमें हरि,पञ्चम रैवतीय में वैकुण्ठ जी हैं। इन सबकी वन्दना करता हूँ। षष्ठ चाक्षुषीय में अजित, महामीन, शेष धरणीधर, श्री नृसिंह, कूर्म्म, धन्वन्तरि के साथ मोहिनी जी हैं—इन सबकी वन्दना करता हूँ। सप्तम इस वैवस्वत मन्वन्तर में वामन हैं, उनकी वन्दना करता हूँ। हे परशुराम! आपको नमस्कार है। हे श्रीरामचन्द्र! हे व्यास! हे श्रीहलायुध! आप सबको नमस्कार है। हे बुद्ध! हे शरणागत जन के लिये वज्र की तरह सुदृढ़ शरीरधारी कल्कि! मेरी रक्षा कीजिये ॥ २० ॥ (षष्ठ नमस्कार)

अष्टम सावर्णीय में आप सार्व्वभौम, नवम दक्षसावर्णीय में ऋषभ, दशम ब्रह्मसावर्णीय में विष्वक्सेन, एकादश धर्म्मसावर्णीय में धर्म्मसेतु, द्वादश रुद्रसावर्णीय में सुधामा, त्रयोदश देवसावर्णीय में योगेश्वर तथा चतुर्दश इन्द्रसावर्णीय में बृहद्भानु हैं। इस प्रकार मन्वन्तरावतार तथा चौदह मन्वन्तरावतार हैं। सब मिल कर

सुधामा द्वादशे भावी योगेशस्तु त्रयोदशे ।
चतुर्दशे वृहद्भानुः सप्तत्रिंशत्तनो जय ॥ २५ ॥
शुक्लः सत्ययुगे यः स्याद्रक्तस्त्रेतायुगे तथा ।
द्वापरे तु हरिद्वर्णः कलौ कृष्णो महाप्रभो ॥ २६ ॥
तं त्वां श्रीकृष्ण ! वन्देऽहं जगदेकदयानिधे ।
निजभक्तविनोदार्थलीलानन्तावतारकृत् ॥ २७ ॥ नमः ७ ॥
प्रल्हादसंल्हादक भक्तवत्सल भक्तिप्रभावप्रकटिन् नृसिंह हे ।
स्वद्वेष्टृवक्षःस्थलपाटन प्रभो शिष्टेष्टमूर्ते जय दुष्टभीषण ॥२८॥
अन्तःकृपातिमृदुल वाहिराटोपसुन्दर ।
प्रल्हादाङ्गावलेहोत्क स्फुटद्ब्रह्माण्डगर्जित ॥ २९ ॥नमः ८ ॥

---

३७ अवतार हुए हैं । हे इन सब स्वरूपों में प्रकटशील श्रीप्रभु ! आप की जय हो । जो सत्ययुग में शुक्लवर्ण, त्रेता में रक्त तथा द्वापर में हरिद्वर्ण हैं, वे श्रीकृष्ण कलियुग में महाप्रभु हैं । हे जगत् में एकमात्र दयानिधान श्रीकृष्ण ! आपकी वन्दना करता हूँ । आप अपने भक्तों के विनोदार्थ लीला के अनुसार अनन्त अवतारों के प्राकट्यकारी हैं ॥ २४–२७ ॥ (सप्तम नमस्कार)

अब श्रीनृसिंह तथा श्रीरामचन्द्र इन परावस्थ स्वरूप दोनों का स्तव करते हैं—हे प्रल्हादके सम्यक् आनन्ददायक ! हे भक्तवत्सल ! हे भक्तिप्रभाव के द्वारा प्रकटनशील श्रीनृसिंह ! हे निज-शत्रु हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल-विदीर्णकारी ! हे प्रभु ! आप शिष्टों का अभीष्ट मूर्त्तिस्वरूप और दुष्टों के भयप्रद हैं । आपकी जय हो । आप अन्तर में करुणाधिक्य से अत्यन्त स्निग्ध तथा वाहिर में आटोप गर्ज्जना के द्वारा परम सुन्दर हैं । प्रल्हादजी के अंग अवलेहना करने में आप उत्कण्ठित हैं । आपके गर्जन में ब्रह्माण्ड छिन्नभिन्न सा हुआ था । ॥ २८–२९ ॥ (अष्टम नमस्कार)

सीतापते दाशरथे रघूद्वह श्रीराम हे कोशलजासुताब्जदृक् ।
श्रीलक्ष्मणज्येष्ठ हनूमदीश्वर सुग्रीवबन्धो भरताग्रज प्रभो ॥३०॥
हे दण्डकारण्यचराप्र्यशील हे कोदण्डपाणे खरदूषणांतक ।
बद्धाब्धिसेतोऽयि विभीषणाश्रित लंकेशघातिन् जय कोशलेन्द्र॥३१॥
नमः ६ ॥

श्रीकृष्ण जीया मथुरावतीर्ण स्वप्रेमदानैकनितान्तकृत्य ।
नानासुमाधुर्य्यमहानिधान संव्यञ्जितैश्वर्य्यकृपामहत्त्व ॥ ३२ ॥
परीक्षित्पृष्टचरित सर्वसेव्यकथामृत ।
कृतपाण्डवनिस्तार-परीक्षिद्गर्भगोपन ॥ ३३ ॥

हे सीतापति ! हे दाशरथि ! हे रघुकुल-मुकुट ! श्रीरामचन्द्र ! हे कौशल्यानन्दन ! हे पद्मपलाशलोचन ! हे लक्ष्मणज्येष्ठ ! हे हनुमानके प्रभु ! हे सुग्रीवबान्धव ! हे भरताग्रज ! हे प्रभु ! हे दण्डकारण्यविहारी ! हे उत्तम चरित ! हे धनुर्व्बाण धारिन् ! हे खरदूषणनाशक ! हे समुद्रबन्धनकारी ! हे विभीषण के आश्रय अथवा विभीषण के शरण ! हे रावण विघातक ! हे कोशलेन्द्र ! आपकी जय हो॥३०—३१॥
(नवम नमस्कार)

अब समस्त स्वांशावतार का स्तव कर पश्चात् स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण का स्तव करते हैं।—हे श्रीकृष्ण ! हे मथुरा में अवतीर्ण ! आप सर्वोत्कर्षरूप से विराजमान हैं। निज प्रेमप्रदान ही आप का परम कर्त्तव्य है। आप नाना प्रकार से सुमाधुर्य के निधान हैं। आप के ऐश्वर्य्य कृपा-महत्त्वादिक मथुरा के अवतरण में सुन्दररूप से अभिव्यक्त हो रहा है ॥ ३२ ॥

अब श्रीमद् भागवत् दशमस्कन्ध के लीलासूत्र का वर्णन करते हैं—राजा परीक्षित् ने श्रीशुकदेव के लिये आपकी चरित्रकथा का प्रश्न किया है। आपका चरित्रामृत सबका सेवनीय है। भीष्म, द्रोणादि महायोद्धाओं के साथ दुर्द्धर्ष संग्राम से आपने ही पाण्डवों

बहिरन्तःस्थतासाधुसाधुदुःखसुखप्रद ।
शुश्रूषाकृष्टराजान्तर्नानाशंकानुपृष्ट हे ॥ ३४ ॥
त्यक्तोदान्ननृपप्राण शुकोदीर्णकथामृत ।
नृपत्याजासुरानीकभारार्त्तक्षितिरोदक ॥ ३५ ॥
धरार्त्तनादुग्धाब्धिगतब्रह्माद्युपस्थित ।
ब्रह्मध्यानश्रुतादेशकथाप्यायितभूसुर ॥ ३६ ॥ नमः १० ॥
शूरसेनमहाराजधानीश्रीमथुराप्रिय ।
देवकीवसुदेवैवविवाहोत्सवकारण ॥ ३७ ॥

का मृत्युमुख से निस्तार किया है। आप ने ही अश्वत्थामा के द्वारा चलाये हुए ब्रह्मास्त्र से मातृगर्भ में दग्ध परीक्षित की रक्षा की थी। बहिर्दृष्टि वाले असाधुओं के सम्बन्ध में आप कालरूप से दुःखदान तथा अन्तर्दृष्टिवाले साधुओं को अन्तर्यामी स्वरूप से सुख प्रदान करते हैं। आपने ही निजवृत्तान्त सुनाने की इच्छा से परीक्षित् महाराज के चित्त का आकर्षण किया और उनके चित्त में नाना प्रकार की आशङ्का उठाकर उसका समाधान रूपा निज कथा की जिज्ञासा की थी। अन्न जल परित्याग कारी राजा के प्राणरूप से आप ही विराजमान हुए तथा शुकदेव के मुख से निज कथामृत का पान कराकर कृतार्थ किया था। आपने ही नृपति छल में दुष्ट असुर सेनाओं के भार से प्रपीडिता पृथिवी का रोदन करवाया तथा पृथिवी के आर्त्तनाद से क्षीरोद-समुद्र के तट पर समागत ब्रह्मादि देवगण के सान्निध्य में आप ही उपस्थित हुए। ब्रह्मा के ध्यान में श्रुत निज प्रत्यादेश वार्त्ता का प्रचार कराकर आपने देवगण के सम्यक् सन्तोष का विधान किया था॥ ३३। ३६॥ (दशम नमस्कार)

अब भोजेन्द्रबन्धनागार में अवतीर्ण होने का प्रसग उठाते हैं— यदुराज शूरसेन का महाराजधानी श्रीमथुरा आपको परमप्रिय है अ-

वियद्वाग्वर्द्धिताक्ताश्वपाशकंसातिदुर्नय ।
वसुदेववचोयुक्तिदेवकीप्राणरक्षक ॥ ३८ ॥
सत्यवाक् शौरिकंसाग्रनीतपुत्रविमोचन ।
देवर्षिकथितोदन्तकंसघ्नातेहिताव माम् ॥ ३९ ॥
कंसशृङ्खलितानेक-वसुदेवादिबान्धव ।
देवकीजातषड्गर्भतातकंसारिघातन ॥ ४० ॥ नमः ११ ॥

❀ इतिदशमस्कन्धे प्रथमोऽध्याय ❀

कंसासुरवलोद्विग्नस्वयादवबुलार्त्तिवित् ।
देवकीसप्तमभ्रूणयामन्मायानियोजक ॥ ४१ ॥

थवा आप मथुरा के परमप्रिय है। देवकी वसुदेव दोनों का विवाहोत्सव का मुख्य कारण आप ही हैं। वरवधू के गृह गमन के समय आकाशवाणी के द्वारा अश्वरज्जुधारी कंस की दुर्नीति को अधिक परिमाण से आपने ही बढाया था और देवकी के प्राणनाश के लिये उन्नत दुष्ट कंस के अत्याचार से वसुदेव के द्वारा युक्ति नैपुण्य से उस की स्तुति कराकर देवकी की प्राणरक्षा आपने ही की थी। सत्यपरायण वसुदेव के द्वारा कंस के सम्मुख में लाया हुआ प्रथम सन्तान का विमोचन आपने करवाया पश्चात् देवर्षि नारद जी के द्वारा आप का वृत्तान्त सुनाकर आपके वध के लिये देवकी पुत्रों की हत्या करना युक्तियुक्त है-इस प्रकार कंस को उत्तेजित आपने ही कराया। आप ने ही कस के द्वारा वसुदेव देवकी प्रभृति अनेक बान्धवों को शृंखला के द्वारा बँधवा कर देवकी गर्भजात अग्रज छै जनों का वध कराया था क्योंकि उससे दुष्टनाशरूप तथा साधु संरक्षण स्वरूप पृथिवी-सरक्षा का निगूढ अभिप्राय सिद्ध हो सकता है। हे कृष्ण! आपने सब युक्त किया है, आप मेरी रक्षा कीजिये ॥ ३७-४० ॥

(एकादश नमस्कार)

देवकीपुत्रतावाप्तिद्वारोत्साहितमाय हे ।
रोहिणीप्रापितस्वांश रौहिणेयप्रियाऽव माम् ॥ ४२ ॥
वसुदेवोल्लसच्चक्के देवस्यष्टमगर्भग ।
स्वसवित्रीलसज्ज्योतिः कसत्रासविषादकृत् ॥ ४३ ॥
सदा कसमनोवर्त्तिन् ब्रह्मरुद्राद्यभिष्टुत ।
सत्यात्मक जगन्नाथ शुद्धसात्त्विकरूपभृत् ॥ ४४ ॥

कस के प्रलम्ब, वक, चाणूरादि सैन्यगण के द्वारा उद्विग्न निज यादववश की आर्त्ति को जानने वाले आप ही हैं। आपने ही तो देवकी के सप्तम गर्भ मे निज शेष नामक विग्रह का संस्थापन कर रोहिणी के गर्भ में सन्निवेश करने के लिये योगमाया को नियोजित किया है ॥ ४१ ॥

स्वयं आप देवकी के पुत्ररूप मे जन्म धारण करेंगे–ऐसा कह कर योगमाया को उत्साहित किया था। इसके अनन्तर आपने योग-माया के द्वारा रोहिणीगर्भ में निजांश अनन्तजी का स्थापन करवाया। हे बलदेवप्रिय! आप मेरी रक्षा कीजिये ॥ ४२ ॥

आप वसुदेव के मन मे अपनी शक्ति को निहित कर प्रकाश-मान हुए हैं तथा उनके हृदय से देवकी के अष्टमगर्भ में विराजमान हुए हैं। आपने निज जननी देवकी के प्रकाशमान तेज के द्वारा कंस का भय और विषाद का उत्पादन करवाया ॥ ४३ ॥

फलत. शयन भोजन गमनादि सर्वावस्था मे आपने सर्वदा कंस के मनोमन्दिर मे निवास किया है। उस समय ब्रह्मा रुद्रादि देवतागण ने आपकी सर्व प्रकार से स्तुति की थी। वह स्तुति इस प्रकार की थी। हे सत्यव्रत! सत्यपर! इत्यादि रूप से सर्वथा सत्यात्मक! सकल सृष्टि के कारण के लिये आप चौदह भुवन के नाथ अर्थात् सर्वेश्वर हैं। आप शुद्धसात्त्विक सज्जन सुखकारी मायालेश से रहित सुन्दर रूप को धारण करते हैं ॥ ४४ ॥

भक्तैकलभ्यसर्वस्व सर्वसर्वार्थकृद्वपुः ।
रूपनामाश्रिताविष्ट जन्ममात्रधरार्त्तिहृत् ॥ ४५ ॥
स्वर्भूभूषणपादाब्ज विनोदैकार्थजात हे !
जय भूभारहरण देवाश्वासितमातृक ॥ ४६ ॥नमः १२ ॥

❀ इति दशमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ❀

भाद्रकृष्णाष्टमीजात प्राजापत्यर्क्षसम्भवः ।
महीमङ्गल-विस्तरिन् साधुचित्तप्रसादक ॥ ४७ ॥

केवलमात्र भक्तगण ही आपके पादाश्रय रूप महान् धन के अधिकारी हैं । आपके श्रीविग्रह चारवर्ण, चार-आश्रम प्रभृति के वेद-तपस्या-योग-समाधि आदि के द्वारा स्तुत्य सर्व्वपुरुषार्थ प्रदानकारी है । यद्यपि मन वाक्य के अगोचर होने के हेतु आपके नाम-रूप-गुण-जन्म-कर्म्मादि निरूपण के विषय नहीं हैं तो भी भक्तों की उपासना के समय साक्षात्कार होने के लिये नामरूपादि का आश्रय कर उसमें आविष्ट रहने के कारण आप रूपनामाश्रिताविष्ट हैं । अतः आपके प्राकट्यमात्र से ही पृथिवी का आर्त्तिभार हरण हो जाता है ॥ ४५ ॥

आपके चरणकमल स्वर्ग-मर्त्त्य के भूषण स्वरूप हैं आप का आविर्भाव केवल धरा का भारहरणार्थ नहीं है परन्तु उसका मुख्य प्रयोजन क्रीडाविनोद है । मत्स्य-कूर्म्मादि विविध अवतारों के प्राकट्य के द्वारा त्रिभुवन का पालन करने के कारण आप भूभार हरण कारी हैं । आपकी जय हो । "हे मातः भाग्यवश आपके उदर में पुरुषोत्तम का प्रवेश है" इस प्रकार के वाक्य के द्वारा आप देवतागण से निज माता का आश्वासन देने वाले हैं । आपको नमस्कार है । ॥ ४६ ॥ (द्वादश नमस्कार)

अब आविर्भाव होने का समय कहते हैं । भाद्रमास की कृष्ण-

महर्षिमानसोल्लास सन्तोषितसुरव्रज ।
निशीथ-समयोद्भूत वसुदेवप्रियात्मज ॥ ४८ ॥
देवकीगर्भसद्रत्न बलभद्रप्रियानुज ।
गदाग्रज प्रसीदाशु सुभद्रापूर्वजाऽव माम् ॥ ४९ ॥
आश्चर्यबाल मां पाहि दिव्यरूप-प्रदर्शक ।
कारागारान्धकारघ्न सूतिकागृहभूषण ॥ ५० ॥ नमः १३ ॥
वसुदेवस्तुतं साक्षादृदृश्यात्म-प्रदर्शक ।
सत्प्रविष्टाप्रविष्ट त्वां वन्दे कारणकारणम् ॥ ५१ ॥

ष्टमी तिथि रोहिणी नक्षत्र में आपका प्रादुर्भाव है। उससे पृथिवी का मंगल विस्तार तथा साधुओं का चित्त प्रसन्न हुआ है ॥ ४७ ॥

हे महर्षियों के मानस-उल्लास कारी तथा देवताओं का सन्तोष करने वाले ! आप निशीथ में वसुदेव पत्नी देवकी के गर्भ से प्रकट हुए हैं ॥ ४८ ॥

हे देवकी के उदरखानि के अति उत्कृष्ट इन्द्रनीलमणि ! हे बलदेव के प्रिय अनुज ! हे गदाग्रज ! आप मेरे लिये प्रसन्न होवें। हे सुभद्रा के पूर्वज ! हमें अपनी लीला की स्फूर्त्ति कराकर हमारी रक्षा कीजिये ॥ ४९ ॥

जन्म के समय पद्मपलाशलोचन आप शंख चक्रादियुक्त भुजचतुष्टय तथा श्री वत्स-कौस्तुभादि धारण करके आश्चर्यान्वित बालक रूप से शोभित हुए थे और महामूल्य वैदूर्य-किरीट तथा कुण्डलादि के द्वारा शोभित होकर वसुदेव को दिव्य रूप का दर्शन कराया था। आपने अपने तेज से कारागार के अन्धकार का नाश किया तथा सूतिकागृह में भूषण रूप से विराजमान रहे। अब मेरी रक्षा कीजिये (त्रयोदश नमस्कार) ॥ ५० ॥

ऐश्वर्य दर्शन से पुत्रबुद्धि के अपगत होने पर वसुदेव के द्वारा

सिद्धाकर्त्तृ स्वकर्त्तृ त्वं जगत्क्षेमकरोदयम् ।
दैत्यमुक्तिद्कारुण्य स्वजनप्रेमवर्द्धनम् ॥ ५२ ॥
देवकीनयनानन्द जय भीतप्रसूस्तुत ।
निर्गुणाध्यात्मदीपाविलयकारक कालसृक् ॥ ५३ ॥
स्वपादाश्रित-मृत्युघ्न मासदृग्दृश्ययोग्य हे ।
लोकोपहास-भीताम्बावृतदिव्याङ्ग-सवृते ॥ ५४ ॥नम. १४॥

आप स्तुत हुए । आप प्रत्यक्ष रूप से अदृश्य हैं अर्थात् केवल अनुभवसिद्ध स्वरूप के प्रदर्शक हैं ।"ब्रह्मा ने जगत् की सृष्टि कर उसमें अन्त प्रवेश किया" इस श्रुतिप्रमाणबल से निज प्रकृति के द्वारा सृष्ट सत् शब्द वाच्य विश्व के अन्तर में प्रविष्ट होने पर भी आप अप्रविष्ट अर्थात् निर्लिप्त हैं । भावार्थ यह है कि आप उसमें सद् रूप से प्रविष्ट की भाँति प्रतीयमान होते हैं । आप जग के कारण ब्रह्मा के भी आदिकारण हैं । आपकी वन्दना करता हूँ ॥ ५१ ॥

आप निष्क्रिय होने के कारण अकर्त्ता अथच ईश्वर होने के कारण कर्त्ता हैं । इस विरुद्ध धर्म्म का समावेश आप में ही है । साधुओं की रक्षा के लिये "नाममात्र से राजा तथा कार्य्य में असुर" उन समूह की हत्या कर आप जगत्के मंगल के लिये आविर्भूत होते हैं आप दैत्योंका संहार करनेपर भी उनको मुक्ति प्रदान करने के कारण कारुण्य का प्रकाश करते हैं । हे स्वजन प्रीतिवर्द्धक ! आपकी वन्दना करता हूँ ॥ ५२ ॥

अब देवकी स्तुति का वर्णन करते हैं ।—हे देवकी के नयनानन्द ! आपकी जय हो । कंस से भयभीत जननी देवकी की पुनर्बुद्धि संकुचित हो जाने पर उसने आपका स्तव किया है । हे गुणातीत ! हे निर्विशेष ! हे बुद्ध्यादिक इन्द्रिय समूह के प्रकाशक ! आप महान् प्रलयकारी तथा प्रलयकारी काल के भी सृष्टिकर्त्ता हैं ॥ ५३ ॥

आप निजचरणाश्रित भृत्या के मृत्युहारी तथा मासमय प्राकृत

पितृप्राग्जन्मकथक स्वदत्तवरयन्त्रित ।
महाराधनसन्तोष त्रिजन्मात्मजतागत ॥ ५५ ॥
महानन्दप्रसूतात लीलामानुषबालक ।
नराकृति परब्रह्मन् प्रकृष्टाकार सुन्दर ॥ ५६ ॥
जनकोपायनिर्दिष्ट यशोदाजातमाय हे ।
शायितद्वाःस्थपौरादे मोहितागाररक्षक ॥ ५७ ॥

चक्षुः से अदृश्य हैं। "प्रलयावसान में निजदेह में समग्र विश्व ब्रह्माण्ड के समावेशकारी आप मेरे उदर जात हैं"—इस लोकापवाद से भयभीता देवकी के द्वारा प्रार्थित होकर आपने शंख-चक्रादि अलौकिक रूप का उपसंहार किया। आपको नमस्कार है ॥ ५४ ॥

(चतुर्दश नमस्कार)

आपने माता पिता देवकी वसुदेव को पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाया तथा निजदत्तवर में वशीभूत रहे। वर्षा, वायु, धूप इत्यादि महान्‌कष्ट के सहन रूप आराधना में प्रसन्न होकर उनके तीन जन्म में पृश्निगर्भ-वामन-तथा वासुदेव रूप से पुत्रत्व को अंगीकार किया ॥ ५५ ॥

पिता माता को पूर्व जन्मों का स्मरण कराकर महान् आनन्दित उनके सम्मुख फिर लीला मनुष्य बालक रूप में अवस्थान हुए। इससे आप सर्वदा प्राकृत बालक सदृश नहीं हैं क्योंकि आप नराकृति होनेपर भी परब्रह्म हैं। आपका सर्व मनोहर आकार है। आप अभिनव रूप लावण्य के निधान हैं ॥ ५६ ॥

"यदि तुम कंस से भय करते हो तो मुझको गोकुल में ले चलो"—इस प्रकार पिता वसुदेव को गोकुल ले जाने का निर्देश किया है। आपने यशोदा गर्भ में निजांश माया को प्रादुर्भूत कराया है। उस समय स्वच्छन्दगमन के लिये द्वारपालों को तथा पुरवा-

स्वशक्त्युद्घाटिताशेषकपाट पितृवाहक ।
शेषोरगफणाछत्र यमुनादत्तसत्पथ ॥ ५८ ॥
व्रजमूर्तमहाभाग्य यशोदातल्पशायित ।
निद्रामोहितनन्दादि यशोदाऽविदितेहित ॥५९॥ नमः १५ ॥

❀ इति दशमस्कन्धे तृतीयोऽध्याय ❀

कंसघातितदुर्गे त्वा वन्दे दुर्गोदितोद्भवम् ।
कंसविस्मापक तात-मातृबन्धविमोचकम् ॥ ६० ॥
सभयस्मृतिसशुद्धचित्तकंस-विवेकदम् ।
कंसात्मज्ञानसंश्लाघि-पितृमातृक्षमाप्रदम् ॥ ६१ ॥

सियों को निद्राभिभूत कराकर सूतिकागृह के रक्षकों को भी मोहित किया है ॥ ५७ ॥

अपनी शक्ति के प्राकट्य के द्वारा कपाट-समूह का उन्मोचन किया । पिता को वाहक बनाकर गोकुल के लिये यात्रा की, उस समय अनन्तदेव के फणसमूह ने छत्र होकर वर्षा का निवारण किया है । अगाधजलमयी-भयंकर आवर्तन से युक्त श्रीयमुना ने आपके पिता को गमनोपयोगी मार्ग का प्रदान किया ॥ ५८ ॥

हे व्रज के मूर्तिमान् महान् भाग्यस्वरूप ! आप वसुदेव के द्वारा यशोदा की शय्या में शयन करने लगे । निद्रा के द्वारा आपने नन्दादि गोकुलवासियों को मोहित किया । उस समय यशोदा जी वसुदेव के द्वारा तुम्हारे आनयन कार्य का चिन्ह कुछ नहीं समझ सकीं । हे कृष्ण ! आप को नमस्कार है ॥ ५९ ॥ (पञ्चदश नमस्कार)

आपके सम्बन्ध से कंस के द्वारा दुर्गा को मारने के लिये पत्थर के ऊपर आघात करने पर दुर्गा ने उसके हाथ से उत्पतित होकर आप के आविर्भाव की कथा कही थी । "पूर्वश्रुत आकाशवाणी किस प्रकार मिथ्या हुई"—इस भावना से आपने कंस को विस्मित किया तथा वसुदेव-देवकी के बन्धन विमोचन का कारण हुए ॥ ६० ॥

दुर्मन्त्रिगण-वाग्जालकंसदुर्मानवर्द्ध नम ।
सदतिक्रमदुर्मन्त्र-चयितासुरजीवितम् ॥ ६२ ॥ नम १६ ॥

ॐ इतिदशमस्कन्धे चतुर्थोऽध्याय ॐ

प्रदत्तपूर्वसंपदा जसौहृद-प्रदान-दीक्षोचितदेशसङ्गत ।
स्वसेवक-ब्रह्मसुखाविकोत्सव प्रेमाकर क्रीडनकृन्नमोऽस्तु ते ॥६३॥

नन्दनन्दन सञ्जात-जातकर्ममहोत्सव ।
नानादानौघकृत्तात श्रीमद्गोकुलमङ्गल ॥ ६४ ॥
कृतालङ्कारगोपाल-गोपीगणकृतोत्सव ।
गोपीप्रेममुदाशीर्भाक् व्रजगोरसकीर्ण हे ॥ ६५ ॥

भय के साथ अपने शिशुहत्या रूप अकर्म्म का स्मरण करा कर कंस के चित्त में विवेक का उत्पादन किया। आपने पिता माता के द्वारा कंस के आत्मज्ञान की प्रशंसा कराकर क्षमादान कराया ॥६१॥

दुष्ट मन्त्रिगण के वाक्यजाल से फिर कंस की दुर्म्मति की आप ने वृद्धि की जिससे महत् अतिक्रमणात्मक असत् परामर्श के फल-रूप असुरों का आयु क्षय होने लगा। हे तथाविध कृष्ण! आपकी वन्दना करता हूँ ॥ ६२ ॥ (षोडश नमस्कार)

अब गोकुललीला का वर्णन करते हैं। पहले वसुदेव के द्वारा वाहित होकर जहाँ निजपादपद्म का प्रदान किया तथा जहाँ अवधि-रूप सुखदान करने के लिये स्वय दीक्षित हैं अर्थात् सुख दान रूप व्रत का ग्रहण किया है, उस लीला के उपयोगी गोकुल में सम्यक्रूप से आपका अवस्थान है। हे निजसेवक समाज को ब्रह्मानन्द से अत्यन्त उत्सवदायी प्रेम धन का सम्यक् दान कारी, हे लीलाविनोदी! आपको नमस्कार है ॥ ६३ ॥

हे नन्दनन्दन! आपके जन्म के समय जात कर्म्मादिरूप महान् उत्सव हुआ है। आपके पिता नन्द ने आपके उत्सर्ग में अनेक वस्तुओं का दान किया है। आप गोकुल के मङ्गलरूप हैं ॥ ६४ ॥

नन्दव्रजजनानन्दिन् नन्दसन्मानितव्रज ।
दत्तव्रजमहाभूते श्रीयशोदास्तनन्धय ॥ ६६ ॥
प्राप्तपुत्र–महारत्न–रक्षा-व्याकुलतात हे ।
करदानार्थमथुरागतनन्दगृहावित ॥ ६७ ॥
वसुदेव-शुभप्रश्न–समानन्दितनन्द मे ।
प्रसीद नन्दसद्वाक्यवसुदेवातिनन्दक ॥ ६८ ॥ नमः १७ ॥

॥ इति दशमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥

वसुदेवोदितोत्पात-शङ्कानन्दशुभाश्रित ।
व्रजमोहन–सङ्कल्प–विपस्तन-चकीक्षित ॥ ६९ ॥

उस समय गोप गोपीगण विविध अलङ्कारों से भूषित होकर महान् उत्सव करने लगे। गोपियाँ प्रेम के अतिशय से आनन्द के साथ विविध आशिर्वाद दे रही थीं। हे व्रजगोरस से परिव्याप्त ! ॥६५॥

हे नन्दव्रजजन के आनन्ददायिन् ! आपने नन्द के द्वारा व्रज का गौरव बढ़ाया तथा व्रज में महावैभव का विकास किया। आप ने यशोदा का स्तन-पान किया है ॥ ६६ ॥

आपके पिता नन्द पुत्ररूप महारत्न आपको प्राप्त होकर रक्षा के लिये निरन्तर व्याकुल हुए। कंस को वार्षिककर देने के लिये मथुरा गमनकारी व्रजराज के भवन में आप स्वयं रक्षित हुए हैं ॥ ६७ ॥

मथुरा में मङ्गलमय शुभ प्रश्नों के द्वारा वसुदेव ने आपके पिता नन्द का आनन्द-विधान किया है। नन्द जी भी सद्वाक्यों के द्वारा वसुदेव के आनन्द प्रदानकारी हुए। हे श्रीकृष्ण ! आप प्रसन्न हों। ॥ ६८ ॥ (सप्तदश नमस्कार)

"गोकुल में उत्पात की आशङ्का है अतः यहाँ अधिक दिवस रहना उचित नहीं है"–इस प्रकार वसुदेव से सूचित होकर नन्दमहाराज ने व्रज में तुम्हारे मङ्गल के लिये प्रार्थना की थी। हे मनोज्ञ

लज्जामीलितनेत्राब्ज पूतनाङ्काधिरोपित ।
चक्रीप्राणपयःपायिन् पूतनास्तन-पीडन ॥ ७० ॥
पूतनाक्रोशजनक पूतनोप्राणशोषण ।
षट्क्रोशीव्यापिभीदायि-पूतनादेहपातन ॥ ७१ ॥
नानारक्षाविधानज्ञ-गोपस्त्रीकृतरक्षण ।
विन्यस्तरक्षागोधूले गोमूत्रशकृदाप्लुत ॥ ७२ ॥
गोपिकाविहिताजादि-बीजन्यासाभिमन्त्रित ।
दह्यमानबकीदेह-सौरभ्यव्यापितक्षिते ॥ ७३ ॥
पूतनामोचन द्वेष्ट्राक्षसीसद्गतिप्रद ।
नन्दाघ्रात-शिरोमध्य जय विस्मापितव्रज ॥ ७४ ॥नमः १८॥

❀ इतिदशमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ❀

हास्य-कटाक्ष-विक्षेपादि के द्वारा व्रजवासियों के मनोमोहन ! विपस्त-नविशिष्ट सद्वेषा पूतना के द्वारा आप दृष्ट हुए हैं ॥ ६६ ॥

आपने उस समय कुछ लज्जा से नयनपद्म का निमीलन कर पूतना के क्रोड़देश में आरोहण किया है और प्राण के साथ उसका स्तनपानकर करयुगल से उसके स्तनयुगल का गाढ़निपीडन किया॥७०॥

उस समय पूतना ने "छोड़ दो छोड़ दो" इस प्रकार चीत्कार किया था। परन्तु आपने उसका प्राणशोषण किया। और वह छः कोस तक विस्तृत भयानक शरीर धारण कर गिर गयी ॥ ७१ ॥

तत्पश्चात् गोपीगण ने गोपुच्छ भ्रमणादि के द्वारा नाना प्रकार रक्षाबन्धन किया था। गोरजः के द्वारा रक्षाबन्धन होने के पश्चात् गोमूत्र गोमयादि के द्वारा आपका शरीर व्याप्त किया गया ॥ ७२ ॥

गोपिकाओं ने बीजन्यासादिक मन्त्र उच्चारण कर विविध प्रकार से रक्षाबन्धन किया। चक्री पूतना का शरीर दग्ध होने पर उस समय उसके सौरभ से पृथिवी सुगन्धित हो गयी ॥ ७३ ॥

औत्थानिकोत्सवाम्बाभिषिक्त सञ्जातनिद्रदृक् ।
महोच्चशकटाव स्थबालपर्य्यङ्कशायित ॥ ७५ ॥
अञ्जनस्निग्धनयन पर्य्यायाङ्कुरित-स्मित ।
लीलाचलतरालोक मुखापितपदाङ्गुले ॥ ७६ ॥
जयोत्सव-क्रियासक्त-धात्रीस्तन्यार्थरोदन ।
उत्क्षिप्तचरणाम्भोज हेऽनो-विपरिवर्त्तक ॥ ७७ ॥
व्रजानिर्णेयचरित शकटासुरभञ्जन ।
द्विजोदित-स्वस्त्ययन मन्त्रपूत-जलाप्लुत ॥ ७८ ॥नम. १६॥
यशोदोत्सङ्गपर्य्यङ्क लीलानिष्कृतगौरवम् ।
मातृविस्मयकर्त्तार तृणावर्त्तापनाहितम् ॥ ७६ ॥

हे पूतना मोचनकारी ! हे जिघांसु राक्षसी के सद्गतिदायक ! नन्दमहाराज ने आपके मस्तक का आघ्राण किया है। आपने इस प्रकार की लीलाओं से समग्र व्रजमण्डल को विस्मय अत्यन्त किया। आपकी जय हो ॥ ७४ ॥ (अष्टादश नमस्कार)

हे औत्थानिक उत्सव में माता के द्वारा अभिषिक्त ! हे निद्रानिमीलित नयनारविन्द ! हे महान् शकट के अधोभाग में बालपर्य्यंक के ऊपर शयनप्राप्त ! हे अञ्जन के द्वारा स्निग्ध नेत्रवाले ! हे लीला-परिपाटी के द्वारा मन्दस्मितकारी ! हे लीला के वश चञ्चल अवलोकन वाले ! हे मुखारविन्द में चरणारविन्द की अगुलियों के अर्पण कारी ! उत्सवक्रिया में आसक्तकारिणी माता के स्तन पानार्थ रोदन करने वाले ! हे चरणों को उत्क्षिप्त अर्थात् बार बार ऊपर उठाकर शकट के छिन्न-भिन्नकारी ! हे व्रजवासियों के द्वारा अनिर्णीय चरित वाले ! हे शकटासुरभञ्जन ! हे ब्राह्मणगण के द्वारा स्वस्त्ययन के सहित मन्त्रपूत जल से परिव्याप्त ! आपकी जय हो ॥ ७५–७८ ॥

(ऊनविंश नमस्कार)

जननी-मार्गितगतिं तृणावर्त्तोतिदुर्वहम् ।
गलग्रहणनिश्चेष्ट-तृणावर्त्तनिपातनम् ॥ ८० ॥
तृणीकृततृणावर्त्तं रुदद्गोपाङ्गनेक्षितम् ।
गोपीधात्र्यर्पितं वन्दे त्वा व्रजानन्ददायकम् ॥ ८१ ॥नमः २०॥
यशोदास्तन्यमुदित यशोदामुखवीक्षक ।
यशोदानन्दनाहं ते यशोदालालिताऽव माम् ॥ ८२ ॥
जननीचुम्ब्यमानास्य-मध्यदर्शितविश्व मे ।
प्रसीद परमाश्चर्य्यदर्शिन् विस्मृतमातृक ॥ ८३ ॥
पूतनादिवधालोकि-मातृशङ्काशतप्रद ।
स्वभावविविधाश्चर्य्यमयमा तन्निरासक ॥ ८४ ॥
❀ इति दशमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ❀

यशोदा के क्रोडरूप पर्य्यंक में सुलालित, लीला से गौरव के आविष्कारी, माता के विस्मयकारक, तृणावर्त्त के द्वारा आकाश में अपवाहित, जननी के द्वारा अन्वेषण प्राप्त, तृणावर्त्त के दुर्वह, गलदेश धारण में प्रयत्नवान् तृणावर्त्त के निपातनकारी, तृणावर्त्त को छिन्न-भिन्न करने वाले, रोदनकारिणी गोपांगनाओं के द्वारा दर्शित, गोपियों के द्वारा माता के लिये अर्पित, व्रज के आनन्द दाता, आपकी वन्दना करता हूँ ॥ ७६-८१ ॥ (विंशति नमस्कार)

हे यशोदा के स्तनपान से प्रसन्नता प्राप्त ! हे यशोदा के द्वारा दर्शितमुख ! हे यशोदानन्दन ! हे यशोदा के द्वारा लालित ! मेरी रक्षा कीजिये । आपकी माता ने आपका मुख चुम्बन किया, उस समय आपने अपने मुख में विश्व का दर्शन कराया । हे परमैश्चर्य्य को दिखाने वाले ! हे मातृविस्मृतिकारी ! पूतनादि के वध के हेतु माता के हृदय में शत शत शङ्का के उत्पादन करने वाले ! आश्चर्यमय स्वभाव के द्वारा उन सब शङ्काओं के निराकरणकारी ! मुझ पर प्रसन्न हों ॥ ८२-८४ ॥ (एकविंश नमस्कार)

गर्गवाकचातुरीहृष्ट–नन्दनीतरह स्थलम् ।
प्रशस्तनामकरण गर्गसूचितवैभवम् ॥ ८५ ॥
साधुरक्षाकर दुष्टमारक भक्तवत्सलम् ।
महानारायण वन्दे महानन्दविवर्द्धनम् ॥ ८६ ॥नम. २२॥
जय रिङ्गणलीलाढ्य जानुचंक्रमणोत्सुक ।
घृष्टजानुकरद्वन्द्व मौग्ध्यलीलामनोहर ॥ ८७ ॥
किङ्किणी–नादसंहृष्ट ध्वनत्कर्दमविभ्रम ।
व्यालम्बिचूलिकारत्न ग्रीवा व्याघ्रनखोज्ज्वल ॥ ८८ ॥
पङ्कानुलेपरुचिर मासलोरुकटीतट ।
स्वमुखप्रतिबिम्बार्थिन् प्रतिबिम्बानुकारक ॥ ८९ ॥
अ यक्तवल्गुवाग्वृत्ते स्मितलक्ष्यरदोद्गम ।
धात्रीकर–समालम्बिन् प्रस्खलच्चित्रचक्रम ॥ ९० ॥नम २३॥

गर्ग जी के वचन चातुरी से हृष्ट नन्द के द्वारा रहः स्थान म नीत, कृष्ण वासुदेव इत्यादि नामकरणों से युक्त, गर्ग के द्वारा सूचितवैभवशाली, साधुरक्षाकारी, दुष्ट नाशक, भक्तवत्सल,महानारायण, नन्द के आनन्द बढाने वाले श्रीकृष्ण आपकी वन्दना करता हूँ ॥ ॥ ८५–८६ ॥ (द्वाविंश नमस्कार)

हे रिंगणलीला से युक्त ! अर्थात् हस्तपादों से चलनरूप विनोद से पूर्ण !, हे जानुचक्रमण म व्यग्र !, हे जानु हस्तों को धरती म घिस कर चलने वाले !, हे मोहनकारिणी लीलाओं से मनोहर !,हे किकिणी नादों से सप्रसन्न !, हे ध्वनत्कर्दम विलासकारी ! हे लम्बमान चूडारत्नधारी तथा गले म व्याघ्रनख से उज्ज्वल !, हे श्री अ ग म पङ्कलेपन से रुचिर !, हे स्थूल उदर–कटि वाले !, हे निज मुख प्रतिबिम्ब दर्शन म इच्छुक ! हे प्रतिबिम्ब के अनुकरणकारी !,हे अव्यक्त मनोहर भाषण वाले !, आप जब मन्द मन्द हँसते थे तब आ

जयाङ्गनागणप्रेक्ष बाल्यलीलानुकारक ।
आनिष्कृताल्पसामर्थ्य पादविक्षेपसुन्दर ॥ ६१ ॥
वत्सपुच्छसमाकृष्ट वत्सपुच्छविकर्षण ।
विस्मारितान्यव्यापार-गोपगोपीप्रमोदन ॥ ६२ ॥
गृहकृत्यसमासक्त-मातृनैय्यग्यकारक ।
ब्रह्मादिकाम्यलालित्य जगदाश्चर्यशैशव ॥ ६३ ॥नम. २४॥
प्रसीद बालगोपाल गोपीगणमुदावह ।
अनुरूपवयस्याद्य चारुकौमारचापल ॥ ६४ ॥
अकालवत्स-निर्मोक्तर्व्रजव्याक्रोशसुस्मित ।
नवनीतमहाचोर वानराहारदायक ॥ ६५ ॥

पके श्रीमुख में किञ्चित् दाँतों का उद्गम होना दीख जाता था। हे धातृ के कर धारण कर चलने वाले ! हे गिरते हुए मनोहर चलने वाले ! आपकी जय हो ॥ ८७-६० ॥ (त्रयोविंश नमस्कार)

हे अंगनागण के द्वारा दृष्ट ! हे बाल्यलीला अनुकरणकारी ! हे अल्प सामर्थ्य आविष्कृतकारक ! हे चरण न्यास में सुन्दर ! हे गोवत्सगण के पुच्छ खींचने वाले ! हे उनके पुच्छ धारणकारी ! हे अन्य सकल क्रिया-कलाप के विस्मारक ! हे गोप-गोपी प्रमोदकारी ! हे गृहकार्य में आसक्त माता के व्यग्रकारक ! हे ब्रह्मादि देवता के वाञ्छनीय, लालित्य जगदाश्चर्य शैशव वाले ! आपकी जय हो ॥ ॥ ६१-६३ ॥ (चतुर्विंश नमस्कार)

हे बालगोपाल ! हे गोपियों के आनन्दवाहक ! हे निजानुरूप शिशु वयस्यों से युक्त ! हे मनोहर कौमार अवस्था से चपल ! हे बिना कारण असमय वत्सगण के मोचनकारी, हे व्रजवासियों के आक्रोश से सुस्मित ! हे नवनीत के महान्चौर ! हे बन्दरों को आहार फेंकने वाले !, हे हाथ से अप्राप्य शिक्याभाण्डों में पीठ व उखल से आ-

पीठोलसत्तसोपान क्षीरभाण्ड-विभेदक ।
शिक्यभाण्डसमाकर्षिन् ध्वान्तागारप्रवेशकृत् ॥ ९६ ॥
स्वाङ्गरत्नप्रदीपाढ्य गोपीधाष्ट्यातिवादक ।
गोपीनातोक्तिभीभ्राम्यन्नेत्र मातृ-प्रहर्षण ॥ ९७ ॥ नमः २५॥
भक्तोपालम्भनानन्द वाञ्छाभक्षितमृत्तिक ।
रामादिप्रोक्तमृद्वार्त्ता हितैष्यम्बातिभर्त्सित ॥ ९८ ॥
कृतकत्रासलोलाक्ष मित्रान्तर्गूढविग्रह ।
बलादिवचनाक्षेप्तर्जननी-प्रत्ययावह ॥ ९९ ॥
व्यात्तस्वल्पाननाब्जान्त र्मातृदर्शितविश्व हे ।
यशोदानिर्जितैश्वर्य जय स्वान्द्धन्दयमोहन ॥ १०० ॥

रोहणकारो !, हे दुग्धभाण्ड को फोडने वाले !, हे शिक्यभाण्ड को खींचने वाले !, हे अन्धकार गृह में प्रवेशकारी !, हे निजाग रत्न रूप प्रदीप से युक्त !, हे गोपियों के द्वारा निज धृष्टता वर्णन करने पर तुम सब ही चोर हो, मैं तो बड़े घर का लाला हूँ" इस प्रकार प्रतिवाद करने वाले !, गोपियों की निन्दा के भय से तथा माता के क्रोध होने के भय से नेत्र फिराकर माता को हँसाने वाले !, आप प्रसन्न हों ॥ ९४-९७ ॥ (पञ्चविंश नमस्कार)

हे निज भक्तों के प्रेम गर्भ तिरस्कार से आनन्दित ! हे मृत्तिका भक्षण में इच्छा रखने वाले ! आप के मृत्तिका भक्षण का वृत्तान्त बलरामादिक ने माता से कहा था। उस समय हितैषी माता ने आप को भर्त्सना किया। हे कृत्रिमरूप भयानुकरण से चञ्चल नेत्र वाले ! हे मित्र बालकों के मध्य में गुप्त बिहारी ! हे रामादि के आक्षेप वचन के प्रतिवादी ! रामादिक मिथ्या कहने वाले हैं, मैं सच्चा हूँ-इस प्रकार के वचनों से जननी को विश्वास दिलाने वाले ! हे मुख कमल का स्वल्प व्यादन कर उस में माता के लिये विश्व दिखाने वाले !

सवित्रीस्नेहसंश्लिष्ट यशोदा-स्नेहवर्द्धन ।
स्वभक्तब्रह्मसन्दत्तधराद्रोणवरार्थकृत् ॥ १०१ ॥नमः २६॥

* इतिदशमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः *

दधिनिर्मन्थनारम्भि-सवित्रीस्तन्यलोलुप ।
जननीगीतचरित दधिमन्थनदण्डधृक् ॥ १०२ ॥
मातृस्तन्यामृतातृप्त चुल्लीस्थारगतान्विक ।
मृषाकोप-प्रकम्पोष्ठ दधिभाजनभञ्जन ॥ १०३ ॥
शिक्यहैयङ्गचस्तेन नवनीतमहाशन ।
हैयङ्गवीनरसिक नवनीतावकीर्णक ॥ १०४ ॥
नवनीतविलिप्तांग किङ्किणीक्वणसूचित ।
नवनीतमहादातर्मृषाश्रो चौर्य्यशङ्कित ॥ १०५ ॥

हे यशोदा को अपने ऐश्वर्य्य अनुभव कराने वाले ! हे स्वेच्छाचरण से मोहन ! हे माता के स्नेह से व्याप्त ! हे यशोदा के स्नेह को बढ़ाने वाले, हे निज भक्त ब्रह्मा के द्वारा दिये हुए, धरा-द्रोण के लिये जो वर है, उसकी पूर्त्ति के लिये व्यग्र ! आप की जय हो ॥६८-१०१॥
(षड्विंशनमस्कार)

हे दधि निर्म्मन्थन में नियुक्त जननी के स्तनपान में लुब्ध !, जननी ने तुम्हारी चरितावली का गान किया, तुमने बाल्यचापल से मन्थनदण्ड को धारण किया था । ॥ १०२ ॥

• माता के द्वारा स्तन्य प्रदान करने पर भी आप तृप्त नहीं हुए। माता चुल्ली के उपरिस्थित दुग्ध के उछलने को देखकर उसके उत्तारण के लिये गयीं । उस समय मिथ्या क्रोध से तुम्हारा ओष्ठ कम्पायमान हुआ और तुमने दधिपात्र को तोड़ दिया ॥ १०३ ॥

हे शिक्य में स्थित सद्योत्पन्न नवनीत के चोर ! हे नवनीत भक्षण में अतिशय लोलुप ! आप नवनीत के रसिक हैं । आपने चारों ओर नवनीत का विकीरण किया है ॥ १०४ ॥

मातृभीधावनपर गोष्ठाङ्गनविनोदन ।
जननीश्रमविज्ञातदामोदर नमोऽस्तु ते ॥ १०६ ॥
दामाकल्पचलापाङ्ग गाढोलूखल-बन्धन ।
यशोदा-वत्सलानन्तदामबन्धनियन्त्रित ॥ १०७ ॥नमः २७॥

*** इतिदशमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ***

दृष्टार्जुनतरुद्वन्द्व कुबेरसुतशापभित् ।
अपराधिसमुद्धारदयानारदगीतवित् ॥ १०८ ॥

तुम्हारे किंकिणीशब्द से माता ने तुमको जान लिया कि तुम कहाँ थे । उस समय तुमने नवनीत का सर्वांग में लेपन किया था । हे वन्दरों को भी नवनीत वितरण करने वाले ! उस समय तुमने माता के भय से कपट-अश्रु का त्याग किया तथा चोरी के भय से शङ्कित हुए ॥ १०५ ॥

माता के भय से तुमने पलायन किया तथा गोष्ठांगन में इधर-उधर भागने लगे । बार बार तुमको रज्जु के द्वारा बाँधने के लिये यत्नवती माता के परिश्रम को जानकर दामबन्धन को अंगीकार किया तथा दामोदर नाम से ख्यात हुए । हे एतादृश तुमको नमस्कार॥१०६॥

उस समय दाम ही तुम्हारा भूषण बना था । तुम्हारे दोनों नेत्र-प्रान्त चञ्चल हो गये और तुम उखल में बँध गये । हे यशोदानन्दन ! तुमने यशोदा जी को वात्सल्यरस का दान अर्थात् आस्वादन कराया । आप अनन्त होकर भी आज दामबन्धन में नियन्त्रित हुए । आपको नमस्कार है ॥ १०७ ॥ (सप्तविंश नमस्कार)

आपने दोनों अर्जुनवृक्ष को देखा तथा उनका शापमोचन किया । वे दोनों पूर्वजन्म में नलकुवर और मणिग्रीव नामक कुबेर जी के पुत्र थे । उनसे श्रीमन्नारद जी का अपराध हो गया था । उस समय दया परवश नारदजी के द्वारा उनके उद्धारार्थ जो वचन दिया गया था उसको आप जानते थे ॥ १०८ ॥

अकिञ्चनजनप्राप्य श्रीमदान्ध्याद्यगोचर ।
आकृष्टोलूखलालान जय श्रीनारदप्रिय ॥ १०६ ॥
कृतदेवर्षिगीतार्थ-यमलार्जुनभञ्जन ।
धनदात्मज-सत्स्तोत्र-स्तुत सर्वेश्वरेश्वर ॥ ११० ॥
जीव-दुर्ज्ञेयमहिमन् सदा भक्तैकचित्तभाक् ।
असाधारणलीलोद्य विश्वमङ्गलमङ्गल ॥ १११ ॥
स्वदासदासताप्रीत भक्तभक्तातिवत्सल ।
गुह्यकार्थित-सर्वाङ्ग-हृषीक-भजनामृत ॥ ११२ ॥
शिवामित्र-सूक्तस्तोत्र सन्तोषामृतवर्षिवाक् ।
स्वभक्तरीताभाहात्म्यनादिन् प्रेमवरप्रद ॥ ११३ ॥नम ७८॥

❀ इतिदशमस्कन्धे दशमोऽध्याय ❀

आप निष्किञ्चनों के प्राप्य और धनादि मदगर्वितजनों के अगोचर हैं। आपकी जय हो ॥ १०६ ॥

देवर्षि जी की वाक्यरक्षा के लिये आपने यमलार्जुन का निपात किया। उस समय उन दोनों कुवेरपुत्र ने अत्युत्तम स्तवके द्वारा आपकी इस प्रकार स्तुति की थी—हे सर्वेश्वर! ॥ ११० ॥

जीवगण आपकी महिमा को नहीं जानते है। आप सर्वदा भक्तों का चित्तविनोद करते रहते हैं। असाधारण अर्थात् असमोर्द्ध्व लीलावलि के द्वारा आप युक्त हैं। अज्ञजन उसके आशय को न जान कर नाना प्रकार के कुतर्क वितर्क किया करते हैं। आप समस्तमङ्गल के निदान हैं ॥ १११ ॥

निज दास्यगण के दास्य से आप अधिक प्रीति लाभ करते हैं और भक्त के भक्तों के लिये अतिवत्सल हैं। गुह्यक दोनों ने आपके निकट सर्वांग व सर्वेन्द्रिय के द्वारा भजन करने की प्रार्थना की॥११२॥

उनके स्तोत्र से प्रसन्न होकर आपने सन्तोषामृत वर्षिणी वाणी का उच्चारण किया तथा निज भक्तदर्शन की महिमा का वर्णन कर

गोपविस्मापनक्रीड बालसत्कथितेहित ।
सम्भ्रान्त-नन्दसदृष्ट स्मितभिन्नौष्टसंपुट ॥ ११४ ॥
पतितार्जुनमध्यस्थ महोलूखल-कर्षक ।
गोपाशालि-लसन्मध्य नन्दमोचित-बन्धन ॥ ११५ ॥
स्वभक्तवश्यतादर्शिन् वल्लवीस्तोभ-नर्तित ।
बालकोद्गीति-निरत बाहुक्षेपमनोरम ॥ ११६ ॥
गोप्याज्ञाधृतपीठादे नवनीतार्थनापटो ।
व्रजमोहरक्रीडासुधासिन्धो नमोऽस्तु ते ॥ ११७ ॥नम० ८६॥
उपनन्दाहितप्रीते वृन्दावनरसोत्सुक ।
प्रस्थानशकटारूढ गोपिकागीतचेष्टित ॥ ११८ ॥

उनको प्रेम कर का ही प्रदान किया । आपको नमस्कार है ॥ ११३ ॥
(अष्टाविंश नमस्कार)

हे गोपगण की विस्मयकारिणी क्रीडा करने वाले !, बालकों ने भ्रजवासियों से उस समय आपकी चेष्टा का वर्णन किया है। व्रज राज ने भय-आदर से आपको देखा। आपका ओष्ठ स्मित से विक-सित हो रहा था। आप अर्जुनयुगल के बीच में पड़े हुए थे तथा महान् उलूखल के कर्षणकारी थे। उस समय गो रज्जु से आपका मध्यदेश शोभायमान था। नन्द महाराज ने उसका मोचन किया। आप निज भक्तवश्यता स्वभाव को दिखाने वाले हैं। आपने गोपि-यों से करतालि प्रभृति के द्वारा प्रोत्साहित होकर नृत्य किया है। बा-लकों की भाँति आप उच्चस्वर से बोलने में निरन्तर चेष्टा करते हैं। बाहुक्षेप में आप परम मनोहर हैं। गोपियों के सङ्केत से असमर्थ होने पर भी पीठादिधारण में चेष्टा रखते थे। आप नवनीत माँगने में बड़े चतुर हैं। हे व्रजमोहकारी क्रीडा के सुधासागर ! आपको नमस्कार है ॥ ११४-११७ ॥
(उनत्रिंश नमस्कार)

हे उपनन्द जी के प्रेम परायण ! हे वृन्दावन-रसास्वादन में उ-

हृद्यवृन्दावनावास श्रीवृन्दावनचन्द्र हे।
वृन्दावनप्रिय श्रीमद्वृन्दावनविभूषण ॥ ११६ ॥
व्याघ्रादिहिंस्र-सहजवैरहर्त्त प्रसीद मे।
श्रीगोवर्द्धन-कालिन्दी-पुलिनालोकहर्षित ॥१२०॥नमः ३०॥
व्रजानन्दाकरक्रीड मनोज्ञकलभाषण।
वत्सपालनसञ्चारिन् व्रजादूर-चराचर ॥ १२१ ॥
रामादिबालकाराम नानाक्रीडापरिच्छद।
वंशीवादन-संसक्त वेणुचित्रस्वनाकर ॥ १२२ ॥
मुरलीवदन श्रीमत्त्रिभङ्गीमधुराकृते।
क्षेपणीक्षेपणप्रीत च कन्दुकक्रीडनोत्सुक ॥ १२३ ॥
वृषवत्सानुकरण वृषध्वानविडम्बन।
जयान्योन्यरणप्रीत सर्वजन्तुरुतानुकृत् ॥ १२४ ॥ नम ३१ ॥

त्कण्ठित ! हे उपनन्द जी की मन्त्रणानुसार वृन्दावन गमनार्थ प्रस्तुत शकट में आरोहणकारी ! गोपियों ने आपकी लीला का गान किया है। हे मनोहर वृन्दावन निवासी ! हे वृन्दावन के चन्द्रमा ! हे वृन्दावन के प्रिय ! हे श्रीमद् वृन्दावन के विभूषण !, हे व्याघ्रादि हिंस्र जन्तु के निज सौन्दर्य्य माधुर्य्य से स्वाभाविक वैर भाव के हरणकारी ! मेरे लिये प्रसन्न हों। आप श्री गोवर्द्धन यमुना पुलिन का अवलोकन कर परम हर्षित हुए॥ ११८-१२० ॥ (त्रिश नमस्कार)

हे व्रज आनन्ददायिनी-क्रीडा परायण ! हे मनोहर अव्यक्त बोलने वाले ! हे वत्स पालनार्थ इतस्तत विचरण कारी ! हे व्रज की निकट भूमि में विचरणशाली ! हे रामादि बालकों से मनोहर ! हे नाना प्रकार के क्रीड़ापरिच्छेदधारी ! हे वंशीवादनरत ! हे वेणु से मनोहर विचित्र शब्द करने वाले ! हे वंशीवदन ! हे त्रिभंगी-भंगी से मधुर ! हे बिल्व-आमादि फलों के क्षेपण में प्रीत ! हे कन्दुक-क्रीड़ा में उत्कण्ठित ! हे वृष वत्सों के अनुकरणकारी ! हे वृषध्वनी

जय वत्सासुरध्वंसिन् कपित्थव्रातपातन ।
बालप्रशंसासंहृष्ट पुष्पवर्ष्यमरार्चित ॥ १२५ ॥
गोवत्सपालनैकाग्र्य बालवृन्दाद्भुतावह ।
विकालागारगामिन् मां पाहि गोधूलिधूसर ॥ १२६ ॥
सुमनोऽलंकृतशिरो गुञ्जाप्रालम्बनावृत ।
पुष्पकुण्डलवह् स्रक् पत्रवाद्यविनोदक ॥ १२७ ॥
मनोज्ञपल्लवोत्तंस वनमालाविभूषित ।
घनधातुविचित्राङ्ग बर्हिबर्हावतंसक ॥ १२८ ॥ नमः ३२ ॥
प्रातर्भोजनसंयुक्त वत्सव्रात-पुरःसर ।
गिरिशृङ्गमहाकाय-बकासुरगतेक्षण ॥ १२९ ॥

को अनुकरण के द्वारा विडम्बना करने वाले ! हे सखाओं के साथ पारस्परिक रणक्रीड़ा में प्रसन्नता प्राप्त ! हे सकल जन्तुओं के रोदनानुकरणकारी ! आपकी जय हो ॥ १२१–१२४ ॥ (एकत्रिंशनमस्कार)

हे वत्सासुर ध्वंसी ! हे उसके प्रहार से कपित्थ वृक्षों को गिराने वाले ! उस समय बालकों ने साधु साधु इस प्रकार प्रशंसा की थी। देवताओं ने पुष्पों से आपकी अर्च्चना की। हे गोवत्सपालन में एकाग्रचित्त ! हे बालकगण के आश्चर्य्यकारी ! आप अपरान्ह के उपरान्त नित्य नन्दव्रज के लिये गमन करते हैं। आप गोधूलि में धूसरांग हैं। मेरी रक्षा कीजिये ॥ १२५–१२६ ॥

आपका मस्तक पुष्पों से अलंकृत है। गुञ्जा निर्म्मित लम्बायमान माला से आपका गलदेश आच्छादित है। हे पुष्पों से विरचित कुण्डलधारी ! हे मयूर-पिच्छ की माला से शोभित ! हे पत्रादि के द्वारा निर्म्मित वाद्यों के वादन में विनोदशील ! हे मनोहर पल्लवों से रचित शिरोभूषण के धारणकारी ! हे वनमाला से विभूषित ! हे घनधातुओं से विचित्र अंगवाले ! हे मस्तक में मयूर-पुच्छ धारिन् ! आप रक्षा कीजिये ॥ १२७–१२८ ॥　　[द्वात्रिंश नमस्कार]

तीक्ष्णतुण्डवकग्रस्त-मूर्च्छाविष्टसुहृद्गण ।
महावकमुखाक्रीड वकतालुप्रदाहक ॥ १३० ॥
जय दुष्टवकोद्गीर्ण वकचञ्चुविदारण ।
बलादि-बालसंश्लिष्ट पुष्पवर्षि-सुरेडित ॥१३१॥नमः ३३॥

❀ इति दशमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ❀

प्रातर्वन्याशनाकाङ्क्षिन् शृङ्गनादितवत्सप ।
असंख्यवत्ससञ्चारिन् अमत्स्यार्भकसङ्गत ॥ १३२ ॥
शिक्यचौर्यादिविविध-बालक्रीडातितोषित ।
स्वपादस्पर्शकक्रीडापटुबालप्रहर्षित ॥ १३३ ॥
वयस्याशान्यसहन-क्षणमात्राविलोकन ।
शुकगीतमहाभाग्य व्रजबालक चेष्टित ॥ १३४ ॥ नमः ३४ ॥

हे वनभोजनार्थ माता से प्रात.कालीन भोजन की इच्छा करने वाले ! हे वत्सगण के अग्रगामी ! हे पर्वत शृंगाकार महाकाय वकासुर को देखने वाले ! उस समय उसने आपको तीक्ष्णमुख से निगल लिया था। आपके सखागण मूर्च्छित हो गये। आपने महान् वकासुर के मुखको क्रीडागृह बना लिया। उसका तालु जलने लगा। आप फिर उसके मुखसे निकल आये तथा उसके मुखको फाड़ दिया। हे बलादि बालकों से आलिङ्गित ! आपकी जय हो। उस समय देवताओं ने पुष्पों के वर्षण के द्वारा आपकी स्तुति की थी ॥ १२६-१३१ ॥

[त्रयोत्रिंश नमस्कार]

अब वनभोजन लीला का प्रारम्भ करते हैं—हे प्रात· माता से वनभोजन के लिये अभिलाषी ! हे शृंगवाद्य के द्वारा सखाओं के आह्वानकारी ! हे असंख्य गोवत्स सञ्चारणशील ! हे असंख्य सखाओंके साथी ! हे शिक्यचौर्यादि विविध बालक्रीडामें प्रसन्नचित्त वाले ! हे निजचरणस्पर्शरूप क्रीडा में चतुर बालकों से हर्ष प्राप्त ! आप का अनवलोकन क्षणमात्र भी वयस्यगणों के लिये असहन

दुर्बुद्धिसुमपीनाहीतरयोग्रेक्षकानुग ।
दुश्चेष्टाघासुराभिज्ञ मुग्धार्भकरिरक्षिषो ॥ १३५ ॥
कृत्यचिन्ता-महालील सर्वस्यान्तःप्रवेशकृत् ।
अघदानवसंहर्त्तर्वत्सवत्सप-जीवन ॥ १३६ ॥
अमरानन्दविस्तारिन् निन्द्यदानवमुक्तिद ।
विस्मापितागतब्रह्मन्नाश्चर्य्याब्धे नमोऽस्तु ते ॥१३७॥नमः३५॥
❀ इतिदशमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ❀
पौगण्डाख्यातकौमार महाश्चर्य्यचरित हे ।
परीक्षिच्छुकदेवातिविमोहन कथामृत ॥ १३८ ॥

होता था। आप श्रीशुकदेव के द्वारा प्रगीत महान् भाग्यशील व्रज-बालकों से वेष्टित हैं ॥ १३०–१३४ ॥ (नमः ३४)

अब अघासुर-वध लीला का वर्णन करते हैं—आपकी सुखमयी क्रीडा दर्शन में अक्षम, आप को मारने के लिये इच्छुक, दुष्टबुद्धि से युक्त, शयनकारी, स्थूलकाय सर्प का दर्शन कर आपके सहचरों ने विचार किया था कि यह कोई वृन्दावन की गुहा विशेष होगी। किन्तु आप उस को विशेष रूप से जानते थे। फलतः उसके मुख-विवर में प्रवेश के लिये इच्छुक गोप बालकों की रक्षा के इच्छुक हुए। उस समय बालकों ने उसके मुख में प्रवेश किया। वह दुष्ट आपकी प्रतीक्षा में था। आपने करणीय विषय की चिन्ता कर उसके उदर में प्रवेश किया और अपने शरीर की वृद्धिरूप लीला का विस्तार कर अघासुर का विनाश किया। जिससे गोवत्स-सखागण जीवित हुए तथा देवगण ने आनन्द लाभ किया। आपने इस प्रकार के निन्दनीय दानव को मुक्ति दी। इन सब लीलाओं का दर्शन कर विस्मय प्राप्त ब्रह्मा आपके निकट आये। हे आश्चर्य्य के सागर! आपको नमस्कार है ॥ १३५–१३७ ॥ (नमः ३५)

अब ब्रह्मा के द्वारा गोवत्स-हरण लीला का वर्णन करते हैं—

स्तुतरम्यसरस्तीरादनवशाद्वल-जेमन ।
सरःसुपुलिनासीन बालमण्डलमण्डित ॥ १३९ ॥
सखिश्रेण्यन्तरस्थात त्र्यंजार्भक-सहाशन ।
पीतवस्त्रोदरन्यस्तवेणो वन्यविभूषण ॥ १४० ॥
वामकक्षान्तरन्यस्तशृङ्गवेत्र प्रसीद मे ।
वामपाणिस्थदध्यन्न कवलाशनसुन्दर ॥ १४१ ॥
अंगुलीसन्धिविन्यस्त-फल बालालिचित्तहृत् ।
स्वनर्महास्यमानार्भ स्वर्ग्याश्चर्यकराशन ॥ १४२ ॥नमः ३६॥
अदृश्यतर्णकान्वेषिन् वल्लभार्भकभीतिहन् ।
अदृष्टवत्सप-व्रात वत्सवत्सपमार्गग ॥ १४३ ॥

हे पौगण्ड अवस्था में कौमारलीला के आचरणकारी !, हे महान् आश्चर्य्य चरित्र वाले !, आप का कथामृत परीक्षित् तथा शुकदेव जी को भी विमोहनकारी है। स्तुतियोग्य, रमणीय,सरोवर के निकट नवीन तृणों से शोभायमान देश में सखाओं के साथ आपने भोजन लीला की। सरोवर के सुन्दर पुलिन में बालमण्डल से मण्डित हो कर विराजमान हुए। सखाओं के बीच में आपने रहकर उनके साथ वनभोजन किया। उदर के पीतवस्त्र मे वंशी को निहित किया। हे वन्यविभूषण ! वामकक्ष के मध्य में शृङ्ग-वेत्रधारी ! मेरे ऊपर प्रसन्न हों। उस समय वामहस्त मे दधि-अन्न मौजूद था। आप अन्न-ग्रास में शोभायमान थे। अंगुलियों के सन्धिस्थल में फल-समूह विन्यस्त था। आप बालकों के चित्त को हरण करते थे तथा नर्म्म परिहास से उनको हँसाते थे। वह भोजन देवताओं के चित्त मे चमत्कार था ॥ १३८–१४२ ॥ (नमः ३६)

हे अदृश्यमान, दूरप्रचारी,वत्सों को ढूँढने वाले ! हे गोपबालकों के भयहारी ! उस समय गोवत्स गोपबालकगण अदृश्य होगये थे, उन्हें आप ढूँढने लगे, और यह सब ब्रह्मा की कृति है—ऐसा

विदितब्रह्मचरित वत्सवत्सपरूपधृक् ।
वत्सपालहरब्रह्म–तन्मातृमुदिच्छक ॥ १४४ ॥
यथाब्रजार्भकाकार यथावत्सपचेष्टित ।
यथावत्सक्रियारूप यथास्थाननिवेशन ॥ १४५ ॥ नमः ३७ ॥
गोगोपीस्तन्यपाह्नन्त गोगोपीप्रीतिवर्द्धन ।
बलरामोहितोदन्त पितामहविमोहन ॥ १४६ ॥
शुद्धसत्त्वघन–स्वीयबहुरूप–प्रदर्शक ।
अत्याश्चर्य्यैश्वर्य्यशक्त–ब्रह्म–व्युत्थानकारक ॥ १४७ ॥
स्वान्तर्द्दृष्ट्यतिदीनाज–बहिर्द्दृष्टिसुखप्रद ।
गोपार्भवश रुचिर सपाणिकवलाव माम् ॥ १४८ ॥

जान लिया । आपने वत्स-गोपबालों का रूप का धारण किया क्योंकि वत्स-वत्सपालकहारी ब्रह्मा के अभिमान नाश के लिये तथा उन उन वत्स-वत्सपालकों की माताओं को आनन्द देने के लिये आपकी इच्छा हुई । ठीक जिस प्रकार के वत्स व वत्सपालक थे उनकी जैसी चेष्टा थी तथा जिस प्रकार क्रिया थी उसी प्रकार के आप हुए । ऐसी चेष्टा करने लगे तथा ऐसी क्रिया की थी कि वे सब जहाँ जैसे रहते थे ठीक वहाँ ही वैसे आप रहने लगे ॥ १४३–१४५ ॥ (नमः ३६)

हे गोप-गोपियों का स्तन्यप अर्थात् पुत्राभिमानी ! हे गो गोपियों के प्रेमवर्द्धक ! श्री बलराम के द्वारा इसका रहस्य ज्ञात हुआ था । आप ब्रह्मा के विमोहनकारी हुए । यह सब (गोवत्स तथा बालरूप) आपका ही विशुद्ध सत्त्वघनमय असंख्यरूप था । आपके उन सब अति आश्चर्यकर रसमय विशुद्ध सत्त्वघन स्वरूपों का दर्शन कर ब्रह्मा जी विह्वल हो गये । आपने उनका प्रबोधन किया । उस समय सर्वथा आपके दर्शन के हेतु वे अतिदीन हो गये । आपने उनको बाहिर दृष्टि से वृन्दावनादिकों का दर्शन करा कर सुख प्रदान किया । हे गोपबालकों के वशी ! हे सुन्दर ! हे हाथ में दधि-मस्त ग्रास से शो-

व्यालीनसृष्टवत्सार्भगण ब्रह्मत्रपाकर ।
ब्रह्मानन्दाश्रुधौताङ्घ्रे दृष्टतत्त्वविविस्तुत ॥१४६॥नमः ३८॥

॥ इति दशमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥

विधिवाक्यामृताब्धीन्दु गोपबालकवेश हे ।
ब्रह्मावतार-दिव्याङ्गाचिन्त्यमाहात्म्यरूपभृत् ॥ १५० ॥
मृषाज्ञानश्रमाराशि-भक्त्येकसुखनिर्जित ।
श्रेयःसारात्युदासीन-दुर्बुद्धिक्लेशशेषक ॥ १५१ ॥
पूर्वपूर्वविधिमुक्तौ याश्रितभक्तिसुमार्ग हे ।
नैर्गुण्याधिक-दुर्ज्ञेयाश्चर्यानन्तमहागुण ॥ १५२ ॥
केवलात्मकृपापांगवीक्षापेक्षकमोचक ।
निर्वेदितापरावातिभीत पुत्रार्थितक्षम ॥ १५३ ॥

भायमान ! मेरी रक्षा कीजिये । आपने उसी समय फिर वत्सबालकों को निज विग्रह में समावेश कर ब्रह्मा को लज्जित किया । ब्रह्मा ने भी आनन्दवारि सिञ्चन से आपके चरण युगल का प्रक्षालन किया तथा आपका तत्त्व-समूह को अवगत कर आपकी स्तुति करने लगे । ॥ १४६–१४६ ॥ (नमः ३८)

अब ब्रह्मस्तुति का वर्णन करते हैं—हे ब्रह्मा के वाक्यामृतसागर के चन्द्रमा ! हे गोपबालकवेशधारी ! हे ब्रह्मा के लिये अवतीर्ण दिव्यांग अचिन्त्यमहिमा वाले ! हे मिथ्या ज्ञान श्रम से रहित एकमात्र मुख्यभक्ति के द्वारा वशीभूत ! परम मङ्गल के अभ्युदयरूप अपवर्गों के साररूप भक्तिमार्ग में उदासीन केवल बोध मार्गी दुर्बुद्धि जनों का क्लेश ही सार है । आपकी भक्ति सर्वोपरि है । पहले योगिगण ज्ञानाश्रयी थे पश्चात् उसे परित्याग कर भक्तिमार्ग में प्रवेश किया । गुणातीत स्वरूप से भी अधिक दुर्ज्ञेय,आश्चर्यकर, अनन्त, महान् आपके गुण मङ्गल हैं । केवल निज कृपारूपी अपांगदृष्टि की अपेक्षा करने वाले व्यक्तियों के द्वारा आपके स्वरूप का बोध होता है । निज

रोमकूपभ्रमत्कोटिकोटिब्रह्माण्डमण्डल ।
प्रसूवदागःसहन जगन्मात जगत्पितः ॥ १५४ ॥
नाभ्यब्जजनितब्रह्मनारायण निरावृते ।
स्वगर्भाम्बाप्रपञ्चेहा–तदसत्यत्वदर्शक ॥ १५५ ॥
सत्यलीलावतारौघाचिन्त्यलीलातिवैभव ।
मिथ्यासत्यत्वसंपादिन् सदा परमसत्य हे ॥ १५६ ॥
गुरुप्रसादसंदश्य प्रपञ्चजनकास्मृते ।
बन्धमोक्षादि-मिथ्यात्वकृद् विचारणमात्रक ॥ १५७ ॥

अपराध को जानकर अति भयभीत निज नाभिकमलजात पुत्र ब्रह्मा के (मेरे) अपराधादिकों को सहने वाले हे कृष्ण ! आपके रोमकूप में कोटि कोटि ब्रह्माण्ड सकल परमाणु की तरह घूमते हैं। बालक के पादप्रहार को सहने वाली माता की तरह आपने मेरे अपराध का सहन किया है। आप जगत् की माता हैं अर्थात् आपके कुक्षि में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड मौजूद रहते हैं। हे जगत् के पिता ! आपके नाभि कमल से मेरा जन्म है। आप मूलनारायण हैं तथा देश-कालादिकों से अपरिच्छिन्न हैं। आपने निज जननी यशोदा को निज उदर में प्रपञ्च दिखाकर जगत् का अनित्यत्व तथा मायाकृतत्व का प्रतिपादन किया है। गुणावतार तथा लीलावतार प्रभृति में आपका मूलत्व विद्यमान रहने के कारण वे सब यथार्थ सत्य हैं। आपकी लीला की महामहिमा मन के अगोचर है। इससे आप अचिन्त्य हैं। प्रपञ्च सकल मिथ्याभूत होने पर भी आपके सम्बन्ध में आकर सत्यवत् प्रतीयमान होता है। आप सर्व्वदा परमसत्य अर्थात् निर्विकार हैं। आप इस प्रकार होने पर भी गुरुकृपा से सम्यक् रूप से दर्शन के विषय होते हैं। आपका विस्मरण ही प्रपञ्च का कारण है। बन्ध-मोक्षादि अज्ञान युक्त है। सत्यज्ञान से ये सब विनाश को प्राप्त होते हैं। आप ज्ञानालोक प्रज्वलित कर उनके मिथ्यात्व का सम्पादन करते हैं। अन्धकार

असत्यागि-स्वभक्तान्तर्बहिरात्माधिकस्फुट ।
स्वपाद्-महिमज्ञापि-स्वपादाब्जप्रसाद हे ॥ १५८ ॥
विधातृभूरिभाग्यैक-प्रार्थ्यदासानुदास्यक ।
चतुर्मुखमुहुर्गीत-भक्तिमाहात्म्य पाहि माम् ॥१५६॥नमः३६॥
धन्यधन्यव्रजवधू-धेनुतर्पित-मोदित ।
नित्यपूर्ण-महाभाग्य व्रजौकोमित्रतां गत ॥ १६० ॥
व्रजवासिप्रसङ्गान्तर्देवताबहुसौख्यद ।
व्रजजाताङ्घ्रिरेणुस्पृक्तृणजन्मेप्सु-पद्मज ॥ १६१ ॥

नाशक सूर्य्य की भाँति नित्यज्ञानरूप विशुद्ध आत्मतत्त्व के द्वारा आप बन्ध-मोक्ष के तुच्छत्व का प्रतिपादन कराते हैं। असत् शब्दवाच्य मिथ्या-अवस्तु का परित्याग कराकर भक्तों के भीतर-बाहिर में व्यापक प्रियस्वरूप में समधिक रूप से अभिव्यक्त होते हैं। आपके चरण की कृपा ही आपके चरण की महिमा को जनाती है। अनन्तर विधाता ने इस प्रकार की स्तुति कर परिशेष में प्रचुरभाग्य के वश केवल आपके दास के अनुदास होने की प्रार्थना की। चतुर्मुख ब्रह्माजी ने बार बार आपकी भक्ति की महिमा का कीर्त्तन किया है। हे कृष्ण ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ १५०–१५६ ॥ (नमः ३६)

हे परमधन्या व्रजवधूगण और धेनुगण के द्वारा स्तन्यदान में तृप्त तथा परमप्रसन्न ! नित्य परिपूर्ण महा-भाग्यशाली व्रज-बालकों के साथ आपकी मित्रता है। व्रजवासियों के मनो-बुद्धि-अहंकारादिकों के अधिष्ठाता रूप से स्थित होकर चन्द्रादि देवतागण प्रकारान्तरसें इन के संग कर पृथक् पृथक् इन्द्रिय के द्वारा आपके सौन्दर्य्य यशः सौगन्ध्य प्रभृति के पृथक् पृथक् रस आस्वादन करते हैं। ब्रह्माजी ने भी व्रज में जात किसी व्यक्ति का भी चरणरेणु स्पर्शशील तृणजन्म की प्रार्थना की है। प्रेमीभक्तगण ने आपको प्राणादि समस्त समर्पण किया है। अथवा आप भी उनके लिये निज आत्मा पर्य्यन्त सर्वस्व

प्रेमभक्तार्पिताशेर घोषवासिमहाऋणिन् ।
सद्वेशमात्रसंज्ञात-पूतनात्म-प्रदायक ॥ १६२ ॥
विरक्तप्राप्यदानानुरक्तापर्य्याप्ति-यन्त्रित ।
पुत्रत्वाद्यनुकारातिसुहृदानृण्य-लज्जित ॥ १६३ ॥
अविद्वन्मानि-सच्चित्तवागगोचर-वैभव ।
अत्यानन्द-मुहुर्नामकीर्त्तनब्रह्मवन्दित ॥ १६४ ॥ नमः ४० ॥
ब्रह्मप्रसाद-सुमुख भक्तवत्सल वाक्प्रिय ।
स्मितेक्षाहर्षितब्रह्मन् ब्रह्मानुज्ञाप्रदायक ॥ १६५ ॥

दान कर देते हैं। व्रजवासियों के निकट आप महान् ऋणी हैं क्योंकि उनकी प्रीति के विनिमय में कोई वस्तु प्रत्यर्पण के योग्य नहीं ठहरती है। सद्भावना युक्त व्रजवासिनी धात्रीजन के वेश मात्र को ही देखकर आपने पूतना के स्वभाव को जानने पर भी उसके निकट अपने को स्तन्यपायी शिशुरूप से न्यस्त किया। विरक्त सन्यासियों को आप अपने से अन्य कुछ प्रदान नहीं करते हैं। तुममें एकनिष्ठ व्यापार सम्पन्न व्रजवासिगण उनसे समधिक भजनशील हैं अतएव व्रजवासियों को आप किसी फल का प्रदान कर कृतार्थता या लाभ नहीं करते हैं। अतः उनके पुत्रत्वादि का अनुकरण करके भी प्रत्युपकार साधन नहीं कर सकते हैं। इस कारण से आप लज्जित रहते हैं। आपका विचित्र-अनन्त-महान् वैभव पण्डितमानी साधुओं के चित्त और वाणी का अगोचर है। इस प्रकार स्तुति करते हुए भगवत् कृपा से निखिल अभिमान दूर हो जाने पर परम दैन्यता के वश ब्रह्मा जी अति आनन्द के साथ आपका नाम कीर्त्तन कर आप की वन्दना करने लगे ॥ १६०–१६४ ॥ (नमः० ४०)

हे ब्रह्मा को कृपा करने में प्रसन्न-मुख ! हे भक्तवत्सल ! हे स्तुतिप्रिय ! हे स्मितनिरीक्षण के द्वारा ब्रह्मा जी को प्रसन्नकारी ! हे निजकार्य्य साधनार्थ ब्रह्मा जी को आज्ञा देने वाले ! हे वत्स-वत्सपों

वत्स-वत्सप-मोहन्न यथापूर्वार्भतर्णक ।
पुलिनानीत-वत्सौघ नम स्तेऽद्भुतकर्मणे ॥ १६६ ॥
मुग्धबालालिवाग्ज्ञातहास व्रजगृहोत्सव ।
विचित्र-वेशचरित गोपीहृदयमोहन ॥ १६७ ॥
आत्माधिकप्रियतम सर्वभूतसुहृद्वर ।
परिक्षिच्छुकसंवाद-निश्चित-प्रेमसागर ॥ १६८ ॥
विचित्रलील मां पाहि निलायनविहारवित् ।
क्रीडासेतुविधानज्ञ प्लवङ्गप्लवनोद्धत ॥ १६६ ॥ नमः ४१ ॥
* इतिदशमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥
पौगण्डागम गोपाल वृन्दावनविपिनमङ्गल ।
वृन्दावनान्तःसञ्चारिन् सम्मानितनिजाग्रज ॥ १७० ॥
वृन्दावन-गुणाख्यान-मिष-दत्तमहावर ।
अतिवृन्दावनप्रीत नानारतिविचक्षण ॥ १७१ ॥

के मोहहरणकारी ! हे पहले की भाँति उनको बनाकर पुलिन में लाने वाले ! हे अद्भुत कर्मकारी ! आप को नमस्कार है। मोहित बालकों के वचन से ज्ञात प्रसन्न ! हे व्रजगृह के उत्सवरूप ! हे विचित्र वेश-चरित्र वाले ! हे गोपियों के हृदयमोहन ! हे गोपियों के आत्मा से भी प्रियतम ! हे समस्त-भूतों के श्रेष्ठबान्धव ! हे परीक्षित और शुकदेव के संवाद के द्वारा प्रेम-सागर करके निश्चय प्राप्त ! हे विचित्र लीलाकारी ! मेरी रक्षा कीजिये। आप पलायन क्रीडा में पारदर्शी हैं। आपने सरोवरादिक में सेतु बाँध कर लंकागमन का अनुकरण किया है तथा वान्दरों की भाँति लम्फ प्रदानादि रूप विविध चाल्यचाञ्चल्य का प्रकाश किया है॥१६५-१६६॥ (नमः४१)

हे पौगण्ड अवस्थाशाली ! हे गोपाल ! हे वृन्दावन के मङ्गल ! हे वृन्दावन के मध्य विहारकारी ! हे निज अग्रज के सम्मानदायक ! हे वृन्दावन के गुणों के वर्णन के छल से महान् वर देने वाले ! हे

भृङ्गानुकारिन् मां पाहि कूजनिर्जित-कोकिल ।
उपात्तहंसगमन शिखिनृत्यानुकारक ॥ १७२ ॥
प्रतिध्वानप्रमुदित शाखाकूर्दन-कोविद ।
नामाकारितगोवृन्द रज्जुयज्ञोपवीतभृत् ॥ १७३ ॥
नियुद्धलीलासंहृष्ट बलभद्रश्रमापनुत् ।
गोपप्रशंसानिपुण वृक्षच्छायाहृतश्रम ॥ १७४ ॥
पुष्पपल्लवतल्पाढय गोपोत्संगोपबर्हण ।
गोपसंवाहितपद गोपव्यजनवीजित ॥ १७५ ॥
गोपगान-सुखस्वप्न जितैश्वर्य-ग्राम्यचेष्टित ।
रमालालित-पादाब्जाङ्कित वृन्दावनस्थल ॥ १७६ ॥नमः ४२॥

वृन्दावन के लिये अति प्रसन्न ! हे नाना क्रीड़ा में विचक्षण ! हे भ्रमरशब्दानुकारी ! हे निज कंठ ध्वनिसे कोकिल जयशील ! मेरी रक्षा कीजिये । हे हंस की भाँति गमनानुकारी ! हे मयूर-नृत्य के अनुकारक ! हे प्रतिध्वनि श्रवण से प्रसन्न प्राप्त ! हे वृक्षों के शाखा से कूदने में पण्डित ! हे गोवृन्द का नाम लेकर आह्वान करने वाले ! हे गोरज्जु तथा यज्ञसूत्र के धारणकारी ! हे सखाओं के साथ बाहु-युद्ध में प्रसन्न ! हे बलदेव के श्रमहारक ! हे गोपों की प्रशंसा करने में निपुण ! हे वृक्षों की छाया में बैठ कर श्रम दूर करने वाले ! हे पुष्पों के पल्लव से शय्या बनवाकर उसमें विराजमान ! हे गोपबालकों के क्रोडदेश में मस्तक रखकर शयन करने वाले ! हे गोपबालकों के द्वारा चरण-कमल संवाहित ! हे उनके द्वारा व्यजन से वीजित ! हे गोपबालकों के गान से सुख शयनकारी ! हे निज ऐश्वर्य्य को दबाकर ग्राम्य चेष्टा को करने वाले ! हे रमा-लालित चरण कमलों से वृन्दावन को अङ्कितकारी ! आप रक्षा कीजिये ॥ १७०-१७६ ॥ (नमः ४२)

जय श्रीदामसुबल-स्तोककृष्णैकबान्धव ।
वृषाल-वृषभौजस्वि-देवप्रस्थ-वयस्य हे ॥ १७७ ॥
वरूथपार्जुनसख भद्रसेनांशुवल्लभ ।
तालीवनकृतक्रीड बलपातितधेनुक ॥ १७८ ॥
उत्ताल-ताल-राजीभिद् रासभासुरनाशन ।
गोपवृन्द-स्तवानन्दिन् पुण्यश्रवणकीर्त्तन ॥१७९॥नमः ४३॥
गोपीसौभाग्य-संभाव्यं गोधूलिच्छुरितालकम् ।
अलकाबद्धसुमनःशिखण्डं रुचिरेक्षणम् ॥ १८० ॥
सव्रीडहास-विनयकटाक्षाक्षेप-सुन्दरम् ।
गोपीलोभनवेशं त्वां वन्दे गोपीरतिप्रदम् ॥ १८१ ॥
जनन्या-कारितस्नान पुण्डरीकावतंसक ।
मुक्ताहार-लसत्कण्ठ करकङ्कणसुन्दर ॥ १८२ ॥

हे श्रीदाम-सुबल-स्तोककृष्ण के एक मात्र बान्धव ! हे वृषाल-वृषभ-ओजस्वी और देवप्रस्थ के वयस्य ! हे वरूथप और अर्जुन के सखा ! हे भद्रसेन तथा अंशुमान् के वल्लभ ! हे तालवन में क्रीडाकारी ! हे बलदेव के द्वारा धेनुकासुर को मारने वाले ! ऊँचे वृक्षों से तालफलों को गिराने वाले ! हे गर्दभासुर-नाशन ! हे गोपवृन्द के स्तव से प्रसन्न ! आपकी जय हो । आपका कीर्त्तन श्रवण परमपुण्य रूप है ॥ १७७-१७९ ॥ (नमः ४३)

गोपियों के सौभाग्य से चिन्तनीय, गोधूलियों से रञ्जित कुटिल कुन्तल, अलकावलि में पुष्प और मयूरपुच्छ धारणकारी, मनोहरनयन, किञ्चित् लज्जा के द्वारा हास्य युक्त और विनययुक्त कटाक्षपात में सुन्दर ! गोपियों के लोभनीय वेशधारी ! गोपियों के रतिदायक आपकी वन्दना करता हूँ ॥ १८०-१८१ ॥

हे माता के द्वारा कृतस्नान ! हे मस्तक में पुण्डरीकधारी ! हे कंठ में मुक्ताहार के धारक ! हे हाथों में कंकणधारण से सुन्दर ! हे

मञ्जुशिञ्जितमञ्जीर स्वर्णालङ्कारभूषण ।
दिव्यस्रग् गन्धवासोभृज्जनन्युपहृतान्नभुक् ॥ १८३ ॥
विलासललितस्मेर गर्व्वलीलावलोकन ।
सुखपल्यङ्कसंविष्ट राधासंलापनिर्वृ त ॥ १८४॥ नमः ४४ ॥
यमुनातटसञ्चारिन् कालियह्रदतीरग ।
नमस्तेऽतिसुधादृष्टे विषार्त्तव्रजजीवन ॥ १८५ ॥
अतिविस्मितगोपाल-कुलानुमितचेष्टित ।
जय स्वजन-रक्षार्थ-निगूढैश्वर्य्यदर्शक ॥ १८६ ॥ नमः ४५ ॥

❀ इति दशमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ❀

तुङ्गनीप-समारूढ सर्पह्रदविहारिणम् ।
कालियक्रोधजनकं क्रुद्धाहिकुलवेष्टितम् ॥ १८७ ॥
मोहमग्नसुहृद्वर्गं सास्रुगोकुलवीक्षितम् ।
महोत्पात-समुद्विग्नव्रजान्विष्टगतिं भजे ॥ १८८ ॥

मनोहर शब्दकारी मञ्जीर के धारक ! हे सुवर्ण अलङ्कारों से विभूषित ! हे दिव्य माला-गन्ध-वस्त्रादि धारण करने वाले ! हे माता के द्वारा दत्त अन्नादि के भोजनकारी ! हे विलास से ललित, मन्दहास्य से युक्त ! यौवनोत्थित मत्तता से युक्त लीलावलोककारी ! हे सुखमय पलंक में शयन करने वाले ! हे राधिका के वार्त्तालाप में परम आनन्दित ! आपकी जय हो ॥१८३-१८४॥ (नमः ४४)

हे यमुना के तट में सञ्चारणशील ! हे कालियह्रद के तीरगामी ! हे अति अमृतमय दृष्टि वाले ! हे विष से पीडित व्रज-जन के जीवन ! "आप कालियनाग को कृतार्थ करेंगे" ऐसी आपकी चेष्टा का अनुमान सखाओं ने किया था। आप स्वजन रक्षा के लिये निगूढ़ ऐश्वर्य्य को दिखाये हैं। आपकी जय हो ॥१८५-१८६॥ (नमः ४५)

अत्युच्चनीप वृक्ष में आरोहणकारी, सर्प के ह्रद में विहारशील, कालिय के क्रोध उत्पादक, क्रोधित सर्पों से परिवेष्टित, सखाओं के

पदचिन्हात्प्रमार्गं त्वां मृतप्रायस्वबान्धवं ।
रामरक्षितनन्दादिमुमूपु व्रजशोचितम् ॥ १८६ ॥ नमः ४६ ॥
नमस्ते स्वीयदुःखघ्न सर्पक्रीडाविशारद ।
कालियाहि-फणारङ्ग-नट कालियमर्द न ॥ १९० ॥
कालिय-फणमाणिक्य-रञ्जित-श्रीपदाम्बुज ।
निजगन्धर्व-सिद्धादि-गीतवाद्यादिनर्तित ॥ १९१ ॥
पादाम्बुज-विमर्दातिनमिताहीन्द्र-मस्तक ।
रक्तोद्गारि-विभिन्नाङ्ग-दीनकालिय-संस्मृत ॥१९२॥ नमः ४७॥
नागपत्नीस्तुति-प्रीत हितार्थोचितदण्डकृत् ।
क्रोधप्रसाद-गाम्भीर्य्य महापुण्यैकतोष्य हे ॥ १९३ ॥

मोहितकारी, गोकुलवासियों के द्वारा अश्रु-नयन से दृष्ट, महा उत्पात से सम्यक् उद्विग्न व्रजवासियों की गति, आपका हम भजन करते हैं। उस समय आपको व्रजवासियों ने न देखकर ध्वज चिन्हादि युक्त चरण चिन्ह देख आपकी खोज की। वे सब मृतप्राय हो गये थे। बलदेव जी ने उनको आश्वासना देकर जीवित किया। वे सब बड़े सोच में पड़ गये ॥ १८७-१८९ ॥ (नमः ४६)

हे निज जनों के दुःखनाशन! हे सर्प के साथ क्रीड़ा करने में पण्डित! हे कालिनाग के फणरूप रङ्गमञ्च में नृत्य करने वाले! हे कालिय-मर्द न! हे कालिनाग के फणों में स्थित मणि-माणिक्यों से रंजित चरणकमल वाले! उस समय गन्धर्व-सिद्धादिकों ने गान-वाद्य किया और आपने नृत्य किया। आपके चरण प्रहार से उसके फणागण मर्दित होकर नीचे को अवनत हो गये। उसने रक्त का उद्गार किया तथा उसका अंग समूह छिन्न भिन्न हो गया। वह दीन होकर आपको स्मरण करने लगा ॥ १९०-१९२ ॥ (नमः० ४७)

हे नागपत्नियों की स्तुति से प्रीत! हे हित के लिये उचित दण्ड कारी! आप क्रोध करने पर भी भीतर में प्रसाद रखते हैं, अतः यह

निरुपाधिकृपाकारिन् सर्पस्त्रीप्रार्थ्यनायक !
सर्वार्थत्यागिभक्ताप्यं-स्वाङ्घ्रिरेखाचितोरग ॥ १६४ ॥
अचिन्त्यैश्वर्यमहिमन्नानानीरस्वभावमक् ।
नानाक्रीडनकक्रीडिन् स्वप्रनाग क्षमोचित ॥ १६५ ॥
नागस्त्री-पतिभिक्षाद जय कालियभापित ।
अग्राह्य-सृष्टदुष्टागोऽयोग्यमोहितनिग्रह ॥ १६६ ॥
स्वाङ्कमुद्राङ्किताहीन्द्र-मूर्द्धन् कालियशासन ।
पूर्वस्थानापिताहीन्द्र सुपर्णजभयापहृत् ॥ १६७ ॥
नागोपायनहृष्टात्मन् कालियातिप्रसान्वित ।
यमुनाह्रद-सशोधिन् हृन्नेत्लारितकालिय ॥ १६८ ॥नम०४८॥
---- ❀ इति दशमस्कन्धे षोडशोऽध्याय ❀ ----

आपका गम्भीरभाव है । आप महान् पुण्यों से प्रसन्न होते हैं । हे निरुपाधि कृपाकारी ! नागपत्नियों की प्रार्थना को पूर्ति करने वाले ! उस समय आप ने कालिय के मस्तक म निज चरणचिह्न रख दिया है । जिसे कि सर्वत्यागी भक्तगण निरन्तर चाहते हैं । हे अचिन्त्य ऐश्वर्य महिमा वाले ! हे नाना प्रकार के जीवों के नाना विध स्वभाव के सृष्टिकारी ! हे नानाविध क्रीडोपकरण से क्रीडित ! निज प्रजाओं के अपराध क्षमाकारी ! नागपत्नियों को पतिरूप भिक्षाको देने वाले ! हे कालियनाग से स्तुत ! आपकी जय हो । दुराग्रह के कारण आप के द्वारा ही यह दु स्वभाव सृष्ट हुआ है । तात्पर्य- इस प्रकार माया मोहित जीव को निग्रह करना उचित नहीं है । आपने उसके मस्तक में निज पदचिह्न का स्थापन किया तथा उसके पश्चात् 'हे कालिय ! तुम अब यहाँ नहीं रह सकते हो" इस प्रकार कह कर रमणक द्वीप जाने के लिये आज्ञा दी । आपने उसको पूर्व स्थान म भेजा और उसको गरुड से जो भय था उसे निजपदचिह्न के द्वारा दूर कर निरापद् किया । नाग के द्वारा प्रदत्त, दिव्य वस्त्र मणिमाल्यादि उपायन

स्ववल्यशनकालीय-दर्पमर्दनवाहन ।
सौभर्यु क्ति-स्वकागम्य-सर्पावास-हृदोद्धर ॥ १६६ ॥
दिव्यस्रग्गन्धवस्त्राढ्य दिव्याभरणभूषित ।
महामणिगणाकीर्ण व्रजजीवनदर्शन ॥ २०० ॥
सहास-श्रीवलाश्लिष्ट गोपालिङ्गननिर्वृ त ।
प्रसीद पीतदावाग्न स्वजनार्ति-विनाशन ॥ २०१ ॥नमः४६॥
॥ इति दशमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥
काकपक्षधर श्रीमद्वसन्तित-निदाघ हे ।
नयनाच्छादनक्रीड राजलीलानुकारक ॥ २०२ ॥
मृगादिचेष्टा-क्रीडाकृद्दोलानौका-विनोदक ।
नानालौकिकलीलाढ्यनाना-स्थान-विहारकृत् ॥ २०३ ॥

प्राप्त होकर आप प्रसन्न हुये और कालिय को अति भक्त बनाया। पश्चात् यमुना ह्रद को अमृतमय कर अपने आपको सबका प्रिय बनाया। हे सपरिवार कालियनाग को दूरीकृत करने वाले ! आप की जय हो ॥ १६३-१६८ ॥ (नम० ४८)

हे निज पार्षद (वाहन) गरुड़ जी के लघ्वार भोजनरूप कालियनाग का दर्प नाशन ! सौभरिऋषि के निषेध से सर्पपूर्ण यह ह्रद गरुड़जी का अगम्य था। आपने उसका उद्धार किया। हे दिव्य-माल्य-गन्ध से युक्त ! हे दिव्याभरण से भूषित ! हे महामणियों से व्याप्त ! हे दर्शनामृत दान से व्रज के जीवन ! हे हास्य के साथ बलदेव से आलिङ्गित ! हे गोपों के आलिङ्गन से परम प्रसन्न ! हे दावाग्नि के पानकारी, हे निजजनों के आर्त्तिनाशन ! आप प्रसन्न हों ॥ १६६।२०१ ॥ (नमः ४६)

हे काकपक्षधारी ! आपके लिये निदाघऋतु सर्वशोभायुक्त वसन्तऋतु की तरह हो जाता था। हे सखाओं के साथ आँख मीचनी क्रीड़ा खेलने वाले ! हे राजलीला के अनुकरणकारी ! हे मृगादिकों

क्रीडासम्प्राप्तभाण्डीर जय भाण्डीरमण्डन ।
गोपरूपिप्रलम्बज्ञ द्वन्द्वक्रीडाप्रवर्त्तक ॥ २०४ ॥
वाह्यवाहककेलीमन् जय श्रीदामवाहक ।
बलपातित-दुर्द्धर्ष-प्रलम्ब बलवत्सल ॥ २०५ ॥ नम ४० ॥

* इति दशमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्याय *

जय मुञ्जाटवीभ्रष्टमार्ग-पश्वार्त्तिनाशक ।
दावाग्निभीतगोपालदृङ्निमीलन-देशक ॥ २०६ ॥
मुञ्जाटव्याग्निशमन पीतोल्वणदवानल ।
भाण्डीरापित-गो-गोप-योगाधीश नमोऽस्तु ते ॥२०७॥नम ४१॥

※ इति दशमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्याय ※

प्रावृट्श्रीभूषितारण्य वृष्टिकाल-विनोदकृत् ।
गुहा-वनस्पति-क्रोडसेविन् मूलफलाशन ॥ २०८ ॥

की चेष्टा के अनुकारक ! हे डोलाखेल तथा नौकाविहार में विनोदी ! हे नाना प्रकार की लौकिकलीला के करने वाले ! हे नाना स्थान में विहारकारी ! हे क्रीडा करते हुए भाण्डीर वट में उपस्थित ! हे भाण्डीरवट के मण्डन ! आपकी जय हो। हे गोप रूपधारी प्रलम्बासुर को जानने वाले ! हे द्वन्द्वक्रीडा में प्रवर्त्तक ! हे वाह्य वाहक रूप क्रीडा परायण ! हे दाम के वाहक ! हे बलदेव के द्वारा प्रलम्बासुर का नाश कराने वाले ! आपकी जय हो ॥ २०२–२०५ ॥ (नम ४०)

हे मुञ्जाटवी में मार्ग भूलने वाले पशुओं की आर्त्ति के नाशक ! आपने उस समय दावाग्नि से भीत गोपालों को नेत्र मूँदने के लिये कहा। हे मुञ्जाटवी अग्नि के शमनकारी ! हे प्रज्वलित अग्नि के भक्षक ! हे भाण्डीरवट के निकट गो-गोपों के सञ्चारशील ! हे योगाधीश ! आपको नमस्कार है ॥ २०६–२०७ ॥

आपने वर्षाऋतु में शोभा समृद्धि से वृन्दारण्य को भूषित किया तथा वर्षाकाल में विविध क्रीडा-विनोद किया। पर्वतों की गुहा में

पापाण्यस्त-दध्यन्नभुग् वर्षादर्पितनग ।
शाद्वलाशन-वर्षाश्री-सम्मानक नमोऽस्तु ते ॥ २०६ ॥
हे शरन्निर्मल-व्योमचारुकान्ते ! प्रसीद मे ।
शरच्चन्द्र-लसद्वक्त्र कृतगोपीमहास्मर ॥ २१० ॥नम ४२॥

॥ इति दशमस्कन्धे विंशोऽध्याय ॥

शरद्विहार-मधुर शरत्पुष्पविभूषण ।
कर्णिकारावतंस त्वा नटवेषधरं भजे ॥ २११ ॥
विन्यस्त-चरणाम्भोज-लोचन-प्रान्तनर्तक ।
बिम्बाधरार्पितोदारवंशो जय सुगायन ॥ २१२ ॥
नमो वक्रावलोकाय त्रिभंगललिताय ते ।
वेणुमोहित-विश्वाय गोपिकोद्गीत-कीर्तये ॥२१३॥नम ४३॥

तथा वृक्षोंके नीचे क्रीडास्थान बनाया और फल मूल का भोजन किया।
प्रस्तर में दधि अन्न रखकर भोजन किया था। आपने वर्षाकाल में नग
को प्रसन्न किया। तृण भोजी वृषादि को तथा वर्षा-श्री को सम्मान
किया। आपको नमस्कार है। हे शरत्कालीन मेघशून्य आकाश की
भाँति मनोहर कान्ति वाले! हे शरच्चन्द्रमा की तरह शोभायमान
मुख! हे गोपियो को महाकन्दर्प दायिन्! मुझ पर प्रसन्न हों॥
॥ २०८-२१० ॥ (नम ४२)

हे शरत्कालीन विहार से मधुर! हे शरत्ऋतु के पुष्पों से विभूषित! हे अवतंस में कर्णिकार के धारी! नटवेश से विभूषित आप का भजन करता हूँ। हे [मुखकमल में] अपागभगी के द्वारा सुन्दर नेत्र वाले! हे अधर बिम्ब मे उदार वंसी निहितकारी! हे सुन्दर गायक! आपकी जय हो। वक्र अवलोकनकारी, त्रिभंगसे ललित, वेणुध्वनि से विश्व मोहित करने वाले, गोपियो के द्वारा उद्गीत कीर्त्तिशाली आपको नमस्कार है॥ २११॥ २१३॥ [नम ४३]

चक्षुःसाफल्य-सम्पादि-श्रीमद्वक्त्राब्ज-वीक्षण ।
नानामाला-समद्धेश गोपालसभ-शोभन ॥ ८१४ ॥
सदातिपुण्यवद्वेणु-पीयमानाधरामृत ।
वृन्दावनातिकीर्त्तिश्रीपद-पद्माब्जलक्षण ॥ ८१५ ॥
अपूर्वमुरलीगीतनादनर्त्तित-बर्हिण ।
शाखोत्कीर्ण-शकुन्तीच सर्वप्राणिमनोहर ॥ ८१६ ॥
विस्मारिततृणग्रास-मृगीकुलविलोभित ।
सुशीलरूपसङ्गीत-देवीगण-विमोहन ॥ ८१७ ॥
गाढरोदितगोवृन्द प्रेमोत्कर्णित-वर्णक ।
निर्व्यापारीकृताशेष-मुनितुल्यविहङ्गम ॥ ८१८ ॥
गीतस्तब्धसरित्पूर छत्रायितवलाहक ।
पुलिन्दीप्रेमकृद्घासलग्नपादाब्ज-कुङ्कुम ॥ ८१९ ॥

हे नेत्र साफल्यकारी शोभायमान मुख कमल वाले ! हे नाना प्रकार-मालाओं से परिभूषित ! हे गोपालसभा में शोभन ! वंशी ने बड़ा भारी पुण्य किया जिससे वह निरन्तर अधरामृत का पान करती है। आपके चरणकमल वृन्दावन की कीर्त्ति श्री को देने वाले हैं। आपके अपूर्व वेणुनाद का श्रवणकर मयूरगण नृत्य करते थे। वृक्षों की शाखा में पक्षिगण चित्र की भाँति हो जाते थे। आप सकल जीवों के मनोहर हैं। आपकी वंशीध्वनि से मृगीगण तृण ग्रास भूल कर विलाभित हो जाते थे। आप सुशीलता रूप सौन्दर्य संगीतादि से देवीगण के विमोहक हैं। गोगण गाढरूप से आपका वंशीनाद श्रवण से व्याकुल होकर रोदन करते हैं। गोवत्सगण प्रेमसे ऊपर की तरफ कानों को उठाकर वेणुध्वनि का श्रवण करते थे। आपकी वंशी ध्वनि पक्षियों को अशेष व्यापार से हटा कर मुनिगण की भाँति मौनि बना देती थी। यमुना का प्रवाह स्थगित हो जाता था। मेघ छत्राकार बन कर आपके अंग में सूर्य्यताप को ढक देता था। आप के

हरिसेवकवर्य्यत्वसम्पद्गोवर्द्धनार्च्चित।
स्वप्रेमपरमानन्द-चित्रायित-चराचर ॥ २२० ॥
रागपल्लवितस्थाणो गीतानमितपादप।
गोपालविलसद्वेश गोपीमारविवर्द्धन ॥ २२१ ॥
अशेषजङ्गमस्थाणु-स्वभाव-परिवर्त्तक।
आर्द्रीकृत-शिलाकाष्ठ निर्जीवोज्जीवनाव नः ॥२२२॥नमः४४॥

❀ इति दशमस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ❀

गोपकन्याव्रतप्रीत प्रसीद वरदेश्वर।
जलक्रीडा-समाशक्त-गोपीवस्त्रापहारक ॥ २२३ ॥
कदम्बारूढ़ वन्दे त्वां चित्रनर्म्मोक्तिकोविद।
गोपीस्तवविलुब्धात्मन् गोपिका-याचितांशुक ॥ २२४ ॥

चरणकमल का कुंकुम तृण से लग कर पुलिन्दकन्याओं के वक्षः में संलग्न हो जाता था। आप हरिसेवकों में श्रेष्ठ परम प्रसिद्ध श्रीगोवर्द्धन पर्वत से सेवित हैं। आपने निज प्रेमदान से चराचर सबको परमानन्द तथा चित्र की भाँति मुग्ध बनाया। वंशीध्वनि के द्वारा आपने शाखारहित वृक्षों को भी पल्लवित किया तथा फल फूलों से नीचे को झुकाया। हे गोपालवेश से विलासी! हे गोपियों के स्मरविवर्द्धक! हे अशेष स्थावर जङ्गम का स्वभाव के परिवर्त्तक! हे प्रस्थर काष्ठ को पिघलाने वाले! हे निर्जीव के जीवनदाता! हम सब की रक्षा कीजिये ॥ २१४ ॥ २२२ ॥ [नम० ४४]

हे गोपकन्याओं के व्रत से प्रसन्न! हे वरदेश्वर! हे जलक्रीड़ा में सम्यक् आसक्त! हे गोपियो के वस्त्रापहारी! आप प्रसन्न हों। हे कदम्बारूढ़! हे मनोहर नर्म्मोक्ति में पण्डित! आपकी वन्दना करता हूँ। हे गोपियों के स्तव से आत्मविस्मरणकारी! गोपियों ने उस समय आपको वस्त्र की याचना की थी। हे यमुना का स्रोत ही जिनका वस्त्र है ऐसी अर्थात् नग्ना, जलमग्ना, शोभायमाना गोपकन्या

स्रोतोवासःस्पृशद्गोपकन्याकर्षण-लालस ।
शीतार्त्तयमुनोत्तीर्ण-गोपीभाव-प्रमोदित ॥ २२५ ॥
स्कन्धारोपितगोपस्त्रीवस्त्र सस्मितभाषण ।
गोपीनमस्क्रियादिष्ट गोप्येककरवन्दित ॥ २२६ ॥
गोप्यञ्जलिविशेषार्थिन् गोपकन्यानमस्कृत ।
गोपीवस्त्रद हे गोपीकामिताकामितप्रद ॥ २२७ ॥
गोपीचित्तमहाचोर गोपकन्याभुजङ्गम ।
देहि स्वगोपिकादास्यं गोपीभावविमोहित ॥२२८॥ नमः ५५॥
श्रीवृन्दावन-दूरस्थविप्रा-मायाभिकर्षित ।
आतपत्रायिताशेषतरुदर्शनहर्षित ॥ २२९ ॥
परोपकारनिरत-तरुजन्माभिनन्दक ।
यमुनामृतसंतृप्त गो-गोपगणसेवित ॥ २३० ॥ नमः ५६ ॥

❀ इति दशमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ❀

के आकर्षण में लालस ! हे शीतार्त्त यमुना से उत्थित उनके भाव से प्रसन्नताप्राप्त ! हे स्कन्ध में उनके वस्त्र के धारणकारी ! हे स्मित-भाषी ! हे गोपियों को नमस्कार के लिये आदेशकारी ! हे उनसे हाथों के द्वारा वन्दित ! हे गोपियों को अञ्जलि जोड़ने के लिये प्रार्थी ! हे गोपकन्याओं से नमस्कृत ! हे गोपियों को वस्त्र दायक ! हे गोपियों की कामना और कामनातीत वस्तु को देने वाले ! हे गोपियों के चित्त के महान् चोर ! हे उनके कामविष का उद्गारकारी सर्परूप ! हे गोपियों के भाव से विभावित ! आप मुझे निज गोपीदास्य दीजिये ॥ २२३ ॥ २२८ ॥ (नमः ५५)

हे वृन्दावन से दूरस्थिता विप्रपत्नियों का भाव से आकर्षित ! आप छत्राकार अशेष वृक्षों के दर्शन से हर्ष प्राप्त हुए हैं। आपने परोपकारी वृक्ष जन्म का अभिनन्दन किया है। आप यमुना के अमृत-

यज्ञपत्नीप्रसादार्थ-गोपक्षुद्‌वृतिवर्द्धन ।
क्षुधार्त्त-गोपवाग्व्यग्र जय यज्वान्नयाचक ॥ २३१ ॥
दुष्प्रज्ञ-यज्वावज्ञात भक्तविप्रा-दिदृक्षित ।
ब्राह्मण्याकर्षकोदन्त यज्ञपत्नीमनोहर ॥ २३२ ॥
ब्राह्मणीतापभिच्चित्रवेशावस्थानभूषण ।
जय द्विजसतीश्लाघिन् यज्ञपत्नीष्टदायक ॥ २३३ ॥
ब्राह्मणीकाकुसन्तुष्ट ब्राह्मणीप्रेमभक्तिद ।
पतिरुद्धसतीसद्योविमुक्तिद नमोऽस्तु ते ॥ २३४ ॥
यजमानीवितीर्णान्नतृप्त विप्रानुतापद ।
स्वीयसङ्गद्विजज्ञानप्रद ब्रह्मण्यदेव हे ॥२३५॥ नमः ४७ ॥

❀ इति दशमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ❀

मय जल से सिक्त हैं और गो-गोपों से परिसेवित हैं ॥२२६।२३०॥
(नमः ४६)

हे श्रीकृष्ण ! आपने यज्ञ पत्नियों को कृपा करने के लिये ही सखाओं की क्षुधा की वृद्धि की तथा क्षुधार्त्त सखाओं के वचन से व्यग्र हुए । आपने उनके द्वारा याज्ञिकों के यज्ञान्न की याचना की थी । आपकी जय हो । दुर्बुद्धि उन्होंने मनुष्यज्ञान से आपका अनादर किया था । पश्चात् निजभक्त यज्ञ-पत्नियों को देखने के लिये आपकी इच्छा हुई । आपने वार्त्ता के द्वारा उनका आकर्षण किया तथा उनसे शोभायमान हुए । हे यज्ञपत्नियों के तापहारी ! हे मनोहर वेष-भूषण वाले ! हे द्विजपत्नियों के प्रशंसाकारी ! हे उनके इष्ट-दायक ! हे उनके विनय वचन से सन्तुष्ट ! हे उनके प्रेम भक्ति के प्रदायक ! हे निज पति के द्वारा रुद्ध सती का सद्यःमोचनकारी ! आप को नमस्कार है । आप द्विजपत्नियों के अन्न के द्वारा तृप्त हुए थे । आपने विप्रों को अनुताप दान किया । निज २ पत्नियों के संग से उनका निज स्वरूप का ज्ञान हुआ । हे ब्रह्मण्यदेव ! आपकी जय हो ॥

जय वासवयागज्ञ पितृप्रष्टमखार्थक।
श्रुततातोक्त-यज्ञार्थ कर्मवादावतारक ॥ २३६ ॥
नानापन्यायशक्रौघ-शक्रयागनिवारक।
गोवर्द्धनाद्रि-गोयज्ञप्रवर्त्तक नमोऽस्तु ते ॥ २३७ ॥
प्रोक्ताद्रि-गो-मखविधे यज्ञदत्तोपहारभुक्।
गोपविश्वासनार्थाद्रि-च्छलस्थूलान्यरूपधृक् ॥ २३८ ॥
गोवर्द्धनशिरोरत्न गोवर्द्धनमहत्त्वद।
कृतभूषाशनाभीर-कारिताद्रि-परिक्रम ॥२३९॥ नम ४८ ॥

* इति दशमस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्याय *

जनितेन्द्ररुष शक्रमन्युवृष्टि-शमोन्मुखम्।
गोवर्द्धनाचलोद्धर्त्तस्त्वां वन्देऽद्भुतविक्रमम् ॥ २४० ॥
लीलागोवर्द्धनधर व्रजरक्षापरायण।
भुजानन्तोपरिन्यस्त-क्ष्मानिभक्ष्माभृदुत्तम ॥ २४१ ॥

॥ २३९ ॥ २३५ ॥ (नम ४७)

हे इन्द्रयज्ञ के ज्ञाता ! आपने अपने पिता को यज्ञ का उद्देश्य पूछा तथा उनसे यज्ञका तात्पर्य्य अवगत हुए। आपने कर्म्मवाद की अवतारणा की। नाना प्रकार के अपवाद देकर इन्द्रयज्ञ का खण्डन किया। आपने गोवर्द्धन पर्वत की पूजा के द्वारा गायज्ञ का प्रवर्त्तन कराया। आपको नमस्कार है। गो गोवर्द्धन यज्ञ की विधि आपने बतलाई। आपने सेव्य स्वरूप से यज्ञदत्त उपहार का भोजन किया। गोपों के विश्वासार्थ पर्वत छल से स्थूलकाय धारण कर सब को उत्साहित किया। हे गोवर्द्धन के मस्तकरत्न ! हे गोवर्द्धन के महत्त्व दाता ! आपने गोपों से भूषित हो तथा नाना प्रकार भोजन कर पर्वत की परिक्रमा की ॥ २३६ ॥ २३९ ॥ (नम ४८)

आपने इन्द्र का क्रोध उत्पन्न किया तथा इन्द्र ने अभिमान से जो वृष्टि की उसका उपशम करने म उन्मुख हुए। उस समय आपने

गोवर्द्धनच्छत्रदण्डभुजार्गल महाबल ।
सप्ताहविधृताद्रीन्द्र मेघवाहनगर्वभित् ॥ २४२ ॥
सप्ताहैकपदस्थायिन् व्रजक्षुत्तृड्नुदीक्षण ।
जय भग्नेन्द्रसङ्कल्प महावर्षनिवारण ॥२४३॥
स्वस्थानस्थापितगिरे गोपीदध्यक्षतार्चित ।
देवता-सुमनोवृष्टिसिक्त वासवभीषण ॥ २४४ ॥नमः ५६॥

❀ इति दशमस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ❀

जयाद्भुतमहाचेष्टा-विस्मितव्रजशङ्कित ।
गोपानुपृष्टजनक गोपोद्गीताखिलेहित ॥ २४५ ॥

गोवर्द्धन पर्वत का धारण किया। हे अद्भुत पराक्रम-वाले ! आप की वन्दना करते हैं। हे लीलामात्र से गोवर्द्धनधारणकारी ! हे व्रज के रक्षापरायण ! अनन्त देवके ऊपर न्यस्त पृथ्वी की तरह एक ही हस्त की एक ही अंगुलि में गिरिराज गोवर्द्धनधारी ! उस समय गोवर्द्धन छत्र रूप से विराजमान रहा था। आपके भुज मानों छत्रदण्ड की भाँति हुआ। हे महान् बलवान् ! आपने एक सप्ताह पर्य्यन्त पर्वतराज को धारण किया और उससे मेघवाहन इन्द्र का अभिमान दूर किया। आप सप्ताह पर्य्यन्त एक चरण में अवस्थित रहे। आपने दृष्टिपात से ही व्रजवासियों की क्षुधा-पिपासा को दूर किया। उससे इन्द्र का सङ्कल्प टूट गया। हे महावर्षा के निवारक ! आप की जय हो। अनन्तर आपने गोवर्द्धन पर्वत को पहले की भाँति निजस्थान में रखा। गोपियों ने दधि-अक्षतों से आपकी पूजा की। देवताओं की सुमन-वृष्टि से आप सिक्त हुए तथा इन्द्र के लिये भयानक हुए ॥२४०।२४४॥
(नमः० ५६)

हे अद्भुत महान् चेष्टा के द्वारा व्रजवासियों को विस्मय तथा शङ्का उत्पादन करने वाले ! उस समय गोपों से आपके पिता को परिचय पूछा गया था और गोपों के द्वारा आपकी अखिलचेष्टा का गान

नन्दोक्तगर्गसद्वाक्य-गोपाशङ्कानिरासक ।
गोपरक्षक मां रक्ष गोपानानन्दवर्द्धन ॥ २४६ ॥नमः ६०॥

❀ इति दशमस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ❀

भीतलज्जितदेवेश-किरीटस्पृष्टपाद हे ।
वासवस्तुत सर्वज्ञ जितमायास्तदूषण ॥ २४७ ॥
धर्मपाल खलध्वंसिन् दुष्टमानघ्नचेष्टित ।
स्वीयापराधक्षमण शरणागतवत्सल ॥ २४८ ॥
शक्रशिक्षक शक्रत्वप्रद हे सुरभीडित ।
सुरभीप्रार्थितेन्द्रत्व श्रीगोविन्द नमोऽस्तु ते ॥ २४९ ॥
कामधेनुपयःपूराभिषिक्तामरपूजित ।
ऐरावत-करानीत-वियद्गङ्गाजलाप्लुत ॥ २५० ॥
गोगोप-गोपिकानन्दिन् सर्वलोकशुभङ्कर ।
हर्षपूरितदेवेन्द्र जगदानन्दवर्द्धन ॥ २५१ ॥ नमः ६१ ॥

❀ इति दशमस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ❀

किया गया । नन्द ने गर्ग का सद्वाक्य,का अनुसरण कराकर उनकी शङ्का को दूर किया । हे गोपरक्षक ! हे गोपों के आनन्द-वर्द्धक ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ २४५ । २४६ ॥ (नमः ६०)

हे भीत और लज्जित देवेश इन्द्र के मस्तक किरीट से स्पर्शप्राप्त चरण कमल वाले ! हे वासव के द्वारा स्तुत ! हे सर्व्वज्ञ ! हे माया-दूषण से रहित ! हे धर्म्मपालक ! हे खलध्वंसिन् ! हे निज चेष्टा के द्वारा खलोंके अभिमान नाशक ! हे निज में इन्द्रापराध के क्षमाकारी ! हे शरणागत वत्सल ! हे इन्द्र को शिक्षा देने वाले ! हे इन्द्राधिकार प्रदायक ! हे सुरभि के द्वारा स्तुत ! हे सुरभी के द्वारा इन्द्रत्व के लिये प्रार्थित ! हे श्रीगोविन्द ! आपको नमस्कार है । हे कामधेनु की दुग्धधारा से अभिषिक्त ! हे देवपूजित ! हे ऐरावत हस्ति के द्वारा

प्रसीद मे पयोमग्न-नन्दान्वेषिन् पितृप्रिय ।
वरुणालयसंप्राप्त वरुणाभीष्टदर्शन ॥ २५२ ॥
वरुणार्च्चितपादाब्ज वरुणातिप्रसादित ।
वरुणागःक्षमाकारिन् नन्दबन्धविमोचन ॥ २५३ ॥
नन्दश्रावितमाहात्म्य गोपज्ञातातिवैभव ।
गोपसंकल्पविज्ञातः करुणाकुलमानस ॥ २५४ ॥
स्वलोकालोकसंहृष्ट-गोपवर्गार्थवर्गद ।
ब्रह्मह्रदोद्धृताभीराभीष्टब्रह्मपदप्रद ॥ २५५ ॥ नमः ६२ ॥
❀ इति दशमस्कन्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः ❀
जय जय निजपादाम्भोजसत्प्रेमदायिन्
रसिकजन-मनोहृद् रासलीलाविनोदिन् ।
वितृतमधुरकैशोरातिलीलाप्रभाव
प्रियजनवशवर्त्तिन् व्यक्त-सत्यस्वभाव ॥ २५६ ॥

आनीत ब्राह्मणगंगा के जल से स्नात ! हे गो-गोप गोपियों के आनन्दकारी ! हे समस्त लोक के मङ्गलकर ! हे इन्द्र को प्रसन्नकारी ! आप जगत् के आनन्द वर्द्धक हैं ॥ २४७ ॥ २५१ ॥ [नमः ६१]

हे जलमग्न नन्द के अन्वेषणकारी ! हे पितृप्रिय ! हे वरुणालय गमनकारक ! हे वरुण के अभीष्टदर्शक ! हे वरुण के द्वारा अर्च्चित चरणकमल ! हे वरुण को अति प्रसादित करने वाले ! हे वरुण को अपराध के क्षमाकारी ! हे पिता के बन्धविमोचन ! उस समय नन्द ने व्रजवासियों को आपकी महिमा सुनाई तथा गोपों ने आपके अत्यन्त वैभव को जाना । उस समय गोपों ने महा वैकुण्ठ का दर्शन करने का संकल्प किया । आप करुणा से व्याकुल मन होकर उन्हें निज लोक वैकुण्ठ का दर्शन कराकर प्रसन्न करने लगे तथा उनकी कामना को आपने पूरण किया । ब्रह्मह्रद में पहले उन्हें मग्न कराकर पश्चात् उन्हीं को उठाया तथा उनको अभीष्ट ब्रह्मपद वैकुण्ठ का अनुभव क-

त्यक्तात्मरामतामाय तुच्छीकृतनिजागम ।
भक्तप्रार्थ्यनिजप्रेमधाराढानार्थरासकृन् ॥ २५७ ॥
शरन्निशा-विहारोत्क चन्द्रोदयरताशय ।
गोपी-विमोहनोद्गीत परमार्त्तर्पपण्डित ॥ २५८ ॥
अनादृतनिषेधौघी-कृतगोपसतीगण ।
त्यक्त-सर्वक्रियापेक्ष-गोपस्त्रीप्राप्तसङ्गम ॥२५६॥ नमः ६३ ॥
प्रसीद भर्त्सरुद्धगोपी-प्रेमाग्नि वर्द्धन ।
स्वकामोन्मत्तगोपस्त्रीदेहवन्धविमोचन ॥ २६० ॥

राया । हे एतादृश आप प्रसन्न हों ॥ २५२ ॥ २५५ ॥ (नम ६२)

हे निज-चरणकमलों के सत् प्रेम के दाता ! हे रसिकजनों के मन-हरणकारी ! हे रासलीला के विनोदी ! आपने मधुर नवकैशोर का प्राकट्य कर अति लीला प्रभाव का विस्तार किया । आप प्रियजन के वशवर्ती हैं । आपका सत्य स्वभाव जगत् में व्यक्त है । आपने आत्माराम के अभिमान का त्याग कर भगवत्ता के आविष्कार के द्वारा परनारा के साथ विवाद किया । क्योंकि रासप्रसंग में आत्मारामता आवश्यक नहीं थी । प्रतीप आचरण के द्वारा यह दिखाया कि मैं वेद विधि से पर हूँ । भक्तों के प्रार्थनीय निज प्रेमामृतधारा के प्रदानार्थ आपने रासलीला की । शरत्कालीन रात्रि का अवलोकन कर आप विहारार्थ उत्सुक हुए । उस समय पूर्ण चन्द्रमा का उदय था । गापियों को मोहित करने के लिये आप वंशी बजाने लगे । उन के आत्मर्पण विद्या को आप भली भाँति जानते थे । गोपसतियाँ सब का अनादर कर बाधा विघ्नों का उलघन करती हुई आपके पास आई थीं । उस समय उन्होंने सकल क्रिया को तिलाञ्जलि दे आपकी प्राप्त की । हे एतादृश ! आपकी जय हो जय हो ॥ २५६ ॥ २५६ ॥

[नम० ६३]

शुकक्रोधोक्तिनिर्णीत-महामहिमसागर ।
क्रोधादिभजमानार्थप्रदस्मरण मा स्मर ॥ २६१ ॥नमः ६४॥
गोपिकानयनास्वाद्य गोपीवञ्चनवाक्पटो ।
गोपीमिष्टोक्तिशुश्रूषा-स्वधर्मभयदर्शक ॥ २६२ ॥
गोपीमहाविविस्तारिन् गोपीरोदनवर्द्धन ।
गोप्यर्थिताङ्गसङ्ग गोपीकाकूक्तिनिर्वृत ॥ २६३ ॥
अवहित्था-परित्यक्त प्रोद्यन्मानस निक्रिय ।
धूर्त्ताग्रगण्य मा पाहि कामसुग्ध स्मिताऽऽनन ॥ २६४ ॥
व्यक्तरम्भावमधुर स्मरलोलितलोचन ।
गोपीमनोहरापाङ्ग गोपिकाशतयूथप ॥ २६५ ॥

हे पति के द्वारा निरोधित गोपियों के प्रेमाग्नि वर्द्धनशील ! हे निज कामोन्मत्त गोपस्त्रियों का देहबन्ध के विमोचक ! शुकदेव ने आक्षेप के साथ आपके महिमा सागर का निर्णय किया है । आपका स्मरण काम क्रोधादि भाव से भजनकारियों को भी पुरुषार्थदायक है । आप मेरा स्मरण रखे ॥ २६० ॥ २६१ ॥ [नमः ६४]

हे गोपिया के नयन के द्वारा आस्वाद्यमान ! हे गोपियों के वञ्चनार्थ वाग्विलास में चतुर ! हे गोपियों के परिहास गर्भ मधुरवचन सुनने के लिये धर्म्मभय के दर्शक ! हे गोपियों को उस समय महान् पीडा विस्तारकारी ! हे गोपियों के रोदन की वृद्धि करने वाले ! उस समय उन्होंने आपके अंग संग की प्रार्थना की । उनके विनय युक्त वचनों से आप परमसुखी हुए और निज भाव गोपन नहीं कर सके । आपकी मन की इच्छा उछल उठी । हे धूर्त्तशिरोमणि ! हे काम-मोहित ! हे स्मितवदन ! मेरी रक्षा कीजिये । आपका भीतरका भाव व्यक्त हो जाने पर आप परम मधुर हुए । स्मरचेष्टा से आपके नयन युगल लोलायमान हो गये । आपकी अपांगदृष्टि गोपिया के लिये मनोहर थी । शत शत गोपियूथो के आप रक्षक हुए । हे वैजयन्ती-

वैजयन्तीस्रगाकल्प शरच्चन्द्रनिभानन ।
यमुनापुलिनासीन गोपीरमण पाहि माम् ॥ २६६ ॥
जितमन्मथ सन्मन्त्र गोपीमानविवर्द्धन ।
गोपिकातिप्रसादार्थकृतान्तर्धानविभ्रम ॥ २६७ ॥ नमः ६५ ॥

❀ इति दशमस्कन्धे ऊनत्रिंशोऽध्यायः ❀

जय गोपीगणान्विष्ट वृक्षसंपृष्टदर्शन ।
तुलसी–मालती–मल्ली–यूथिकापृष्ट–वीक्षण ॥ २६८ ॥
क्षित्युत्सव–समालोक–सम्भावित–समागम ।
एणीपृष्टाङ्घ्रिपादृष्टलतोत्पुलक–सूचित ॥ २६९ ॥
उन्मत्तीकृतगोप्योघ गोपिकानुकृतेहित ।
जय गोपीगणाविष्ट स्वभावार्पितगोपिक ॥ २७० ॥

माला से विभूषित ! हे शरच्चन्द्रमा की भाँति सुन्दर वदन वाले ! हे यमुना की पुलिनावली में विराजमान ! हे गोपीरमण ! हे मन्मथ-रीति को जानने वाले ! हे गोपियों के मान वर्द्धक ! हे गोपियों का सौभाग्य जगत् में दिखाने के लिये अन्तर्द्धानकारी ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ २६६ । २६७ ॥ (नम० ६५)

हे गोपियों के द्वारा अन्वेषित ! उस समय उन सबने उन्मत्त हो कर आपके दर्शन के लिये वृक्षों से पूछा । तुलसी, मालती, मल्ली, यूथिकादि लताओं के लिये भी आपके दर्शन की वार्त्ता पूछने लगीं । पृथिवी में उत्सव दायक आपके ध्वज वज्रादि अंकित चरणचिह्नों का अवलोकन कर उन सबने आपके आगमन की सम्भावना की । उन्होंने हरिणियों के दर्शन अभिनिवेश से, वृक्षों के फल-पुष्पों से नम्रताभाव के द्वारा तथा लताओं का पुलकांकुर दर्शन से आपके आगमन का निर्द्धारण किया था । आपने गोपियों को उन्मादित किया । वे सब आपका अनुकरण करने लगीं । हे एतादृश ! आपकी जय हो । हे गोपिगण में आविष्ट ! गोपियों के द्वारा, आपने अपने भाव का कि-

गोपीलक्षितपादाब्ज-लक्ष्ममार्गित-पद्धते ।
अन्यस्त्रीयुक्तपादाब्जचिन्हेक्षा-गोपिकार्त्तिद ॥२७१॥नमः६६॥
राधाराधित राधेश राधिका-प्राणवल्लभ ।
राधारमण वन्दे त्वां राधिकाप्रेमनिर्जित ॥ २७२ ॥
राधासंन्यस्तसर्व्वस्व स्त्रीस्त्रैणगतिदर्शक ।
राधानुतापसंमोहकरान्तर्धान-कौतुक ॥ २७३ ॥
सखीगणाप्तराधोक्त तद्विस्मापनचेष्टित ।
राधासहितगोपस्त्री-मुहुर्मार्गित पाहि माम् ॥ २७४ ॥नमः ६७॥

❀ इति दशमस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ❀

पुनःपुलिनसंप्राप्त गोपीगीतार्थितोदय ।
जन्ममात्रव्रजश्रीद स्वजनान्वेषणार्त्तिद ॥ २७५ ॥

किंचित् अनुभव प्राप्त किया। गोपियाँ आपके चरणचिह्न से अङ्कित मार्ग का अनुसन्धान करने लगीं। अन्य कोई स्त्री से युक्त चरण-चिह्न का अवलोकन कर उनकी अत्यधिक आर्त्ति बढ़ने लगी। हे एतादृश। आपकी जय हो ॥ २६८। २७१ ॥ (नम० ६६)

हे राधिका के द्वारा आराधित ! हे राधापति ! हे राधिका के प्राणवल्लभ ! हे राधारमण ! राधिका के प्रेम से पराजित आपकी वन्दना करता हूँ। हे राधिका में सर्व्वस्व अर्पित ! हे लोकशिक्षा के लिये स्त्री और कामियों की यथाक्रम से दुरात्मता और दैन्यरूप गति के दर्शक ! उस समय आपने राधिका को अनुतापित और मोहित करते हुए अन्तर्द्धान कौतुक का अवलम्बन किया। श्री राधा ने सखियों से प्राप्ता होकर समस्त बात सुनाई। आपकी चेष्टा उन सबका विस्मापक है। उस समय राधिका जी गोपस्त्रियों से मिलकर आपका बार बार मार्गानुसन्धान करने लगीं। हे एतादृश ! मेरी रक्षा कीजिये। ॥ २७२-२७४ ॥ (नम० ६७)

हे पुनर्वार पुलिन में उपस्थित गोपियों के गान द्वारा आगमन

दृगब्जहन्यमानस्त्रीवध–निःशङ्कहृदय ।
विपादिनानादुःखघ्न स्वीयार्त्तिज्ञाऽन्तरात्मदृक् ॥२७६॥
विश्वरक्षार्थसञ्जात भक्ताभयद–हस्त हे ।
स्वजनप्रार्थ्यसंस्पर्श नानागुणपदाम्बुज ॥ २७७ ॥
मनोज्ञ–मधुरालाप दासीगणविमोहन ।
श्रुतिमङ्गलसन्तप्तप्राणार्थदकथामृत ॥ २७८ ॥
मनःक्षोभकमाधुर्य्य मृदुलाङ्घ्रिभ्रवनाटक ।
युगायितवियोगाणो मनोहृद्धरामृत ॥ २७९ ॥
सर्वत्यागार्थितगते महामोहनरूप हे ।
व्रजमङ्गलकृद्व्यक्ते स्वजन–प्रार्थ्यपूरक ॥ २८० ॥

के लिये प्रार्थित ! हे जन्ममात्र से ही व्रज मे श्री के दाता ! हे निजजनों की आर्त्ति को बढ़ाने वाले ! आप नयनकमल से हन्यमानास्त्रियों के वध में निशङ्क हृदय वाले हैं तथा विपादि नाना प्रकारके दुखों के नाशकारी हैं । आप निजजनों की आर्त्ति को जान लेते हैं क्यों कि आप सबके अन्तरात्मा को जानते हैं । आपने विश्व की रक्षा के लिये अवतार लिया है । आपके हस्तकमल भक्तों को अभय देने वाला है । निज जन गोपियों ने आपका संस्पर्श की प्रार्थना की है । आपके चरणकमल नाना गुणों की खान है । हे मनोहर मधुर आलापकारा ! हे निजदासियोंके विमोहित कारक ! आपका कथामृत श्रवण मङ्गलरूप तथा प्राण-अर्थ को देने वाला है । आपका माधुर्य्य जगमन का क्षोभ कारक है ।आप कोमलचरणों से वृन्दावन मे विचरण करने वाले हैं। आपका निमेषमात्र विरह गोपियों के लिये युग की भाँति प्रतीयमान होता है । आपका अधरामृत मन हरणकारी है । जो सर्वस्व परित्याग कर आपके शरण मे आता है उसे आप रक्षादिक के लिये दृढ़व्रत हो जाते हैं । हे महामोहन रूपधारी ! हे व्रजमङ्गल के लिये अभिव्यक्त ! हे निजजन की प्रार्थना के पूरणकारी ! हे वृन्दावन के कण्टकमय

अतिकोमलपादाब्ज-कण्टकारण्यसञ्चर ।
गोपस्त्रीजीविताकर्षि-दुर्गभूभ्रमणाऽव माम् ॥१८१॥नम ६८॥
॥ इति दशमस्कन्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥
अत्युच्चगोपिकादुःख-रोदनोन्मथितेन्द्रिय ।
जय गोपीपुनर्दृष्ट-स्मयमान-मुखाम्बुज ॥ १८२ ॥
श्रीमन्मदनगोपाल पीतकौशेयवस्त्रधृक् ।
प्रीत्युत्फुल्लाक्ष-गोपस्त्री-वेष्टित प्राणदायक ॥ १८३ ॥
वल्लवीस्तनसन्ताङ्घ्रि गोपीनेत्राब्जषट्पद ।
गोपस्त्रीविरहार्तिघ्न वल्लवीकामपूरक ॥ १८४ ॥
गोपीचेलाञ्चलासीन गोपीगण-सभाजित ।
जय गोपीसदोजाताधिक-श्रीराजमान हे ॥१८५॥ नम. ६६॥

अरण्य में अति कोमल चरणों से सञ्चरण शील ! गोपियाँ आप के अरण्य प्रदेश में इस प्रकार विचरण देखकर मृतप्राया हो जाती थीं। हे एतादृश ! आप मेरी रक्षा कीजिये ॥ १७५-१८१ ॥ [नम०६८]

अत्यन्त उच्च स्वर से गोपियों ने जो दुःखमय रोदन किया है उससे आपके इन्द्रियगण व्याकुल हो गया था। आप नहीं रह सके। हँसते हुए उनके बीच में उपस्थित हुए। हे श्रीमन् मदन-गोपाल ! हे पीत-कौशेय वस्त्रधारी ! हे प्रीति से परिफुल्ल नेत्र वाली गोपस्त्रियों से वेष्टित ! हे उनके प्राणदायक ! हे गोपियों के उत्तप्त स्तनकमल में चरणकमल के अर्पक ! हे गोपियों के नेत्ररूप कमलों के भ्रमर ! हे गोपस्त्रियों के विरह नाशक ! हे उनके काम पूरक ! उस समय गोपियों ने निज निज वस्त्राञ्चल को बिछा कर उस आसन पर आपको बैठाया। आप उनकी सभा में विराजमान हुए। हे गोपियों की सभा में सर्वविलक्षण श्री के प्रकाश के द्वारा राजमान ! आपकी जय हो। ॥ १८२ ॥ १८५ ॥ (नम० ६६)

विदग्धगोपिकागाढ–त्रिप्रश्नोत्तरदायक ।
विज्ञातगोप्यभिप्राय महाचतुर–सिंह हे ॥ २८६ ॥
स्वकारुण्याकृतज्ञत्वादिदोष–परिहारक ।
निजासाधारणप्रेम–कारुण्यस्थापकाऽव माम् ॥ २८७ ॥
स्वीयसङ्गापरित्यागिन् स्वदानातृप्तमानस ।
प्रियोपकार–संव्यग्र विरहप्रेमवर्द्धन ॥ २८८ ॥ नमः ७० ॥

❀ इति दशमस्कन्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ❀

गोपीविरह–सन्तापहरालिङ्गन–कोविद ।
रासक्रीडारसाकृष्ट जय गोपीप्रियङ्कर ॥ २८९ ॥
रासोत्सव–समारम्भिन् गोपीमण्डल–मण्डित ।
गोपीहेममणिश्रेणी–मध्यमध्य–हरिन्मणि ॥ २९० ॥

विदग्धा गोपियों ने गाढ रूप से तीन प्रश्न किये थे । आप ने उन के प्रश्नों का स्पर्श नहीं कर चतुराई से उत्तर दिया । आपने गोपियों का अभिप्राय जान लिया क्योंकि आप चतुरशिरोमणि हैं । आपने अपनी कथा से अकृतज्ञत्वादि दोष का परिहार कर अपने असाधारण प्रेमकारुण्य की स्थापना की । आप के लिये जो लौकिक-वैदिक सकल मर्य्यादा का लंघन करते हैं, आप उनके निजविषयक आनुगत्य बढ़ाने के लिये यद्यपि क्षण भर के लिये विरह प्रदान करते हैं तो भी कदापि उनके संग का नहीं परित्याग करते हैं । आप उनके लिये अपने को दान करने पर भी उससे तृप्त नहीं होते हैं । प्रेयसियों के उपकार के लिये आप निरन्तर व्यग्र चित्त रहते हैं इस लिये उनको विरह देकर प्रेम की वृद्धि करते हैं । हे एतादृश ! आप मेरी रक्षा कीजिये ॥ २८६ ॥ २८८ ॥ (नमः० ७०)

हे गोपियों के विरह सन्ताप हरणकारी ! हे गोपियों को आलिङ्गन करने में कोविद ! हे रासक्रीडारस से आकृष्ट ! हे गोपियों के प्रियकारी ! आपकी जय हो । हे रासोत्सव आरम्भकारी ! हे गोपि-

स्वस्वपार्श्वस्थितिज्ञानानन्दितस्त्रीगणावृत ।
देवतागणगीतादिसुसेवित नमोऽस्तु ते ॥ २६१ ॥
गोपिकोद्गीत-सुप्रीत नृत्यगीत-विचक्षण ।
स्वास्यदत्तताम्बूल श्रान्तगोपीधृतांसक ॥ २६२ ॥
स्वानुरूप-व्रजवधू-नृत्य-गीतादि-हर्षित ।
विमोहितशशाङ्कादि-स्थैर्य-रात्र्यतिदैर्घ्यकृत्॥२६३॥नमः७१॥
विदग्धवल्लवीवृन्द-रतिचिन्हाङ्कितांग हे ।
रतिश्रान्तव्रजवधूमुखमार्जन-तत्पर ॥ २६४॥
जलक्रीडातिकुशल स्वमालालिकुलावृत ।
सहासगोपिकाव्रात-सिच्यमान नमोऽस्तु ते ॥ २६५ ॥
यमुनाजललीनाङ्ग कालिन्दीकेलिलोलित ।
यमुनातीरसञ्चारिन् कृष्णाकुञ्जरतिप्रिय ॥ २६६ ॥

मण्डल से मण्डित ! हे गोपीरूप सुवर्ण-मणियों के मध्य मध्य में इन्द्रनीलमणि स्वरूप ! उस समय गोपियों में प्रत्येक ने ऐसा समझा कि हमारे पास ही श्रीकृष्ण विराजमान हैं । उन सब गोपियों ने आनन्दित होकर आपको बीच में रख नृत्यगान किया था । देवताओं ने भी गीतादि के द्वारा आपकी सेवा की । हे एतादृश ! आपको नमस्कार है । हे गोपियों के गान में सुप्रीत ! हे नृत्य गीतमें विचक्षण ! हे ताम्बूलचर्वण कर निज मुख से गोपियों को प्रदान करने वाले ! हे रासपरिश्रान्ता राधिका के स्कन्ध धारणकारी ! हे निजानुरूप व्रजवधुओं के नृत्य-गीतादिकों में हर्ष प्राप्त ! उस समय आकाश में चन्द्रमादि विमोहित होकर स्थिर होगये तथा रात्रि अति दीर्घ हो गई। हे विदग्ध गोपियों के रतिचिह्न से अङ्कित सर्वांग ! हे रति परिश्रान्त व्रजवधुओं के मुखमार्जन में तत्पर ! आपको नमस्कार है।२८६-२६५ ॥ (नम० ७१)

हे जलक्रीड़ा में अतिकुशल ! हे भ्रमरों से वेष्टित पुष्प वनमालाधारी !

जय श्रीराधिकासक्त जय चन्द्रावलीरत ।
पद्मास्यपद्मपानाले ललितापाङ्गलालित ॥ २६७ ॥
विशाखार्थविशेषार्थिन् श्यामलारतिनिर्मल ।
भद्राभद्ररसाधीन धन्या-प्राण-धनेश्वर ॥ २६८ ॥
गोपजन्मागतस्वस्त्रीनिरन्तरविलासकृत् ।
गोपीलम्पट हे गोपीस्तन-कुङ्कुममण्डित ॥ २६६ ॥नमः ७२॥
परीक्षित्पृष्टरासार्थ शुकोक्तैश्वर्य्यसञ्चय ।
मुमुक्षु-मुक्त-भक्तार्थ-सच्चिदानन्दचेष्टित ॥ ३०० ॥
गोपीमहामहिमद गोपासूयायनास्पद ।
गोपार्पितगृहापत्य-पत्नीप्राण प्रसीद मे ॥३०१॥ नमः ७३ ॥

❀ इति दशमस्कन्धे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ❀

हे हास्यसुधा से गोपियों के सिञ्चनकारी ! आपको नमस्कार है। हे यमुनाजल में उन्मज्जित ! हे यमुना में केलि करने के लिये लालायमान ! हे यमुना के तीर सञ्चरणशील ! हे यमुना के कुञ्ज में रतप्रिय ! हे राधिका में आसक्त ! हे चन्द्रावली में रत ! आपकी जय हो। हे पद्मा के मुखकमल के पान के लिये भ्रमररूप ! हे ललिता के कटाक्षदृष्टि से लालित ! हे विशाखा के प्रेमधन के लुब्धचित्तवाले ! हे श्यामला की विशुद्ध रति से निर्मल ! हे भद्रा के श्रेष्ठ शृंगार रस के अधीन ! हे धन्या के प्राणधन के ईश्वर ! हे गोपजन्म प्राप्त नित्यप्रियागण के साथ निरन्तर विलासकारी ! हे गोपीलम्पट ! हे गोपियों के स्तन कुंकुम से रञ्जित ! आपकी जय हो॥२६५-२६६ ॥ (नम० ७२)

महाराज परीक्षित् ने शुकदेव जी के लिये आपके रास का तात्पर्य्य पूछा था। शुकदेव जी ने आपका परम ऐश्वर्य्य का वर्णन कर परीक्षित् का सन्देह दूर किया। आप मुमुक्षु-मुक्त और भक्त के लिये नित्य सच्चिदानन्दमयी चेष्टा करते हैं। हे गोपियों को महामहिमा

जयाम्बिकावनप्राप्त सारस्वतजलाप्लुत ।
निजपादाम्बुजस्पृष्टनन्दग्राहिमहोरग ॥ ३०२ ॥
विद्याधरेन्द्र–शापघ्न जय नन्दविमुक्तिद ।
श्रावितोहि–पुरावृत्त सुदर्शनविमोचन ॥३०३॥नमः ७४॥
कामपालसहक्रीडा–सम्मानितनिशामुख ।
मनोहरमहागीत–मोहित–स्त्रीगणावृत ॥ ३०४ ॥
शङ्खचूड–परित्रस्त–गोपिकाक्रोशधावित ।
स्त्रीरक्षास्थापितबल शङ्खचूड–शिरोहर ॥ ३०५ ॥
शङ्खचूड–शिरोरत्न–प्रीणिताग्रज पाहि माम् ।
अन्योन्य–गोपीसापत्न्यानुत्पादक नमोऽस्तु ते ॥३०६॥नमः७५॥

❀ इति दशमस्कन्धे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ❀

के दिखाने वाले ! आप गोपों के द्वारा जो असूयादिक हैं उनके विषय नहीं रहे । अर्थात् परम साधुवाद के योग्य हुए । इसलिये गोपों ने गृह-पुत्र-स्त्री-प्राणादिक आपको अर्पण कर दिये । हे एतादृश आप प्रसन्न हों ॥ ३०० ॥ ३०१ ॥ (नम० ७३)

हे अम्बिकावन में उपस्थित ! हे सरस्वती के जल में स्नात ! वहाँ अजगर सर्प ने आपके पिता को ग्रास किया । वह सर्प आपके चरणस्पर्श पाकर शाप मुक्त हो अपने पहला विद्याधर रूप का धारण करने लगा । हे नन्द के विमोचनकारी ! आपने उस अजगर से पूर्वजन्म की वार्ता व्रजवासियों को सुनाया । हे सुदर्शन-विमोचन ! आपकी जय हो ॥ ३०२ ॥ ३०३ ॥ (नम० ७४)

हे बलदेव के साथ होरीक्रीड़ा के द्वारा दिवस का शेषभाग को सम्मानन देने वाले ! मनोहर गानों से मोहित स्त्रीगण के द्वारा परिवेष्टित ! हे शंखचूड से भयभीत गोपिका श्रीराधिका के क्रन्दन से धावित ! हे गोपियों के रक्षार्थ बलदेव जी का नियोग करने वाले ! हे शंखचूड के शिरोरत्न के हरणकारी ! हे शंखचूड के मस्तकरत्न प्र-

अर्हविरह-सन्तप्त गोपी-गीतगुणोदय ।
जय शोकाब्धिनिस्तार-प्रकारायुच्चकीर्त्तन ॥ ३०७ ॥
साचीकृताननाम्भोज व्यत्यस्त-पदपल्लव ।
नर्त्तितभ्रूयुगापाङ्ग वेणुवाद्यविशारद ॥ ३०८ ॥
विश्वमोहनरूप त्वां सिद्धस्त्रीकामवर्द्धनम् ।
वन्दे चित्रायिताशेष-व्रजारण्यपशुव्रजम् ॥ ३०९ ॥
अनाहितप्रवाहौघ लतादिमधुवर्षक ।
स्वपार्श्वार्पितहंसादे पर्जन्यच्छत्रसेवित ॥ ३१० ॥
ब्रह्माद्यतर्कसंगीत कामार्पक-समीक्षण ।
स्वपदोद्धृतभूताप वनितातरुभावकृत् ॥ ३११ ॥

दान के द्वारा बलदेवजी के प्रसन्नकारक ! मेरी रक्षा कीजिये । इससे गोपियों का परस्पर सापत्न्य नहीं हुआ । किसी गोपी को देते तो अवश्य असूया उत्पन्न होती । इसलिये बलदेव जी को आपने उस रत्न को दिया । हे एतादृश ! आपको नमस्कार है ॥ ३०४ ॥ ३०६ ॥

[नम० ७५]

दिवस में आपका वनगमन से विरहातुर होकर गोपियाँ आपका गुणगान करती थीं क्योंकि आपका उच्च स्वर से गुण-कीर्त्तन उनके शोक सागर का निवारक होता था । आप वाम बाहु के ऊपर वाम कपोल रख चरण के ऊपर चरण धर त्रिभंगी भंगी से खड़े होते थे । भ्रूयुगल से नचाकर अपाङ्गदृष्टि को छोड़ते थे । आप वेणुवाद्य में परम पण्डित हैं । हे विश्वमोहनरूप वाले ! हे सिद्धस्त्रियों के कामवर्द्धक ! व्रज में सकल पशुओं को चित्र की भाँति कर देने वाले आपकी वन्दना करता हूँ । आप वंशीध्वनि से नदियों के प्रवाह को रोध करने वाले हैं तथा लताओं से मधुधारा को बहाने वाले हैं । वंशीध्वनि से मुग्ध होकर हंसगण से आप चारों ओर से घिर जाते थे । मेघ छत्र की भाँति बनकर आपकी सेवा करता था । आप की

हृतचित्तमृगीप्राप्त-दिनान्तश्रान्तिकान्तित ।
यमुनास्नानरम्याङ्ग सुखवायु-प्रपूजित ॥ ३१२ ॥
ब्रह्मादिवन्द्यमानांघ्रे सुहृदानन्द वर्द्धन ।
मदच्छुरितलोलाक्ष मुदिताननपङ्कज ॥ ३१३ ॥
वनमालापरीताङ्ग गजेन्द्रगतिसुन्दर ।
गोपिकाभावितोत्कर्ष हृष्टमातृक पाहि माम् ॥३१४॥नमः ७६॥

ॐ इति दशमस्कन्धे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॐ

अरिष्टत्रासिताशेष-व्रजाश्वासक रक्ष माम् ।
स्वभुजास्फोटनाह्वान वृषभासुरकोपन ॥ ३१५ ॥
उत्पाटितविषाणाग्र घातितोग्रवृषासुर ।
गोकुलारिष्टविध्वंसिन् अरिष्टासुरभञ्जन ॥ ३१६ ॥नमः ७७॥

गानकला ब्रह्मादिक के लिये भी दुर्ज्ञेय थी। आप ईक्षणमात्र से नारियों के हृदय में काम उत्पन्न कर देते थे। आपने निज-चरण से पृथिवी का ताप दूर किया। वनितायें भाव से स्तब्ध हो जाती थीं। हरिणीगण हृतचित्त होकर आपका संग नहीं छोड़ते थे। जब आप सायाह्न में गौओं का सम्भाल करते थे तब उनकी विश्रान्ति होती थी। हे यमुना के स्नान से रम्यांग ! हे सुखमय वायु से सेवित ! हे ब्रह्मादि के द्वारा वन्द्यमान चरण ! हे सुहृदों के आनन्द वर्द्धक ! हे मद-विघूर्णितलोचन ! हे प्रसन्नवदन वाले ! हे वनमाला से वेष्टित ! हे गजेन्द्र गमन से सुन्दर ! हे यशोदा के द्वारा उत्कर्ष भावित ! हे माता के प्रसन्नकारी ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ ३०७ । ३१४ ॥

(नम० ७६)

हे अरिष्टासुर के द्वारा भयभीत समस्त व्रजवासियों को आश्वासन देने वाले ! हे निजभुजों के आस्फाटन के द्वारा उसको आह्वान कारी ! हे वृषभासुर के कोपकारक ! हे उसके सींग के उत्पाटनकारी ! हे वृषभासुर के नाशक ! हे व्रज में अरिष्टों के विध्वंसकारी ! हे अ-

नारदज्ञापितोदन्त-कंस-दुर्मन्त्र-वर्द्धन ।
कंससंप्रार्थिताक्रूर-पुरानयन पाहि माम् ॥ ३१७ ॥
दुष्टोपाय-दुरोद्योग-शताकुलित-कंसराट् ।
राजाज्ञानन्दिताक्रूर जय दानपतिप्रिय ॥३१८॥ नमः ७८ ॥
: ॐ इति दशमस्कन्धे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॐ
जय गोकुलसंत्रासि-केशि-विक्षेपण प्रभो ।
हयासुरमहास्यान्तःप्रवेशितमहाभुज ॥ ३१९ ॥
हेलाहतमहादैत्य जय केशिनिसूदन ।
केशवं केशिमथनं वन्दे त्वां देवतार्च्चितम् ॥३२०॥नमः ७९॥
जय भागवतश्रेष्ठश्रीनारद-समीडित ।
अपरिच्छिन्नसन्मूर्त्ते सर्वजीवेश्वरेश्वर ॥ ३२१ ॥

रिष्टासुरनाशन ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ ३१५ । ३१६ ॥ [नमः ७७]

अब ब्रजलीला की समाप्ति कर मथुरा गमन लीला का उद्घाटन करते हैं—नारद जी के द्वारा आपने कंस को समस्त रहस्य सुना कर उसकी दुर्मन्त्रणा की वृद्धि करायी । कंस ने अक्रूर से आपको मथुरा ले जाने के लिये प्रार्थना की । आपने सब कुछ कराया । आप मेरी रक्षा कीजिये । कंस ने आपको मारने के लिये शत शत मन्द उपायों का उद्योग किया । कंस की आज्ञा प्राप्त होकर अक्रूर जी बड़े प्रसन्न हुए । हे दानपति अक्रूर के प्रिय ! आपकी जय हो॥३१७।३१८॥ [नम० ७८]

हे गोकुल में भय उत्पादन करने वाले केशी दैत्य को शत धनु परिमित दूरस्थान में फेंक देने वाले ! हे प्रचुरशक्तिमान् ! आपने हयासुर के वदन में अपने विशाल भुजा का प्रवेश कराया तथा हेला मात्र में उसे मार डाला । हे केशीनाशन ! केशिमथन, देवताओं से अर्च्चित केशव आपकी वन्दना करता हूँ ॥ ३१९ ॥ ३२० ॥ [नम० ७९]

सृष्टिस्थित्यन्तकृन्मायागुणसृक् सत्यवाञ्छित ।
ऋषिवाक्स्मृतदेवार्थ-कंस-संहरणादिक ॥ ३२२ ॥
नारदज्ञापिताशेषकार्य्य-स्वीकारकोविद ।
दर्शनोत्सव-सहृष्ट-श्रीनारद-नमस्कृत ॥३२३॥ नमः ८० ॥
हे मेषायितगोपाल-पालन-स्तेयविभ्रम ।
गोपवेशधर-व्योमचौर्य्यनीत-सुहृद्गण ॥ ३२४ ॥
दुष्टव्योमासुरग्राहिन् जय व्योमनिपातन ।
मयपुत्रगुहारुद्ध-गोपवर्गविमोचक ॥३२५॥ नमः ८१ ॥
❀ इति दशमस्कन्धे सप्तत्रिंशोऽध्याय. ❀
जय दानपतिख्यात-महामहिमसञ्चय ।
सल्लक्षणार्थसद्भाग्याक्रूरसम्भाविनेक्षण ॥ ३२६ ॥

हे भागवत श्रेष्ठ श्रीनारदजी से सम्यक् स्तुत्य ! हे अपरिच्छिन्न मूर्त्ति स्वरूप ! हे सर्व जीवों के ईश्वर के ईश्वर ! आप सृष्टि स्थिति अन्तकारिणी माया के द्वारा गुणों का सृजन करते हैं। हे सत्यसङ्कल्प ! आपने नारद जी के वचन से देवताओं का कार्य्य-साधन तथा कंस के वधादि को स्मरण किया। नारद जी के द्वारा कहे गये अशेष कार्यों को परम चतुरता से स्वीकार किया। आपके दर्शन उत्सव से प्रसन्न होकर श्रीनारद जी ने आपको नमस्कार किया। हे एतादृश ! आपकी जय हो॥ ३२१। ३२३॥ [नम० ८०]

हे मेष के आचरणकारी गोपालों के पालन में तथा चौर्य्यलीला में निर्भ्रम विहारशाली ! उस समय व्योमासुर गोप वेश धारण कर आपके सखाओं को चोरी करने लगा। आपने उसे जान लिया तथा उसको पकड़ लिया। हे व्योमासुर विघातन ! हे मयपुत्र व्योमासुर के द्वारा गुहा में रुद्ध सखाओं के मोचनकारी ! आपकी जय हो॥ ३२४। ३२५॥ [नम० ८१]

दान-पति अक्रूर ने आपकी महिमाओं का ध्यान किया था। शुभल-

पादाब्जध्यायकाऽक्रूरलालसानन्दवर्द्धन ।
अक्रूररथसम्प्राप्त गोष्ठगोदोहलागत ॥ ३२७ ॥
जय दानपतीद्वाप्त क्षितिकौतुककृत्पद ।
श्वाफल्किलुठनाधानपादाम्बुज-रजोव्रज ॥ ३२८ ॥
जय श्वफल्कतनय-नयनानन्द-वर्द्धन ।
रथान्नुत्तारिताक्रूर जयानन्दाभिवन्दित ॥ ३२९ ॥
सुप्रीत्यालिङ्गिताक्रूर जय प्रणतवत्सल ।
गान्दिनी-नन्दनाशेष-मनोवाञ्छित-पूरक ॥३३०॥नम ८२॥

❀ इति दशमस्कन्धे अष्टात्रिंशोऽध्याय ❀

अक्रूरवर्णिताशेषकंसदुर्वृत्तकोपित ।
देवकीवसुदेवादि-दुःख-श्रवणदुःखित ॥ ३३१ ॥
यात्रामन्त्रितगोपेश मथुरागमनोन्मुख ।
प्रातर्मधुपुरीयानश्रवणाकुलगोकुल ॥ ३३२ ॥

दान रूप धन के सद्भाग्य से युक्त अक्रूर के द्वारा आपके दर्शन की सम्भावना हुई। हे आपके चरण के ध्यानकारी अक्रूर की लालसा-प्रसन्नता के बढ़ाने वाले ! अक्रूर ने रथ में बैठ कर आपको दूर से देखा। आप गोष्ठ में गोदोहनार्थ विराजमान थे। हे अक्रूर के द्वारा दर्शन प्राप्त ! हे वसुन्धरा के अलङ्काररूप चरण कमल वाले ! उस समय अक्रूर जी आपके चरणों की रज में लुण्ठित होने लगे। आपने उनके नयनानन्द के वर्द्धक रूप हो कूद कर उन्हें उठाया तथा उन के द्वारा वन्दित हुए। आप प्रीति के साथ उन्हें आलिङ्गन करने लगे। हे प्रणतवत्सल ! आपकी जय हो। इस प्रकार आप अक्रूर जी की अशेष मनोकामना के पूर्णकारी हैं॥ ३२६। ३३०॥ [नम० ८२]

अक्रूर जी ने कंस के अशेष मन्द कर्म का वर्णन किया, आप उन्हें सुन कर क्रोधित हुए। देवकी-वसुदेवादि के दुःख का श्रवण कर आप दुःखित हुए। तत्पश्चात् मथुरा जाने की मन्त्रणा की।

यशोदाहृदयाशङ्काचिन्ताज्वरशतप्रद ।
शोकाब्धिपातिताशेषव्रजयोषिद्गणाऽत्र माम् ॥ ३३३ ॥
शून्यायमानजगतीगोपीजीवन–तापन ।
गोपीरोदनवार्धारासंवर्द्धितनदीगण ॥ ३३४ ॥ नमः ८३ ॥
जयाक्रूररथारूढ़ गोपीरोदनकातर ।
शकटारूढ़नन्दादि–गोपालगणवेष्टित ॥ ३३५ ॥
गोपीवियोगसन्तप्त राधिकाविरहासह ।
स्वदूतप्रेमसिक्तोक्ति–गोपिकाश्वासनाकुल ॥ ३३६ ॥
गोपीहाहामहारावरोदनार्त्ति–निवर्त्तित ।
मृतप्रायव्रजवधू–चुम्बनालिङ्गनासुद ॥ ३३७ ॥
प्रसीद सान्त्वनाभिज्ञ नानाशपथ-कारक ।
कृतावधिदिनो जीयाः आशाप्राणप्रदायक ॥ ३३८ ॥नमः८४॥

आप मथुरा जाने के लिये उन्मुख हुए। आप प्रभात में मथुरा जायेंगे ऐसा सुनकर समस्त गोकुल व्याकुल होने लगा। उस गमनने यशोदा के हृदय में शत शत शङ्काओं का उत्पादन कर दिया। यशोदा चिन्ता-ज्वर में डूब गयी। समस्त व्रज की रमणियाँ शोकसागर में डूब गयीं। हे श्रीहरि! मेरी रक्षा कीजिये। उस समय गोपियों के लिये त्रिजगत् शून्यमय हो गया। उनका हृदय आपकी विरहाग्नि से तपायमान होने लगा। उनकी रोदनधारा से व्रज की नदियाँ बढ़ने लगी ॥ ३३१। ३३४॥ [नम० ८३]

हे अक्रूर के रथ में आरूढ़! हे गोपियों के रोदन से कातर! हे शकटारूढ़ नन्दादि गोपालों से वेष्टित! हे गोपियों के वियोग से सन्तापायमान! हे राधिका के विरह से असह्य! आप उस समय दूतादि के द्वारा मधुर वचन से गोपियों को आश्वासन देने के लिये व्याकुल हो गये। गोपियों के हाहाकार महारोदनार्त्ति से आप रथ से कूद कर उनसे मिले। मृतप्राय व्रज-वधुओं को चुम्बना-लिंगन के

श्वाफल्कि सञ्चालितयानवाह गोपाङ्गनासवृत-यानमार्गम् ।
धात्रीमहारोदनदुःखित त्वा निर्वाक्यनन्दादिधृत नमामि ॥ ३३९ ॥
मारितस्त्रीकतिपय कतिस्त्रीमूर्च्छनाकर ।
उन्मादितैश्वतद्यूथ रोदितस्त्रीसहस्रक ॥ ३४० ॥
महार्त्तस्वरसभग्नकण्ठीकृतव्रधूशत ।
प्रसीद रथमार्गाङ्क-पातितैरावलागण ॥ ३४१ ॥
अयाशातन्तुनद्धासु कतिस्त्रीकीर्त्तनप्रद ।
मथुरापदवी-व्योदाकुलितैवाङ्गनायुत ॥३४२॥नम =५ ॥
यमुनामज्जिताक्रूर जयाक्रूरस्थस्थित ।
श्वाफल्किचलसन्दृष्ट परमाश्चर्यदर्शक ॥ ३४३ ॥
❀ इति दशमस्कन्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्याय ❀

द्वारा प्राणदायक हुए। हे सान्त्वना देने मे परमचतुर ! हे नाना शपथकारी ! आप प्रसन्न हों। हम "परश्व अवश्य आवेगे" इस प्रकार शत-शत शपथ के द्वारा उनको कुछ आशा देकर उनके प्राण प्रदायक हुए ॥ ३३५-३३८ ॥ (नम =४)

अक्रूर के द्वारा शीघ्र गति से चलायमान रथ के ऊपर बैठने वाले, गोपागनाओं से रथ के मार्ग मे घेरे हुए, माता यशोदा के महान् रोदन से दुःखित, वचनशून्य नन्दादिकों से धृत आप को नमस्कार करता हूँ ॥ ३३९ ॥

उस समय बहुत गोपियाँ मृतप्राया हो गई। कुछ तो मूर्च्छा को प्राप्त हो गई। हे गापीयूथ के उन्मादनकारी ! हे हजारों स्त्रियों को रोदन कराने वाले ! हे महान् आर्त्तनाद मे युक्त शत शत व्रजवधुओं के कण्ठरोध कराने वाले ! आप प्रसन्न हों। आपके रथ-मार्ग मे अबलागण गिरे हुए थे। आपकी आशारूप सूत्र के द्वारा उनका प्राण बँध पाया, वे मन केवल आपका कीर्त्तन करने लगीं। मथुरा-मार्ग मे आपको देख कर शत शत अगना व्याकुल हो गईं। हे

अक्रूरसंस्तुतानादे पद्मनाभादिकारण ।
जगद्दुर्विज्ञेयगते भजमानैकगम्य हे ॥ ३४४ ॥
नानायज्ञार्चनीयाङ्घ्रे नानाख्यारूपमार्गभाक् ।
सर्वगत्यापगाम्भोधे सर्वदेवमयेश्वर ॥ ३४५ ॥
जगदाश्रयसर्व्वाङ्ग ब्रह्माण्डालिगुहोदर ।
शोकघ्नानन्दद श्रीमदवतारावलीयशः ॥ ३४६ ॥
नानाकार्पण्ययिज्ञापि-मुमुक्ष्वक्रूरयाचित ।
स्वप्रेमभक्तिसत्संगदायिस्वैककृपामर ॥ ३४७ ॥
गोप्यवज्ञाहताक्रूरशुष्कस्तोत्राभिवन्दित ।
पितृव्य-विस्मयोदन्तप्रच्छकाद्भुतसागर ॥ ३४८ ॥नमः ८६॥

❀ इति दशमस्कन्धे चत्वारिंशोऽध्यायः ❀

एतादृश ! आप की जय हो ॥ ३४०-३४२ ॥

आपने अक्रूर जी को यमुना मे मज्जन कराया । हे अक्रूर के रथ में स्थित ! आपको अक्रूर जी ने जल में भी देखा । आपका दर्शन परमाश्चर्य्य पूर्ण है । आपकी जय हो ॥ ३४३ ॥

हे अक्रूर के द्वारा संस्तुत ! हे अनादि ! हे कमलनाभ ! हे आदिकारण ! हे जगत् के दुर्विज्ञेय गति वाले ! हे भक्तगम्य ! हे नाना प्रकार यज्ञादि के द्वारा अर्च्चितचरण ! हे नाना प्रकार नाम रूप-मार्ग विशिष्ट ! हे नदियों के समुद्र की भाँति विविध उपासकों के परम आश्रय ! हे सर्व देवमय ! हे ईश्वर ! हे सर्व्वांग रूप से जगत् के आश्रय स्वरूप ! हे ब्रह्माण्ड समूहके स्थित गुहा की भाँति उदरवाले ! आपके सकल अवतार शोकनाशक आनन्दप्रद श्रीयुक्त होकर घोषित हैं । नाना प्रकार के दैन्य से युक्त अक्रूर के द्वारा आपकी मुक्ति प्रार्थित है । आपकी कृपा निज प्रेमभक्ति और सत्संग का दायक है । हे गोपियों के द्वारा अवज्ञा पूर्वक आहत प्राप्त सम्यग् अपराधी अक्रूर के द्वारा भक्तिरहित स्तोत्र से अभिवन्दित ! हे पितृव्य अक्रूर

मथुरोपवनप्राप्त–नन्दादि–स्वजनावृत ।
व्रजार्त्तिकारणाक्रूरगृहयानार्थनाकर ॥ ३४६ ॥
स्वलंकृतमहाश्चर्य्यपुरीदर्शन–हर्षित ।
पुरस्त्रीवृन्द–नयन–मनोहर नमोऽस्तु ते ॥ ३५० ॥
दध्यादिमङ्गलद्रव्यद्विजातिकृतपूजन ।
पुरस्त्रीकृत–गोपस्त्रीपुण्यश्लाघातिनिर्वृत ॥३५१॥नमः ८७॥
मथुराजनसंवीक्ष्य रजकांशुकयाचक ।
दुर्मुखाक्षेपसंक्रुद्ध रजकार–शिरोहर ॥ ३५२ ॥
निजप्रियाम्बरद्वन्द्व–परिधान–विभूषित ।
अभीष्टवस्त्र–संहृष्टरामगोपालिसंयुत ॥ ३५३ ॥
प्रसीद वायकोन्नीतचैलेयाकल्पभूषित ।
नानालक्षणवेशाढ्य हे वायकवरप्रद ॥ ३५४ ॥ नमः ८८ ॥

जी के लिये विस्मय से वार्त्ता के पूछने वाले ! हे अद्भुतता के सागर ! आपकी जय हो ॥ ३४४ । ३४८ ॥ (नम० ८६)

हे मथुरा के उपवन में प्राप्त नन्दादिक स्वजन से परिवृत ! हे व्रज की आर्त्ति के कारणस्वरूप अक्रूर के द्वारा निज गृह में गमन के लिये प्रार्थित ! हे नाना प्रकार से अलंकृत महान् आश्चर्य युक्त मथुरापुरी दर्शन से परम प्रसन्न ! हे मथुरापुरी की रमणीगणके नयनों में मनोहर ! हे दध्यादि मङ्गलद्रव्य से ब्राह्मणों के द्वारा परिपूजित ! हे पुरस्त्रीगण के द्वारा गोपस्त्रियों की प्रशंसा से अत्यन्त आनन्दित ! आपको नमस्कार है ॥ ३४६ । ३५१ ॥ (नम० ८७)

हे मथुरावासियों के द्वारा दर्शनीय ! हे रजक के निकट वस्त्रयाचक ! हे दुर्मुख रजक के आक्षेप वचन से क्रुद्ध ! हे रजक के शिरोच्छेदक ! हे निज प्रिय वस्त्र युगल के परिधान से शोभायमान ! हे वाञ्छनीय वस्त्र प्राप्ति से संहृष्ट राम-गोपालों से युक्त ! हे वायक के द्वारा नील वस्त्र-भूषण, विविध अलंकार से भूषित ! हे नाना प्रकार

प्रसीद हे सुदामाख्यमालाकारगृहागत ।
मालिकप्रीतिपूजाप्तमाल्यवद्भक्तिसंस्तुत ॥ ३५५ ॥
सुगन्धिनानामालालिस्वलंकृत नमोऽस्तु ते ।
सुदामाभीप्सितवरवाञ्छातीतवरप्रद ॥ ३५६ ॥ नमः ८६ ॥

॥ इति दशमस्कन्धे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

सहासनर्मसंप्रश्नार्थितकुब्जानुलेपन ।
कुब्जादत्ताङ्गरागाढय सैरिन्ध्रीचित्तमोहन ॥ ३५७ ॥
कुब्जानुलिप्तसर्वाङ्ग हेऽङ्गरागानुरञ्जित ।
त्रिवक्रावक्रताहर्त्तः कुब्जासौन्दर्य्यदायक ॥ ३५८ ॥
कुब्जाकृष्टाम्बरधर कुब्जाचेष्टातिहासित ।
कृतकुब्जासमाश्वास जय कुब्जावरप्रद ॥ ३५९ ॥ नमः ९० ॥
नानोपायन–ताम्बूल–गन्धादि–वणिगर्चित ।
जत्र चित्रायिताशेषपुरस्त्रीगणवीक्षक ॥ ३६० ॥

वेष से युक्त ! हे याचक के वरदाता ! आप प्रसन्न हों ॥३५२–३५४॥
(नम० ८८)

हे सुदामा नामक मालाकार के गृह में स्वयं उपस्थित ! हे उसके द्वारा परिपूजित ! हे माल्यधारी ! हे भक्ति के द्वारा संस्तुत ! हे सुगन्धि नाना माला से अलंकृत ! हे सुदामा को वाञ्छातीत इप्सित वर के देने वाले ! आपको नमस्कार है ॥ ३५५ । ३५६ ॥ (नम० ८६)

हे हास्य-परिहास-प्रश्नों के द्वारा कुब्जा से अनुलेपन याचना वाले ! हे कुब्जा के द्वारा प्रदत्त राग से युक्त ! हे सैरिन्ध्री के चित्तमोहन ! हे उसके द्वारा सर्वांगलिप्त ! हे अंगराग से अनुरञ्जित ! हे त्रिवक्रा के वक्रताहारी ! हे उसके लिये सौन्दर्यदायक ! हे कुब्जा के द्वारा वस्त्राञ्चलधृत ! हे उसकी चेष्टा से अत्यन्त हास्ययुक्त ! हे कुब्जा को आश्वासन देन वाले ! हे कुब्जा के वरदाता ! आपकी जय हो॥३५७–३५९ ॥
(नमः ९०)

जय प्रफुल्लनयन लीलाहंसितलोचन ।
मत्तनागेन्द्रगमन नागरीगणमोहन ॥ ३६१ ॥
धनुःस्थानप्रश्नकर जयाद्भुतधनुर्धर ।
लीलासज्जीकृतेष्वास कंसकोदण्डखण्डन ॥ ३६२ ॥
धनूरक्षकवृन्दघ्न कंसप्रेषितसैन्यहन् ।
कंसातित्रासजनक शकटावाससंगत ॥ ३६३ ॥ नमः ६१ ॥
॥ इति दशमस्कन्धे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥
कंसकारितमञ्चौघ रंगभूगमनोत्सुक ।
जीयात् कुवलयापीडगजरुद्धपथो भवान् ॥ ३६४ ॥
संक्रुद्धाम्बष्ठनिर्दिष्ट करीन्द्रक्रीडिताऽव माम् ।
सद्यः कुवलयापीडघातिन् सिंहपराक्रम ॥ ३६५ ॥
समुत्पाटितनागेन्द्र महादन्त-वरायुधम् ।
वन्दे कुवलयापीडमर्दनं हतहस्तिपम् ॥ ३६६ ॥ नमः ६२ ॥

हे वणिक् के द्वारा नानोपहार-ताम्बूल-गन्धादि से अर्चित ! उस समय आपका दर्शन कर पुरस्त्रियाँ चित्र की भाँति हो गयी थीं। हे एतादृश ! आपकी जय हो। हे प्रफुल्लनयन ! हे लीलाओं से हसित कटाक्ष दृष्टि-पातकारी ! हे मत्त गजराज की भाँति गमन करने वाले ! हे नागरीगण के मोहन ! आप ने उस समय धनुः स्थल का प्रश्न किया। हे अद्भुत धनुर्धारी ! हे लीलामात्र से धनुः को खींचने वाले ! हे कंस कोदण्ड के खण्डनकारी ! हे धनुष के रक्षकवृन्द को मारने वाले ! हे कंस के द्वारा प्रेषित सैन्य के नाशक ! हे कंस को अति भयभीत करने वाले ! हे शकटावास में गमनकारी ! आपकी जय हो ॥ ३६०-३६३ ॥ (नमः ६१)

हे कंस के द्वारा कृत मञ्चों में तथा रँगभूमि में गमनोत्सुक ! हे कुवलयापीड नामक गज के द्वारा रुद्ध ! आपकी जय हो। जिस समय हस्तिप ने हस्ति को चालना की थी, आप उस समय उससे क्रीड़ा करने

रंगप्रवेशसुभगवीरश्रीपरिभूषित ।
स्कन्धन्यस्त–महादन्त मदरक्तकणाङ्कित ॥ ३६७ ॥
प्रसीद स्वेदकणिकालङ्कृताननपङ्कज ।
रङ्गस्थलोकाभिप्रायभाताशेषरसात्मक ॥ ३६८ ॥
महावीर महारम्य महास्मर महासुहृत् ।
महेश्वर महाग्निग्ध महाकाल महागुरो ॥ ३६९ ॥
महानस्त्व महासेव्य सर्वलोक-मनोहर ।
मप्रेमेत्तकमञ्चस्थ-लोकगीत–महायशः ॥ ३७० ॥नमः ६३॥
चाणूरभाषितं वन्दे चाणूरोत्तरदायकम् ।
चाणूरातिपराक्रान्त मल्लयुद्धविशारदम् ॥ ३७१ ॥नमः ६४॥

❀ इति दशमस्कन्धे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ❀

लगे। शीघ्र ही आपने उसको मार डाला। हे सिंहपराक्रम! मेरी रक्षा कीजिये। आपने उसके दोनों दाँतों को उखाड़ कर आयुध बनाया। हे कुवलयापीड के नाशक! हे हस्तिप के घातक! आपकी वन्दना करता हूँ ॥ ३६४–३६६ ॥ (नमः ६२)

हे रंगमञ्च मे प्रवेशयोग्य सुन्दर वीरश्री से परिभूषित! आपने उन दाँतों को अपने कन्धे में रख लिया। आप मदधर्म्म और रक्तकणों से अङ्कित हो गये। आपका मुखकमल स्वेद-कणिका से अलंकृत हो गया था। रंगस्थल में लोकों के अभिरुचि के अनुसार उस ही प्रकार आप अनुभूत होने लगे। क्योंकि आप अशेष रसात्मक स्वरुप हैं। हे महान् वीर! हे परमकमनीय! हे अप्राकृत महान् कन्दर्प! हे महासुहृत्! हे महान् ईश्वर! हे महान् कोमल! हे महान् कालरूप! हे महान् गुरुस्वरूप! हे महान् तत्त्व! हे परमसेव्य! हे सर्वलोक के मनोहर! हे मञ्चभूमि में स्थित दर्शकों से प्रेम के साथ गीयमान महायश! आप प्रसन्न हों ॥ ३६७–३७०॥ (नमः ६३)
हे चाणूरमल्ल से भाषित! हे उसको उत्तर देने वाले! हे उसको

सहजप्रेममृदुल पुरस्त्रीगणशोचित ।
पुरस्त्रीनिन्दिताशेपसभ्यलज्जातिलज्जित ॥ ३७२ ॥
स्त्रीगणोद्गीतमहिम-व्रजस्त्रीश्रुतिहर्पित ।
पितृमातृमहार्त्तिज्ञ जय चाणूरमर्दन ॥ ३७३ ॥
शलतोपलसंहर्त्त बलघातिकमुष्टिक ।
विद्राविताल्यमल्लौघ राम-पातितकूटक ॥ ३७४ ॥नमः ६५॥
उच्चमञ्चस्थदुष्ट कंसदुर्वाक्यकोपित ।
आत्तासिचर्म्म-सञ्चारिकंसकेशग्रहोद्धत ॥ ३७५ ॥
भूमिपातितभोजेन्द्र कंसोपरिविकूर्दित ।
कंसध्वंसन कंसारे जय कंसनिसूदन ॥ ३७६ ॥

निज विक्रम प्रकाशकारी ! हे मल्लयुद्ध में विशारद ! आपकी वन्दना करता हूँ ॥ ३७१ ॥ (नमः ६४)

सहज प्रीति से मृदुल पुरस्त्रियों के द्वारा "क्या होगा दुष्ट कंस क्या करेगा" इस प्रकार विचार किया गया था। पुरस्त्रियों ने अशेप सभासदों की निन्दा की। उससे आप लज्जित हो गये। पुरस्त्रियों ने व्रजस्त्रियों की महिमा का गान किया। आप उसे सुन कर बड़े प्रसन्न हुए। हे पिता-माता के महान् आर्त्ति को जानने वाले ! हे चाणूरमर्दन ! हे शल-तोपल को मारने वाले ! हे बलराम जी के द्वारा मुष्टिक को मारने वाले ! उस समय अन्य-अन्य मल्लगण आपको मारने के लिये दौड़े। राम ने कूटक को मारा। हे एता-दृश ! आपकी जय हो ॥ ३७२-३७४ ॥ (नमः ६५)

हे उच्च मञ्च में स्थित दुष्ट कंस के दुर्वाक्य से क्रोधप्राप्त ! हे असिचर्म्मधारी चलायमान कंस के केश ग्रहण में उद्धत ! हे कंस को पृथ्वीमें गिराने वाले ! हे उसके ऊपर कूदने वाले ! हे कंसध्वंसीन् ! हे कंसारे ! हे कंस निसूदन ! आपकी जय हो। आप ने पृथिवी के भय, भार तथा आर्त्ति का दूर किया ! हे जग में दुष्टों के विनाशक !

हृतोर्वीभयभारार्त्ते जगच्छल्यविनाशक ।
पितृमातृप्रहर्षार्थ-मृतकंस-विकर्षक ॥ ३७७ ॥
ब्रह्मेशादिसुरानन्दिन् कालनेमिविमुक्तिद ।
बलघातितदुष्टाष्टकंस-सोदर पाहि माम् ॥३७८॥ नम ६६॥
कंसयोषित्समाश्वासिन्नादिष्टमृतसत्क्रिय ।
पितृमातृपदानम्र पितृबन्ध-विमोचक ॥ ३७६ ॥ नम. ६७ ॥
❀ इति दशमस्कन्धे चतुश्चत्वारिंशोऽध्याय ❀
ईशज्ञानाकृताश्लेषजननीतातभाववित् ।
स्नेहवर्द्धन-मिष्टोक्ति-पितृमातृप्रमोदकृत् ॥ ३८० ॥
प्राप्तालिङ्गनमुन्मातृतात-क्रोडाधिरोपित ।
स्नेहवाक्पितृमात्रश्रुधारा-स्नापितमस्तक ॥ ३८१ ॥
परमानन्दित श्रीमद्देवक्यानकदुन्दुभे ।
जय प्रेमसुधान्धादि-ज्ञान दु खनिवारक ॥३८२॥नम ६८॥

हे पिता माता के हर्ष के लिये मृत कंस को खींचने वाले ! हे ब्रह्म-शिवादि देवताओं को आनन्दित करने वाले ! हे कालनेमि के मुक्ति-दाता ! हे बलदेव के द्वारा कंस के आठों भ्राताओं को मारने वाले ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ ३७५-३७८ ॥ (नम ६६)

हे कंस की स्त्रियों को आश्वासन देने वाले ! हे मृत कंस की सत्क्रिया के लिये आदेशकारी ! हे पिता माताके चरणोंमें नमस्कार करने वाले ! हे पिता के बन्धन के विमोचक ! आप रक्षा कीजिये ॥३७६॥ (नम ६७)

ईशता ज्ञान से माता पिता ने आप का आलिङ्गन नहीं किया। आप भी उनके भाव को जान गये। हे स्नेहवर्द्धन तथा मधुर वचनों से पिता माता के प्रमोदकारी ! हे स्नेह के वश आलिङ्गन प्राप्त होकर उनके क्रोडदेश में आरोहण करने वाले ! स्नेह वचन के साथ पिता माता की अश्रुधारा से आपका मस्तक धौत हो गया। हे देवकी और

सद्वाक्यानन्दित–श्रीमदुग्रसेनाधिपत्यद ।
दत्तोग्रसेनराज्यश्रीरुग्रसेननिदेशकृत् ॥ ३८३ ॥
प्रसीदतान् मे भगवन् भक्तवत्सलनामधृक् ।
उग्रसेन–वशानीत–त्रिलोकीरत्नसञ्चय ॥ ३८४ ॥नमः ६६॥
आनीतकंससन्त्रास–प्रोषितज्ञातिबान्धव ।
जय सम्मानिताशेष–यादवावासदायक ॥ ३८५ ॥
सदा दयास्मितालोकानन्दिताखिलयादव ।
जय रोगजराग्लानिहारि–सन्दर्शनामृत ॥ ३८६ ॥
प्रसीद सात्वतश्रेष्ठ यादवेन्द्र प्रसीद मे ।
वृष्णिपुङ्गव मां पाहि दाशार्हाधिप माधव ॥ ३८७ ॥
कुकुरान्धकवंशेन्द्र भैमान्वयविवर्द्धन ।
ययातिकुलपद्मार्क चन्द्रवंशाब्धिचन्द्रमः ॥३८८॥नमः १००॥

आनकदुन्दुभि वसुदेव के परमानन्दकारी ! आपने प्रेमसुख के द्वारा उन के ज्ञान का आच्छादन किया । हे दुःखनिवारक ! आप की जय हो ॥ ३८०–३८२ ॥ (नमः ६८)

हे सद्वचनों से आनन्दित उग्रसेन के लिये आधिपत्य (राजपद) को देने वाले ! हे उग्रसेन के लिये राज्यलक्ष्मी के प्रदाता ! हे उग्रसेन के आज्ञावह ! हे भगवान् ! हे भक्तवत्सल नामधारी ! आप ने उग्रसेन के वश में तीनों जगत् के रत्नों का सञ्चयन किया । आप मेरे लिये प्रसन्न हों ॥ ३८३–३८४ ॥ (नमः ६६)

कंस से भयभीत होकर इधर-उधर चले जाने वाले बन्धुओं को आपने बुलाया तथा सकल यादवों को सम्मानित कर वास कराया । आपकी जय हो । निरन्तर दया-स्मितावलोकन के द्वारा सकल यादवों को आनन्दित किया । आपका दर्शन रोग-जरा-ग्लानि का नाश करने वाला है । आपकी जय हो । हे सात्वतश्रेष्ठ ! आप प्रसन्न हों । हे यादवेन्द्र ! मेरे ऊपर प्रसन्न हों । हे वृष्णिश्रेष्ठ ! हे दाशार्ह के अधिप !

जय श्रीमथुरानाथ मथुरामङ्गल प्रभो ।
मधुरामूर्त्तमाधुर्य्य मथुरामण्डलेश्वर ॥ ३८६ ॥
नित्यश्रीमथुरावासिन् मधुरामाधुरीप्रद ।
हे माथुरमहाभाग्य नमस्ते मथुरापते ॥ ३९० ॥ नमः १०१॥
श्वयश्वोगमनव्याज-राक्षितव्रजनायक ।
प्रसीद मुहुराश्लेषनन्दसम्भाषणाकुल ॥ ३९१ ॥
नानावाक्चातुरीदीन-नन्दरोदनवर्द्धन ।
अत्यालिङ्गनगोपालकुलदुःखाश्रुवाहक ॥ ३९२ ॥
मुहुर्मुह्यत्पतद्वृद्ध-नन्दसान्त्वनकातर ।
वासोऽलङ्कारकुप्यादिदान-मारितनन्द हे ॥ ३९३ ॥

हे माधव ! हे कुक्कुर और अन्धक वंश के इन्द्र ! हे भैमवंश के वर्द्धक ! हे ययातिवंश पद्म के सूर्य्यरूप ! हे चन्द्रवंश सागर के चन्द्रमा ! मेरी रक्षा कीजिये । (सात्वत-यदु-वृष्णि दाशार्ह-मधु-कुक्कुर-अन्धक-भोज ये आठ यदुवंश के भेद हैं) ॥३८४-३८८॥(नमः १००)

हे मथुरानाथ ! हे मथुरामङ्गल ! हे प्रभो ! हे मथुरा में विग्रहधारी माधुर्य्य ! हे मथुरामण्डल के ईश्वर ! हे नित्य मथुराविहारी ! हे मथुरा के माधुर्य्य को बढ़ाने वाले ! हे माथुरों के महान् भाग्य ! हे मथुरापति ! आपकी जय हो ॥ ३८६-३९० ॥ (नमः १०१)

हे आज कल आऊँगा इस प्रकार की आश्वासन से व्रजेश्वर के प्राणरक्षक ! हे वार वार आलिङ्गन प्राप्त होकर नन्द के साथ सम्भाषण में व्याकुल ! आप प्रसन्न हों । नाना प्रकार की वाक्चातुरी करने (दिखाने) पर भी श्रीनन्द दीनता के साथ रोदन करने लगे । गोपालों को आपने आलिङ्गन किया । उनकी दुःखमय अश्रुधारा बहने लगी । व्रजराज वार वार मूर्च्छित होकर गिरने लगे । आप उनको सान्त्वना देने में कातर हो गये । आपने वस्त्र, अलङ्कार, पात्रादि का प्रदान किया परन्तु उससे उनको अधिक मनःसन्ताप बढ़ने लगा । वे

हाहा-महारवाक्रन्दि गोपवृन्दातिमशोकद ।
जलसेकाद्युपानीत-नन्दप्राण प्रसीद मे ॥ ३६४ ॥
त्वरागमनसत्योक्तिविश्वस्तीकृतनन्द माम् ।
पार्श्वे रक्ष सुसन्देशयशोदादैन्यवर्द्धन ॥ ३६५ ॥
मुहुर्मुहुः परावर्त्तमाननन्दाश्रुसंप्लुत ।
नन्दानुव्रजनव्याज व्रजदीनजनामुद ॥ ३६६ ॥
गोप्यर्थप्रेषितस्वीयभूषा-शपथवाचिक ।
निरुध्यमाननेत्राब्ज-वारिधार प्रसीद मे ॥ ३६७ ॥नमः१०२॥

॥ इति श्री भागवतम् ॥

श्रीजगन्नाथ नीलाद्रिशिरोमुकुटरत्न हे ।
दारुब्रह्मन् घनश्याम प्रसीद पुरुषोत्तम ॥ ३६८ ॥
प्रफुल्लपुण्डरीकाक्ष लवणाब्धितटामृत ।
गुटिकोदर मां पाहि नानाभोगपुरन्दर ॥ ३६९ ॥

मृतवत् हो गये। गोपवृन्द ने हा हा महारव से क्रन्दन किया। आप उन सबके विरह दानके भागी हुए। आपने जलादि लेकर सेवासे नन्द के प्राण को फिराया। आप प्रसन्न हों। "मैं शीघ्र आऊँगा" "सत्य करता हूँ" इस प्रकार वचनों से नन्द के लिये विश्वसित किया। हे सुखमय सन्देश के द्वारा यशोदा के दैन्य को बढ़ाने वाले! आप मुझे अपने पास रखिये। हे बार बार परावर्त्तमान नन्द के अश्रुजल से सिञ्चित! हे नन्द के अनुगमन के छल से व्रज के दीन-जन के सुखदाता! आप गोपियों के लिये शपथ देकर निज भूषा-अलङ्कार को भेजने लगे। आप बड़े यत्न से नयन-कमलों के वारि-धारा को रोकने लगे। आप प्रसन्न हों ॥ ३६१-३६७ ॥ (नमः १०२)

अब नीलाचलनाथ की स्तुति करते हैं-हे श्रीजगन्नाथ! हे नीलाद्रि शिखर के मुकुटरत्न! हे दारुब्रह्म! हे घनश्याम! हे पुरुषोत्तम! आप प्रसन्न हों। हे प्रफुल्ल कमलनयन! हे लवण समुद्र

निजाधरसुधादायिन्निन्द्रद्युम्न-प्रसादित ।
सुभद्रालालनव्यग्र रामानुज नमोऽस्तु ते ॥ ४०० ॥
गुण्डिचारथयात्रादिमहोत्सवविवर्द्धन ।
भक्तवत्सल वन्दे त्वां गुण्डिचारथमण्डनम् ॥ ४०१ ॥
दीनहीनमहानीच-दयार्द्रीकृतमानस ।
नित्यनूतनमाहात्म्यदर्शिन् चैतन्यवल्लभ ॥४०२॥नमः१०२॥
श्रीमच्चैतन्यदेव त्वां वन्दे गौराङ्गसुन्दर ।
शचीनन्दन मा पाहि यतिचूडामणे प्रभो ॥ ४०३ ॥
आजानुबाहो स्मेरास्य नीलाचलविभूषण ।
जगत्प्रवर्त्तित-स्वादुभगवन्नामकीर्त्तन ॥ ४०४ ॥

के तट में सुधास्वरूप ! हे नाना भोगविलासी ! आपके नाभिकमल में शालग्राम शिला मौजूद है । आप मेरी रक्षा कीजिये । हे निज-अधरामृत महाप्रसाद के दाता ! हे इन्द्रद्युम्न राजा के प्रसन्नकारी ! हे सुभद्रा जी के लालन में व्यग्र ! हे बलदेव के अनुज ! आपको नमस्कार है । हे गुण्डिचा-रथयात्रादि महोत्सव के वर्द्धक ! हे भक्तवत्सल ! गुण्डिचा रथ के मण्डन ! आपकी वन्दना करता हूँ । आप दीन-हीन-महान् नीचों पर दया करने में स्निग्ध हृदय वाले हैं । नित्य नवीन महिमा के दिखाने वाले हैं । आप निज स्वरूप श्रीचैतन्यमहाप्रभु के वल्लभ अर्थात् आस्वाद्य विषय हुए थे ॥ ४०१-४०२ ॥ (नमः १०२)

हे श्रीचैतन्यदेव ! हे गौरांगसुन्दर ! हे शचीनन्दन ! हे संन्यासिचूडामणि ! हे प्रभो ! मेरा त्राण कीजिये । हे आजानुलम्बित भुज वाले ! हे मन्दहास्य से युक्त ! हे नीलाचल क्षेत्र के विभूषण !' हे जगत् में मधुर निज नाम कीर्त्तन के प्रवर्त्तक ! हे अद्वैताचार्य से प्रशंसित ! हे वासुदेव-सार्व्वभौम को निरन्तर प्रसन्न करने वाले ! हे रायरामानन्द मे प्रीतिकारी ! हे सकल वैष्णवजन के वा-

अद्वैताचार्य्य-संश्लाघिन् सार्व्वभौमाभिनन्दक ।
रामानन्दकृतप्रीत सर्व्ववैष्णववान्धव ॥ ४०५ ॥
श्रीकृष्णचरणाम्भोज-प्रेमामृत-महाम्बुधे ।
नमस्ते दीनदीनं मां कदाचित् किं स्मरिष्यसि ॥४०६॥नमः१०४॥
नमो ब्राह्मणरूपाय निजभक्तस्वरूपिणे ।
नमः पिप्पलरूपाय गोरूपाय नमोऽस्तु ते ॥ ४०७ ॥
नानातीर्थस्वरूपाय नमो नन्दकिशोर ते ।
सर्व्वदा लोकरक्षार्थरूप-पञ्चकधारिणे ॥ ४०८ ॥नमः १०५॥
पाषाणधातुमृद्दारुसिकतामणिलेखजा ।
सप्तधा ते प्रतिकृतिरचला वा चला प्रभो ॥ ४०९ ॥
शालग्रामशिला चाथ यत्र कुत्राप्यवस्थिता ।
यादृशी तादृशी वापि भक्तैर्भक्त्याभिपूजिता ॥ ४१० ॥

न्धव ! निज रूप श्रीकृष्ण के चरणाम्भोज प्रेमामृत के महान् सागर आपको नमस्कार है । दीनातिदीन मुझे क्या कभी आप स्मरण .क· रेंगे ? ॥ ४०३–४०६ ॥ (नमः १०४)

हे ब्राह्मण रूप ! हे निज भक्त स्वरूप ! हे पिप्पल रूप ! हे गो-स्वरूप आपको नमस्कार है । इन चारों स्वरूपों में भगवान् विराज-मान रहते हैं । इन्हें भगवत् रूप से पूजा करें । हे नाना तीर्थस्वरूप नन्दनन्दन ! सदा सर्व्वदा लोकरक्षार्थ ये पञ्च स्वरूप धारी आप को नमस्कार है ॥ ४०७–४०८ ॥ (नमः १०५)

हे प्रभो ! पाषाणमयी-धातुमयी मृण्मयी दारुमयी-सिकतामयी-मणि-मयी-चित्रमयी ये सातों चल-अचल आपकी प्रतिमा हैं । जिस प्रकार शालग्रामशिला जिस किसी भी स्थान में क्यों नहीं हों, रक्षिता या अरक्षिता क्यों न हों, भक्तगण उसकी भक्तिभाव से पूजा करते हैं, ठीक उसी प्रकार इन आठ प्रकार के अर्च्चा-विग्रह में भक्तगण आप-के स्वरूप का निर्देश कर पूजा करते हैं । ये सब प्रत्येक मन्दिरा-

भवताधिष्ठिता सर्व्वा सच्चिदानन्दरूपिणी ।
त्वमेव कथ्यसे सद्भिस्तस्मै तुभ्यं नमो नमः ॥४११॥नमः१०६॥
सर्व्वशास्त्राब्धिपीयूष सर्व्ववेदैकसत्फल ।
सर्व्वसिद्धान्तरत्नाढ्य सर्व्वलोकैकदृक्प्रद ॥ ४१२ ॥
सर्व्वभागवतप्राण श्रीमद्भागवतप्रभो ।
कलिध्वान्तोदितादित्य श्रीकृष्णपरिवर्त्तित ॥ ४१३ ॥
परमानन्दपाठाय प्रेमवर्ष्यक्षराय ते ।
सर्व्वदा सर्व्वसेव्याय श्रीकृष्णाय नमोऽस्तु मे ॥ ४१४ ॥
मदेकबन्धो मत्सङ्गिन् मद्गुरो मन्महाधन ।
मन्निस्तारक मद्भाग्य-महानन्द नमोऽस्तु ते ॥ ४१५ ॥
असाधुसाधुतादायिन्नतिनीचोच्चताकर ।
हा न मुञ्च कदाचिन्मां प्रेम्ना हृत्कण्ठयोः स्फुर॥४१६॥नमः१०७॥

नन्द रूप हैं। इन सब में आप अधिष्ठित हैं। अतएव हे समस्त अर्च्चाविग्रहगण! आपको नमस्कार है नमस्कार है ॥४०६–४११॥
(नमः १०६)

अब श्रीभागवत की स्तुति करते हैं–हे सकल शास्त्र सागर के अमृत स्वरूप! हे समस्त वेद के सत्फल! हे सर्व्व सिद्धान्तरत्नों से युक्त! हे समस्त लोगों की दृष्टि के दाता! हे समस्त सज्जनों के प्राण! हे भागवत प्रभु! हे कलि अन्धकार में उदय प्राप्त सूर्य्य स्वरूप! हे श्रीकृष्ण के प्रतिरूप! हे परम आनन्दमय पाठ स्वरूप! हे अक्षर अक्षर में प्रेम बर्षाने वाले! हे निरन्तर सबके सेवनीय! हे भागवतरूप श्रीकृष्ण! मेरा तुमको नमस्कार है। हे मेरे एक मात्र बन्धु! हे मेरे साथी! हे मेरे गुरु! हे मेरे महान् धन स्वरूप! हे मेरे निस्तारक! हे मेरे भाग्यरूप! हे मेरे आनन्द स्वरूप तुम को नमस्कार है। तुम असाधु को साधु तथा अतिनीच को ऊँचा बनाने वाले हो। मुझको कभी त्याग मत करना। प्रेम से मेरे हृदय-कण्ठ में

श्रीकृष्ण तव कारुण्य-महिम्ने मे नमो नमः ।
यो मां नीचं दुराचारं नित्यपापरतं शठम् ॥ ४१७ ॥
अहो तस्या अवस्थायाः सतामिव दशामिमाम् ।
तस्मात् स्थानादिदं स्थानं मथुरामण्डलं शुभम् ॥ ४१८ ॥
यस्मिन् ज्ञानकृतं वापि सर्व्वपापं न तिष्ठति ।
चतुर्द्धा यत्र मुक्तिः स्यात्त्वं च सन्निहितः सदा ॥ ४१९ ॥
यस्मिन् स्वसन्महिम्नैवार्पितो वससि नित्यदा ।
निजमाधुर्य्यसम्पत्त्या मधुरेति यदुच्यते ॥ ४२० ॥
तथा तस्माच्च दुःसङ्गाद् यस्त्वत्प्रियतमस्य हि ।
श्रीमच्चैतन्यदेवस्य सङ्गं नीलाचले तथा ॥ ४२१ ॥
स्थोपरि तव श्रीमन्मुखदर्शन-कौतुकम् ।
पुनर्वृन्दावनं ह्येतत् तत्तत्क्रीडास्पदं तव ॥ ४२२ ॥

स्फूर्त्ति वाले हो ॥ ४१२-४१६ ॥ (नमः १०७)

हे श्रीकृष्ण ! आपकी कृपा महिमा को मेरा बार बार प्रणाम है। जो आपकी करुणा ने नीच-दुराचारी-नित्य पापाचारी-शठ मेरा उस महाजघन्य राजसेवक अवस्था से उद्धार कर मुझे सदाचारयुक्त इस साधु अवस्था का दान किया है। तात्पर्य्य यह है कि मैं विषयीजनों से कलुषित राजदरबार में निमग्न था। उस पद से मुझको निकाल कर समस्त मङ्गल के निधान मथुरा मण्डल में वास दिया। उस मथुरा में अज्ञान कृत पापों की वार्त्ता तो दूर रही, ज्ञान कृत सकल पाप भी जहाँ नहीं ठहर सकते हैं। जहाँ सालोक्यादि चार प्रकार की मुक्ति स्वयं प्राप्त हो जाती है अथवा जहाँ जन्म, उपनयन, मृत्यु, प्राप्त होने पर मनुष्यों की मुक्ति होती है। जहाँ आप निरन्तर विराजमान हैं। जहाँ आप अपनी अत्युत्कृष्ट महिमा का सार प्रकट कर सर्व्वदा विलास करते हैं और जो स्थान अपने माधुर्य्य सम्पत्ति के भाववश "मधुरा" करके कहा जाता है। आपकी उस करुणा ने दुः-

गोपिका यस्य सत्कीर्त्ति भवांश्चावर्णयन् गुणान् ।
दूरस्थाः श्रवणाद् यस्य लभन्ते प्रेम ते शुभाः ॥ ४२३ ॥
चराचरं प्राणिजातं यस्य त्वत्प्रेमसंप्लुतम् ।
नित्यमद्यापि यस्मिंस्त्वपूर्ववत् क्रीडसि स्फुटम् ॥ ४२४ ॥
अत्रैव त्वत्प्रियं यश्च मेदृकधनजीवनम् ।
प्रापयन् मे पुनः सङ्गं तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ ४२५ ॥
अधुना यो मम मुखाञ्जिःसारयति नाम ते ।
कदाचिच्चरणाम्भोजं हृदि मे स्मारयत्यपि ॥ ४२६ ॥
मत्कायेनाधमेनापि नमस्ते कारयेदयम् ।
सर्वोपद्रवोऽपि मां रक्षेद् दद्यात्ते भक्तिसम्पदम् ॥ ४२७ ॥

संग से मुझे निकाल कर श्रीनीलाचलक्षेत्र में आपके अधिकप्रियतम स्वरूप (जिस स्वरूप से आपका राधाभाव आस्वादन की पूर्त्ति हुई है) उस श्रीकृष्णचैतन्यदेव विग्रह का संगलाभ दिया । मैंने रथ के ऊपर आपके मुखदर्शन के कौतुक का अवलोकन किया फिर भी उस करुणा ने आपकी उन-उन क्रीड़ाओं के आस्पद इस वृन्दावन में संगत कराया, जिसकी कीर्त्ति को गोपिगण तथा स्वयं आप ही वर्णन करते है । जिसके श्रवण से दूरस्थ भी विशुद्ध होकर आपके प्रेम का लाभ करते हैं । जहाँ के चराचर सकल प्राणी आपके प्रेम से परि-प्लुत हैं । जहाँ नित्य अब तक भी पहले की तरह आप क्रीड़ा करते हैं । आपकी उस करुणा ने फिर आपके परमप्रिय, मेरे एक मात्र प्राण और धन,महाभागवत, रसिकवर श्रीरूप का संगदान दिया है। उस आपकी करुणा को नित्य नमस्कार है नमस्कार है ॥४१७–४२५॥

जो आपकी वह करुणा अभी मेरे मुख से आप का नाम का निःसरण कराती है, जो कभी कभी आपके चरणों को मेरे हृदय में स्फूर्त्ति कराती है, जो इस अधम शरीर से भी आपके इस नमस्कार को कराती है, जो समस्त पाप से मुझको रक्षा करती है, जो आपकी

दातुं शक्नोति मेऽजस्रं प्रेमस्मरणकीर्त्तनम् ।
तव प्रेमकटाक्षं च मयि श्राययितुं क्षमः ॥ ४२८ ॥
गोगोपगोपिकासक्तं त्वां च दर्शयितुं प्रभुः ।
एवं यो मम हीनस्य सर्वाशालम्बनं परम् ॥ ४२९ ॥
महाकारुण्यमहिमा पुराणो नित्यनूतनः ।
त्वदीयः सच्चिदानन्दस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ ४३० ॥
एतल्लीलास्तवं नाम स्तोत्रं श्रीकृष्ण ! तारकम् ।
प्रणामाष्टोत्तरशते योऽर्थावगमपूर्व्वकम् ॥ ४३१ ॥
कीर्त्तयेत् सोऽचिराद् भक्तो लभतां कृपया तव ।
रूपे नामनि लीलायामाक्रीडेऽपि परां रतिम् ॥४३२॥नमः१०८॥

❀ इति श्रीकृष्णलीलास्तवनाम स्तोत्रं समाप्तम् ❀

भक्ति सम्पत्ति के प्रदान में परम समर्थ है,जो निरन्तर आपके प्रेम-स्मरण-कीर्त्तन के दात्री है–जो मुझ को भी आप के प्रेमकटाक्ष की प्राप्ति करा सकती है, जो गो गोप-गोपीजन से वेष्टित आपका दर्शन कराने में सक्षम है, इस प्रकार दुर्गतजन की समस्त आशा का जो परम अवलम्बन है, बहुत पहिले जिसकी प्राप्ति होने पर भी नित्य नूतन की भाँति प्रतीयमान होती है, आपकी उस सच्चिदानन्दरू-पिणी महाकारुण्य महिमा को बार बार नित्य नमस्कार है नमस्कार है ॥ ४२८–४३० ॥

अब ग्रन्थ का फल कहते हैं—हे श्रीकृष्ण ! जो व्यक्ति अर्थ-ज्ञान के साथ भवसागर के कर्णधार स्वरूप इस लीलास्तव नामक स्तोत्र का अष्टोत्तर शत प्रणाम करके कीर्त्तन करेगा वह भक्त शीघ्र ही आपकी कृपा से आपके रूप–नाम–लीला–लीलाभूमि में परारति का लाभ करेगा ॥ ४३१–४३२ ॥ (नमः १०८)

इति श्रीकृष्णलीलास्तव का अनुवाद समाप्त हुआ ॥

॥ स्थान–मथुरा समय-पौषसंक्रान्ति ॥ (सं० २०१०)

गौरगणोद्देशदीपिका



श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः ॥

यः श्रीवृन्दावनभुवि पुरा सच्चिदानन्दसान्द्रो
गौराङ्गीभिः सदृशरुचिभिः श्यामधामा ननर्त्त ।
तासां शश्वद्दृढतरपरीरम्भसम्भेदतः किं
गौराङ्गः सन् जयति स नवद्वीपमालम्बमानः ॥ १ ॥

नमस्यामोऽस्यैव प्रियपरिजनान् वत्सलहृदः
प्रभोरद्वैतादीनपि जगदघौघक्षयकृतः ।
समानप्रेमाणः समगुणगणास्तुल्यकरुणाः
स्वरूपाद्या येऽमी सरसमधुरास्तानपि नुमः ॥ २ ॥

गुरुं नः श्रीनाथाभिधमवनिदेवान्वयविधुं
नुमो भूपारत्नं भुव इव विभोरस्य दयितम् ।
यदास्याद्धुन्मीलन्निरवकरवृन्दावनरहः
कथास्वादं लब्ध्वा जगति न जनः कोऽपि रमते ॥ ३ ॥

जो सच्चिदानन्दमय, श्यामकान्ति श्रीहरि ने पहले श्रीवृन्दावन भूमि में समान कान्तिमती गौरांगियों के साथ नृत्य विलास किया है यह श्रीहरि उनके निरन्तर गाढ़ालिंगन भेद से गौरांग स्वरूप हो कर श्री नवद्वीप आश्रय के द्वारा जय प्राप्त हो रहे हैं ॥ १ ॥

जगत् के पाप समूह का नाश कारी, वत्सल हृदय अद्वैतादिक प्रिय परिकरों को तथा समान प्रीतिवाले, समान गुणशाली, समान करुण हृदय, सरस मधुर स्वरूपादिक प्रभु के गण को नमस्कार करते हैं ॥ २ ॥

प्रभु के परमप्रिय, ब्राह्मण कुल में चन्द्ररूप, जगत् के भूषण रत्न

पितर श्रीशिवानन्दं सेनवंशप्रदीपकम् ।
वन्देऽहं परया भक्त्या पार्षदाग्र्यं महाप्रभोः ॥ ४ ॥
ये विख्याता. परीवारा. श्रीचैतन्यमहाप्रभोः ।
नित्यानन्दाद्वैतयोश्च तेषामपि महीयसाम् ।
गोपालानाञ्च पूर्व्वाणि नामानि यानि कानिचित् ।
स्वस्वग्रन्थे स्वरूपाद्यैर्दर्शितान्यादिसूरिभिः ।
विलोक्यान्यानि साधूना मथुरोड्रनिवासिनाम् ।
गौडीयानामपि मुखाच्छ्रिशम्य स्वमनीषया ।
विविच्याम्रेडितः कैश्चित् कैश्चित्तानि लिखाम्यहम् ।
नाम्ना श्रीपरमानन्ददासः सेवितशासनः ॥ ५ ॥
यद्वत्पुरा कृष्णचन्द्रः पञ्चतत्त्वात्मकोऽपि सन् ।
यातः प्रकटता तद्वद्गौरः प्रकटतामियात् ॥ ६ ॥

उन श्रीनाथ नामक गुरुदेव को नमस्कार । जिनके मुख नि स्मृत श्रीकृष्ण का मधुर वृन्दावन सम्बन्धी निर्जन केलि कथा स्वाद का लाभ कर जगत् में कौन व्यक्ति आनन्द को प्राप्त नहीं हुआ है। अर्थात् सभी आनन्द को प्राप्त हुए हैं ॥ ३ ॥

महाप्रभु के पार्षदप्रवर, सेनवश के प्रदीप, पिता श्रीशिवानन्दसेन की परम भक्ति के साथ वन्दना करता हूँ ॥ ४ ॥

श्रीचैतन्य महाप्रभु के तथा श्रीनित्यानन्द और अद्वैतप्रभु के जो सकल विख्यात परिवार है महानुभाव गोपवंशियों का जो नामसमूह प्रसिद्ध है उन सबका आदि विद्वान् स्वरूपादि महात्मागण ने निज निज ग्रन्थ मे प्रकाश किया है। उन ग्रन्थों का अवलोकन कर तथा मथुरा-उत्कल-गौड निवासी साधु वैष्णवों का मुख से सुन कर निज बुद्धि के द्वारा विवेचना कर महानुभाव कुछ साधु व्यक्ति के बार बार अनुरोध से प्रभुपरिकरों से शासन प्राप्त, परमानन्ददास नामक मैं इस ग्रंथ को लिखता हूँ ॥ ५ ॥

स्वाभिन्नेन युतः तत्त्वं पञ्चतत्त्वमिहोच्यते ।
अन्यथा तदसम्बन्धात्तत्तत्त्वं स्याच्चतुष्टयम् ॥ ७ ॥
तद्भिन्नं यत्तदेवात्र तदभिन्नं विभाव्यताम् ।
यतः स्वयेच्छया शक्त्या कृष्णस्तादृशतां गतः ॥ ८ ॥
अतः स्वरूपचरणैरुक्तं तत्त्वनिरूपणे ।
उपाधिभेदात् पञ्चत्वं तत्त्वस्येह प्रदर्श्यते ॥ ९ ॥
"पञ्चतत्त्वात्मकं कृष्णं भक्तरूपस्वरूपकम् ।
भक्तावतारं भक्ताख्यं नमामि भक्तशक्तिकम्" ॥ १० ॥
अस्यार्थो विवृतस्तैर्यः स संक्षिप्य विलिख्यते ।
भक्तरूपो गौरचन्द्रो यतोऽसौ नन्दनन्दनः ।
भक्तस्वरूपो नित्यानन्दो व्रजे यः हलायुधः ।
भक्तावतार आचार्य्योऽद्वैतो यः श्रीसदाशिवः ।

जिस प्रकार पहले श्रीकृष्णचन्द्र ने पञ्चतत्यात्मक स्वरूप से अवतार लिया था ठीक उसी प्रकार गौरचन्द्र ने पञ्चतत्व स्वरुप से अवतार लिया ॥ ६ ॥

यहाँ निज से अभिन्न युक्त तत्व पञ्चतत्व करके कहा जाता है। नहीं तो पञ्चतत्व सम्बन्धी के अभावसे चार ही तत्व रह जायगें अर्थात् असम्भव के वश चार तत्व की आपत्ति उठ सकती है ॥ ७ ॥

श्रीकृष्ण से जो भिन्न है वहाँ वह अभिन्न करके माना जायगा। क्योंकि श्रीकृष्ण ही निज इच्छा शक्ति के अनुसार उस प्रकार प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

इस लिये स्वरूपगोस्वामि चरण ने तत्त्वनिरुपण में कहा है कि उपाधिभेद से तत्व का पाँच प्रकार है। उन्हे यहाँ दिखाते हैं। "भक्तरुप, भक्तस्वरूप, भक्तावतार, भक्ताख्य, भक्तशक्तिक रूप से पञ्चतत्वात्मक श्रीकृष्ण का नमस्कार करता हूँ" ॥ १० ॥

भक्ताख्याः श्रीनिवासाद्या यतस्ते भक्तरूपिणः ।
भक्तशक्तिर्द्विजाग्रण्यः श्रीगदाधरपण्डितः ॥ ११ ॥
श्रीमद्विश्वम्भराद्वैतनित्यानन्दावधूतकाः ।
अत्र त्रयः समुन्नेया विग्रहाः प्रभवश्च ते ।
एको महाप्रभुर्ज्ञेयः श्रीचैतन्यो दयाम्बुधिः ।
प्रभू द्वौ श्रीयुतौ नित्यानन्दाद्वैतौ महाशयौ ।
गोस्वामिनो विग्रहाश्च ते द्विजश्च गदाधरः ।
पञ्चतत्त्वात्मका एते श्रीनिवासश्च पण्डितः ॥ १२ ॥
यदुक्तं तत्र गोस्वामिश्रीस्वरूपपदाम्बुजैः ।
त्रयोऽत्र विग्रहा ज्ञेयाः प्रभवश्चात्र ते त्रयः ।
एको महाप्रभुर्ज्ञेयो द्वौ प्रभू सम्मतौ सताम् ॥ १३ ॥

उनने इस का अर्थ विस्तार करके कहा है । उसका संक्षेप हम लिखते हैं । जो नन्दनन्दन हैं वे भक्तरूप में श्रीगौरचन्द्र हैं । व्रज में जो बलदेव जी हैं वे भक्तस्वरूप नित्यानन्दचन्द्र हैं । जो सदाशिव हैं वे भक्तावतार अद्वैत आचार्य हुए । श्रीनिवासादि भक्ताख्य करके प्रसिद्ध हैं,क्योंकि वे सब भक्तरूप हैं । द्विजश्रेष्ठ श्रीगदाधरपण्डित भक्तशक्ति रूप हैं ॥ ११ ॥

श्रीमान्विश्वम्भर, अद्वैताचार्य और अवधूत-नित्यानन्द ये तीनों भगवद् विग्रह प्रभु नाम से ख्यात हैं । इन तीनों में से करुणा के समुद्र श्रीचैतन्य "महाप्रभु" तथा श्रीनित्यानन्द, अद्वैत महाशय दोनों "प्रभु" हैं ऐसा जानना । वे सब गोस्वामि विग्रह हैं । द्विज गदाधर श्री निवास पण्डित ये सब पञ्चतत्त्वात्मक हैं ॥ १२ ॥

इस विषय में स्वरूप गोस्वामि चरण ने कहा है—ये तीनों भगवद्विग्रह तथा प्रभु करके ख्यात हैं । उनमें से एक तो "महाप्रभु" अन्य दोनों प्रभु हैं । यह साधुओं का सम्मत है ॥ १३ ॥

एषां पार्षदवर्गा ये महान्तः परिकीर्त्तिताः ।
नित्यानन्दगणाः सर्व्वे गोपाला गोपवेशिनः ।
एषां सम्बन्धसम्पर्कादुपगोपालसत्तमाः ॥ १४ ॥
तत्र श्रीमन्नद्वीपे विश्वम्भरसमीपतः ।
विलसन्ति स्म ते ज्ञेया वैष्णवा हि महत्तमाः ॥ १५ ॥
नीलाचले ये ये ख्यातास्ते हि ज्ञेया महत्तराः ।
दक्षिणादिदिशां याने यैर्यैः सङ्गो महाप्रभोः ।
ते ते महान्तो मन्तव्याः परे ज्ञेयाः स्वयोग्यतः ॥ १६ ॥
अतः स्वरूपचरणैरुक्तं गौरनिरूपणे ।
पञ्चतत्त्वस्य सम्पर्कात् ये ये ख्याता महत्तमाः ।
ते ते महान्तो गोपालाः स्थानान्छ्रैष्ठ्यादिवाचकाः ॥ १७ ॥
रसज्ञाः श्रीवृन्दावनमिति यमाहु र्बहुविदो
यमेतं गोलोकं कतिपयजनाः प्राहुरपरे ।

इनके पार्षदगण महान्त कहलाते हैं । नित्यानन्द प्रभु के गण समूह गोपवेशी गोपाल हैं । इनके सम्पर्क से कतिपय उपगोपाल करके कहलाते हैं ॥ १४ ॥

श्रीमन्नवद्वीप धाम में विश्वम्भर के निकट जो विलास करते हैं उन्हें महत्तम वैष्णव, नीलाचलधाम में जो विराजमान हैं उन्हें महत्तर वैष्णव जानना । महाप्रभु के दक्षिण गमन में जिन महात्माओं के साथ उनका सम्पर्क हुआ है वे सब महान्त हैं । अन्यान्यव्यक्ति निज निज योग्यता के अनुसार पीछे महान्त नाम से अभिहित हुए हैं ॥ १५–१६ ॥

इसलिये स्वरूप चरण ने गौरनिरूपण में कहा है । पञ्चतत्त्व के सम्पर्क से जो जो महत्तम करके ख्यात हैं वे सब विख्यात गोपाल महान्त हैं । स्थान के अनुसार उन सबका श्रेष्ठत्व निरूपण किया जाता है ॥ १७ ॥

सितद्वीपं प्राहुः परमपि परव्योम जगद्
नवद्वीपः सोऽयं जयति परमाश्चर्यमहिमा ॥ १८ ॥
तस्मिन् वासमुरीचकार नृहरिर्विश्वम्भराख्यां दध-
त्तच्चेष्टावशतः समस्तमहतां वासोऽपि तत्राभवत् ।
तैः साकं महती हरेरनुगुणाकारापि लीलाभवद्
यत्रासीत् जगतां मनोऽपि परमानन्दाय मग्नं यतः ॥ १९ ॥
यः सत्ये सितवर्णमादधदसौ श्रीशुक्लनामाभव-
त्त्रेतायां मखभुङ्मखाख्य उचितोऽभूद्रक्तवर्णं दधन् ।
यः श्यामो दधदास वर्णकममुं श्यामं युगे द्वापरे
सोऽयं गौरविधुर्विभाति कलयन्नामावतारं कलौ ॥ २० ॥
प्रादुर्भूताः कलियुगे चत्वारः साम्प्रदायिकाः ।
श्री-ब्रह्म-रुद्र-सनकाह्वयाः पाद्मे यथा स्मृताः ।

रसिकगण जिसको वृन्दावन, तत्त्ववेत्ता साधुगण जिसको गोलोक, कुछ व्यक्ति जिसे श्वेतद्वीप अपर कोई कोई परव्योमधाम कहते हैं, वह श्रीनवद्वीपधाम परम आश्चर्यशाली होकर जय को प्राप्त हो रहा है॥१८॥

जहाँ विश्वम्भर पुरुषोत्तम ने वास किया है। जहाँ उनकी लीला-चेष्टा से समस्त महान्त गण का क्रमशः वास हुआ था तथा उन्हीं के साथ प्रभु की श्रीकृष्ण का गुणानुरूप लीला का अनुकरण जहाँ हुआ। जिससे जगज्जीवों का मन परमानन्द में मग्न हो जाता है वह श्रीनवद्वीप धाम है ॥ १९ ॥

जो वे सत्ययुग में शुभ्रवर्ण तथा शुक्ल नाम का धारण करते हैं, जिसने त्रेतायुग में रक्तवर्ण होकर मखभुक् नाम का धारण किया है, जो द्वापर में श्याम होकर श्याम नाम से कहे गये हैं वे ही भगवान् गौर रूप से श्रीगौरांग नाम से कलिकाल में अवतीर्ण हुए हैं ॥ २० ॥

अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः ।
श्री-ब्रह्म रुद्र-सनका वैष्णवा क्षितिपावनाः ॥ २१ ॥
तत्र माध्वीसम्प्रदाय. प्रस्तावादत्र लिख्यते ।
परव्योमेश्वरस्यासीच्छिष्यो ब्रह्मा जगत्पति. ।
तस्य शिष्यो नारदोऽभूद् व्यासस्तस्याप शिष्यता ।
शुको व्यासस्य शिष्यत्वं प्राप्तो ज्ञानावरोधतात् ।
तस्य शिष्यः प्रशिष्याश्च बहवो भूतले स्थिता. ।
व्यासाल्लब्धकृष्णदीक्षो मध्वाचार्यो महायशा ।
चक्रे वेदान् विभाज्यासौ संहिता शतदूषणीम् ।
निर्गुणाद् ब्रह्मणो यत्र सगुणस्य परिष्क्रिया ॥
तस्य शिष्योऽभवत् पद्मनाभाचार्यमहाशय ।
तस्य शिष्यो नरहरिस्तच्छिष्यो माधवद्विज ।

कलिकाल में श्री, ब्रह्म, रुद्र और सनक नाम से चार सम्प्रदाय प्रादुर्भूत होंगे ऐसा पद्मपुराण में लिखा है। "अत. कलिकाल में वैष्णव सम्प्रदाय चार होंगे। श्री, ब्रह्म, रुद्र और सनक ये परम पावन चतु सम्प्रदाय के आचार्य है"। यहाँ प्रस्ताव क्रम से माध्वीसम्प्रदाय की परम्परा वर्णन करते है। परव्योमेश्वर श्रीहरि के शिष्य जगत्पति ब्रह्मा जी, ब्रह्मा के नारद, नारद जी के व्यासजी शिष्य हुए। ज्ञान के अवरोध के कारण श्रीशुक व्यास देवजी के शिष्यत्व प्राप्त हुए। शुकदेव के जगत् में बहु शिष्य प्रशिष्य हुए। महायशस्वी मध्वाचार्य ने व्यासदेव के निकट कृष्णमन्त्र की दीक्षा ली। उन्होने वेदों का विभाग कर शतदूषणी नामक संहिता की रचना की। जिसमें निर्गुण ब्रह्म से सगुणब्रह्म की परिष्कृत मीमासा की गयी है। उनके शिष्य महाशय पद्मनाभाचार्य हुए हैं। पद्मनाभ के नरहरि, उनके माधवद्विजोत्तम, माधव के अक्षोभ, अक्षोभ के जयतीर्थ, ज-

अक्षोभस्तस्य शिष्योऽभूत्तच्छिष्यो जयतीर्थकः ।
तस्य शिष्यो ज्ञानसिन्धुस्तस्य शिष्यो महानिधिः ।
विद्यानिधिस्तस्य शिष्यो राजेन्द्रस्तस्य सेवकः ।
जयधर्म्मं मुनिस्तस्य शिष्यो यद्गणमध्यतः ।
श्रीमद्विष्णुपुरी यस्तु भक्तिरत्नावलीकृतिः ।
जयधर्म्मस्य शिष्योऽभूद् ब्रह्मण्यः पुरुषोत्तमः ।
व्यासतीर्थस्तस्य शिष्यो यश्चक्रे विष्णुसंहिताम् ।
श्रीमाल्लक्ष्मीपतिस्तस्य शिष्यो भक्तिरसाश्रयः ।
तस्य शिष्यो माधवेन्द्रो यद्धर्मोऽयं प्रवर्त्तितः ।
कल्पवृक्षस्यावतारो व्रजधामनि तिष्ठतः ।
प्रीतप्रेयोवत्सलतोज्ज्वलाख्यफलधारिणः ॥ २२ ॥
तस्य शिष्योऽभवच्छ्रीमानीश्वराख्यपुरी यतिः ।
कलयामास शृङ्गारं यः शृङ्गारफलात्मकः ॥ २३ ॥
अद्वैतः कलयामास दास्यसख्ये फले उभे ।
श्रीमान्रङ्गपुरी ह्येष वात्सल्ये यः समाश्रितः ॥ २४ ॥

यतीर्थ के ज्ञानसिन्धु, उनके महानिधि, महानिधि के विद्यानिधि, उन के राजेन्द्र, उनके जयधर्म्ममुनि हुए। उन जयधर्म्ममुनि के शिष्य विष्णुपुरी जी हैं। जिन्होंने भक्तिरत्नावली की रचना की। ब्राह्मण जयधर्म्म के दूसरे शिष्य पुरुषोत्तम हुए। उनके शिष्य व्यासतीर्थ हुए जिन्होंने विष्णुसंहिता की रचना की। उनके शिष्य भक्तिरस के आश्रय श्रीमान् लक्ष्मीपति हुए। उन्हीं लक्ष्मीपति के शिष्य माधवेन्द्र यति हुए। जिनसे प्रेमभक्ति का प्रवर्त्तन हुआ। और भी जो वृन्दावन में कल्पवृक्ष स्वरूप हैं, जो प्रीत-प्रेय-वत्सल तथा उज्वल नामक फल का धारण करने वाले हैं, माधवेन्द्रजी उनका अवतार हैं। उनके श्रीयति ईश्वरपुरी नामक शिष्य हुए। उन्होंने शृंगार फल स्वरूप हो कर शृंगाररस का विस्तार किया। अद्वैतप्रभु ने दास्य-सख्य उभय

ईश्वराख्यपुरीं गौर उररीकृत्य गौरवे।
जगदाप्लावयामास प्राकृताप्राकृतात्मकम् ॥ २५ ॥
स्वीकृत्य राधिकाभावकान्ती पूर्वसुदुष्करे।
अन्तर्बहिरसाम्भोधिः श्रीनन्दनन्दनोऽपि सन् ॥ २६ ॥
आद्यव्यूहोऽपि चैतन्यमविशत् यः पुरे पुरा।
विचुक्षोभ मनस्तस्य दृष्ट्वा गन्धर्व्वनर्त्तनम् ॥ २७ ॥
द्वारकास्थोऽपि भगवानविशत् श्रीशचीसुतम्।
नानावतारः सुतरामेककालप्रभावतः ॥ २८ ॥
यथा श्यामोऽविशत् कृष्णं भगवन्तं पुरा स्वयम् ॥ २९ ॥
योगमायाबलादेते तिष्ठन्तोऽन्यत्र यद्यपि।
तथापि प्राविशन् गौरेऽचिन्त्यलक्षणलक्षिताः ॥ ३० ॥
यथोक्तं व्यासचरणैः प्रभासखण्डमध्यतः।
अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केन योजयेति ॥३१॥

फल का तथा रंगपुरी ने वात्सल्य का प्रकाश किया है। श्रीगौरचन्द्र भगवान् ने उन ईश्वरपुरी को गुरुत्व रूप से वरण किया तथा प्राकृत-अप्राकृतमय जगत् को प्रेम की बाढ़ में बहाया। रस सागर श्रीनन्दनन्दन पहिले सुदुष्कर राधिका की भाव कान्ति को अन्तर तथा बाहिर में स्वीकार कर अब गौरांगरूप में अवतीर्ण हुए। आद्यव्यूह वासुदेव पहले द्वारकापुरी में गन्धर्व्वनृत्य का अवलोकन कर क्षुब्ध हो गये थे। अब वे श्रीचैतन्य विग्रह में प्रवेश हुए। एक ही समय नाना स्वरूप का प्राकट्य होने के कारण महाप्रभु को नानावतार कहा जाता है। जिस प्रकार श्याम अवतार पहले भगवान् कृष्ण में प्रवेश हुए हैं। यह सब प्रभु को अघटन घटनापटीयसी योगमाया शक्ति के प्रभाव से होता है। यद्यपि युगावतारादि अन्यत्र वर्तमान रहते हैं तो भी श्रीचैतन्य स्वरूप में उनका प्रवेश अचिन्त्य शक्ति योग के हेतु जानना उचित है। श्रीव्यासचरण ने प्रभासखण्ड

रघुनाथं प्रविश्यापि यथा तिष्ठति भार्गवः ।
एवं श्रीनारदमुखास्तिष्ठन्त्यन्येषु धामसु ।
तथैव प्रभुना सार्द्धं क्रीडयन्ति श्रुतिदेहवत् ॥ ३२ ॥
किन्तु यद्यद्भक्तगणा यद्यद्भावविलासिनः ।
तत्तद्भावानुसारेण व्रजे तेषामभूद्गतिः ॥ ३३ ॥
गौरचन्द्रोदयेऽद्वैतं प्रति गौरवचो यथा ।
दास्ये केचन केचन प्रणयिनः सख्यैकयोरुभये
राधामाधवनिष्ठिताः कतिपये श्रीद्वारकाधीशितुः ॥
सख्यादावुभयत्र केचन परे ये वावतारान्तरे ।
मय्याबद्धहृदोऽखिलान् वितनवै वृन्दावनासङ्गिनः ॥ ३४ ॥
पर्जन्यो नाम गोपाल आसीत् कृष्णपितामहः ।
उपेन्द्रमिश्रः सन् जातः श्रीहट्टे सप्तपुत्रवान् ॥ ३५ ॥

में कहा है—"अचिन्त्यभाव सकल तर्क के द्वारा योजित नहीं होते हैं ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार परशुराम जी रघुनाथस्वरूप में प्रवेश होकर अन्य स्वरूप में विराजमान रहे ठीक उसी प्रकार जानना चाहिए। नारदादिक ऋषिगण अन्य धाम में रह कर भी उसी प्रकार श्रुतिविग्रह की भाँति श्रीमहाप्रभु के साथ क्रीडा करते हैं। जो–जो भक्तगण जिस जिस भाव के विलासी हैं, उन सब की उस उस भावानुसार व्रज में गति होती है। गौरचन्द्रोदय में अद्वैत प्रभु के लिये महाप्रभु का वचन है। हे अद्वैत ! कोई दास्य में, कोई प्रणयिजन मेरे सख्य मे, कोई दास्य–सख्य के मिश्रणभाव में, कोई राधामाधवनिष्ठा मे, कोई द्वारकानाथ के सख्य मे विराजित हैं। अधिक जिन जिन अवतारों में जिन जिन भाव के साथ जो जो भक्त वर्त्तमान हैं वे सब वृन्दावनविलासचारी मुझ मे बद्ध हृदय हैं। अतएव मैं सबको उसी प्रकार उन्हीं भावों का प्रदान करूँगा॥३२-३४॥

महामान्याभिधा गोपी व्रजे यासीद्वरीयसी ।
कृष्णपितामही सैव नाम्नात्र कमलावती ॥ ३६ ॥
पुरा यशोदाव्रजराजनन्दौ वृन्दावने प्रेमरसाकरौ यौ ।
शची-जगन्नाथपुरन्दराभिधौ बभूवतुस्तौ न च संशयोऽत्र ॥३७॥
अमू आविशतामेव देवावदितिकश्यपौ ।
श्रीकौशल्यादशरथौ तथा श्रीपृश्निसुतपौ ॥ ३८ ॥
देवकीवसुदेवौ यौ पितरौ रामकृष्णयोः ।
तावप्यमू आविशतामिति जल्पन्ति केचन ।
अन्यथा राममूर्त्तेः श्रीविश्वरूपस्य नोद्भवः ॥ ३९ ॥
रोहिणीवसुदेवौ यौ पितरौ रामकृष्णयोः ।
पद्मावतीमुकुन्दौ तौ सन्तौ जातौ द्विजोत्तमौ ।
श्रीसुमित्रादशरथौ तावप्याविशतामम् ॥ ४० ॥

पहले जो श्रीकृष्ण के पितामह पर्जन्य नामक गोप थे, उनने अब उपेन्द्रमिश्र नाम से श्रीहट्ट में जन्म लिया। उनके सात पुत्र थे। जो वृन्दावन में महामान्या वरीयसी नामक श्रीकृष्ण की पितामही थीं, अब यह उपेन्द्रमिश्र की पत्नी कमलावती नाम से हुई हैं ॥३५॥

पहले वृन्दावन में प्रेमरस के आकर श्रीकृष्ण के माता पिता यशोदा व्रजराज हुए हैं, अब वे शची तथा जगन्नाथमिश्र पुरन्दर रूप से प्रकट हुए हैं। इसमें कोई संशय नहीं है। अदिति कश्यप, कौशल्या-दशरथ, श्रीपृश्नि-उनके पति सुतपा इन शची-जगन्नाथ पुरन्दर में प्रवेश हुए हैं। कोई कोई कहते हैं, श्री रामकृष्ण के माता-पिता देवकी-वसुदेव भी इनमें प्रवेश हुए हैं। नहीं तो रामविग्रह विश्वरूप का जन्म नहीं हो सकता था ॥ ३६-३९ ॥

पहिले रोहिणी-वसुदेव जो कि श्रीकृष्ण के माता-पिता थे, अब उन्होंने पद्मावती तथा मुकुन्द होकर ब्राह्मण कुल में जन्म लिया। सु-

पौर्णमासी व्रजे यासीद्गोविन्दानन्दकारिणी ।
आचार्य्य श्रीलगोविन्दो गीतपद्यादिकारकः ॥ ४१ ॥
नाम्नाम्बिका व्रजे धात्री स्तन्यदात्री स्थिता पुरा ।
सैवेयं मालिनीनाम्नी श्रीव्यासगृहिणी मता ॥ ४२ ॥
अम्बिकायाः स्वसा यासीन्नाम्नी श्रीलकिलिम्बिका ।
कृष्णोच्छिष्टं प्रभुञ्जाना सेयं नारायणी मता ॥ ४३ ॥
पुरासीज्जनको राजा मिथिलाधिपतिर्महान् ।
अधुना वल्लभाचार्य्यो भीष्मकोऽपि च सम्मतः ॥ ४४ ॥
श्रीजानकी रुक्मिणी च लक्ष्मीनाम्नी च तत्सुता ।
चैतन्यचरिते व्यक्ता लक्ष्मीनाम्नी च सा यथा ॥ ४५ ॥
सा वल्लभाचार्य्यसुता चलन्ती स्नातुं सखीभिः सुरदीर्घिकायाम् ।
लक्ष्मीरनेनैव कृतावतारा प्रभोर्ययौ लोचनवर्त्म तत्र ॥ ४६ ॥

मिश्रा तथा दशरथ जी का इन में प्रवेश माना गया है। व्रज में जो गोविन्द की आनन्दकारिणी पौर्णमासी जी रहीं, वह अब गीत-पद्यों की रचना करने वाले श्रीगोविन्द आचार्य्य हुईं। पहले जो अम्बिका नाम्नी श्रीकृष्ण की स्तन्यदात्री थीं वे अब मालिनी नामक श्री-वासपण्डित की गृहिणी हुईं। उस अम्बिका की भगिनी किलि-म्बिका जो कि श्रीकृष्ण का उच्छिष्ट खाती थी, वे अब नारायणी नाम से प्रसिद्ध हुईं। पहले जो मिथिला के अधिपति राजा जनकजी थे वे अब वल्लभाचार्य्य हुए। कोई कोई इनको भीष्मक भी कहते है ॥ ४०–४४ ॥

श्री जानकी तथा रुक्मिणी जी ये दोनों ने मिल कर वल्लभा-चार्य्य की कन्या रूप से जन्म लिया तथा लक्ष्मी नाम से व्यक्त हुईं। इनकी लक्ष्मी नाम से प्रसिद्धि चैतन्यचरित में व्यक्त है॥४५॥

वह वल्लभाचार्य्य की कन्या लक्ष्मी उस समय सखियों के साथ गंगा स्नान करने के लिये जा रही थी। अकस्मात् महाप्रभु के नयन-

श्रीसनातनमिश्रोऽयं पुरा सत्राजितो नृपः।
विष्णुप्रिया जगन्माता यत्कन्या भूस्वरूपिणी ॥ ४७ ॥
उक्ता प्रसंगात् कलिना श्रीचैतन्यविधूतये।
भुवोऽशरूपां परमाञ्च विष्णुप्रिया विदित्वा परिणीय
कान्तामित्यादि ॥ ४८ ॥
विश्वामित्रोऽपि घटकः श्रीरामोद्वाहकर्म्मणि।
रुक्मिण्या प्रेषितो विप्रो यश्च श्रीकेशव प्रति।
तावदं वनमाली यत्कर्म्मणाचार्य्यता गतः ॥ ४९ ॥
यश्च सत्राजिता विप्र प्रहितो माधवं प्रति।
सत्योद्वाहाय क्षुलकः श्रीकाशीनाथ एव सः ॥ ५० ॥
केनावान्तरभेदेन भेदं कुर्व्वन्ति सात्त्वताः।
सत्यभामाप्रकाशोऽपि जगदानन्दपण्डितः ॥ ५१ ॥

पथ में पड़ीं। वह लक्ष्मी का अवतार थीं ॥ ४६ ॥

पहले सत्राजित् राजा थे, वे अब सनातनमिश्र हुए। भूस्वरूपिणी, जगन्माता विष्णुप्रिया उन की कन्या है ॥ ४७ ॥

चैतन्यचन्द्रोदय नाटक में कलिप्रसंग पर ऐसा कहा गया है—उन देव-देव महाप्रभु ने पृथिवी अंशरूपा, विष्णुप्रिया के साथ विवाह किया इत्यादि ॥ ४८ ॥

पहले श्रीरामचन्द्र के विवाह कर्म्म में जो विश्वामित्र घटक हुए थे वे तथा रुक्मिणी के द्वारा केशव के लिए जो विप्र भेजा गया था वह दोनों मिलकर वनमाली नाम से जन्म लेकर कर्म्म के द्वारा आचार्य्यत्व को प्राप्त हुए ॥ ४९ ॥

सत्राजित् राजा ने सत्यभामा का विवाह के लिये क्षुलक नामक जिस विप्र को माधव के लिये भेजा था वह श्रीगौरांग अवतार में काशीनाथ हुए ॥ ५० ॥

मधुरायां यज्ञसूत्रं पुरा कृष्णाय यो मुनिः।
ददौ सान्दीपनिः सोऽभूदद्य केशवभारती ॥ ५२ ॥
पुरासीद्रघुनाथस्य यो वशिष्ठमुनिर्गुरुः।
स प्रकाशविशेषेण गंगादाससुदर्शनौ ॥ ५३ ॥
वृषभानुतया ख्यातः पुरा यो व्रजमण्डले।
अधुना पुण्डरीकाक्षं विद्यानिधिमहाशयः ॥ ५४ ॥
स्वकीयभावमासाद्य राधाविरहकातरः।
चैतन्यः पुण्डरीकाक्षाह्वये तातायदत् स्वयम् ॥ ५५ ॥
प्रेमनिधितया ख्यातिं गौरो यस्मै ददौ सुखी।
माधवेन्द्रस्य शिष्यत्वाद्गौरवञ्च सदा करोत् ॥ ५६ ॥
तत्प्रकाशविशेषोऽपि मिश्रः श्रीमाधवो मतः।
रत्नावती तु तत्पत्नी कीर्त्तिदा कीर्त्तिता बुधैः ॥ ५७ ॥

भगवद्भक्तगण किसी अवतार भेद से भेद को प्राप्त होते हैं। सत्यभामा का प्रकाश भी जगदानन्द पण्डित को जानना चाहिये ॥५१॥

पहले मथुरा में जिन सान्दीपनि मुनि ने श्रीकृष्ण को यज्ञसूत्र दिया था, वे अब केशवभारती हुए ॥ ५२ ॥

पहले रामचन्द्र जी के जो गुरु वशिष्ठ जी थे, वे अब प्रकाश भेद से गंगादास और सुदर्शन हुए ॥ ५३ ॥

पहले व्रजमण्डल में वृषभानु राजा थे, वे अब महाशय पुण्डरीकाक्ष विद्यानिधि हुए ॥ ५४ ॥

निज भाव का आस्वादन करते हुए राधाविरह से कातर श्रीचैतन्य पुण्डरीकाक्ष के लिये "तात" करके बोलते थे ॥ ५५ ॥

श्रीप्रभु ने सुखी होकर जिन को प्रेमनिधि की उपाधि दी है और जिनको माधवेन्द्र जी के शिष्य के कारण आप गौरव करते थे, वे माधवमिश्र उनके प्रकाश विशेष करके सम्मत हैं। इन की भार्य्या का नाम रत्नावती है। पण्डितगण उन्हें वृषभानु पत्नी कीर्त्तिदा कहके

अंशांशिनोरभेदेन व्यूह आद्यः शचीसुतः ।
बलदेवो विश्वरूपो व्यूहः संकर्षणो मतः ॥ ५८ ॥
नित्यानन्दावधूतश्च प्रकाशेन स उच्यते ।
गौरचन्द्रोदये धर्म्म प्रतिवाक्यं कलेर्यथा ॥ ५९ ॥
अस्याग्रजस्त्वकृतदारपरिग्रहः सन्
सङ्कर्षणः स भगवान् भुवि विश्वरूपः ।
स्वीयं महः किल पुरीश्वरमार्पयित्वा
पूर्व्वं परिव्रजित एव तिरोबभूव इति ॥ ६० ॥
नित्यानन्दावधूतो मह इति महितं हन्त संकर्षणं यः । इति च॥६१॥
यदा श्रीविश्वरूपोऽयं तिरोभूतः सनातनः ।
नित्यानन्दावधूतेन मिलित्वापि तदा स्थितः ॥ ६२ ॥
ततोऽवधूतो भगवान् बलात्मा भवन् सदा वैष्णववर्गमध्ये ।
जज्वाल तिग्मांशुसहस्रतेजा इति ब्रुवन् मे जनको ननर्त्त ॥ ६३ ॥

कीर्त्तन करते हैं ॥ ५६–५७ ॥

अंश–अंशी अभेद के कारण शचीनन्दन आद्यव्यूह वासुदेव तथा बलदेव और विश्वरूप द्वितीयव्यूह संकर्षण स्वरूप हैं ॥५८॥

वे संकर्षण नित्यानन्द अवधूत कहे जाते हैं । चैतन्यचन्द्रोदय में धर्म्म के प्रति कलि का प्रवचन यह है–इन (प्रभु) के अग्रज जो जगत् में विश्वरूप करके विख्यात हैं तथा जो साक्षात् भगवान् संकर्षण के अवतार हैं, वे पहले से ही दार परिग्रह न कर संन्यास धर्म्म का अवलम्बन करते हुए अपनी ज्योति को ईश्वरपुरी में स्थापित कर अन्तर्द्धान हो गये हैं ॥ ६० ॥

अवधूत नित्यानन्द करके ख्यात हैं। साक्षात् संकर्षण जिन का तेजः स्वरूप हैं ॥ ६१ ॥

जिस समय सनातन विश्वरूप तिरोहित हुए उस समय वे अवधूत नित्यानन्द के साथ मिलित होकर अवस्थित हुए ॥ ६२ ॥

स्वांशेन शेषेण य एव शय्या विष्णोश्च कृष्णस्य च वासभूषा।
स्वांगस्य भूषावलयादिरूपैर्लीलाख्यया : वेद निगूढलीलाम् ॥ ६४ ॥
श्रीवारुणीरेवतवंशसम्भवे तस्य प्रिये द्वे वसुधा च जान्हवी।
श्रीसूर्य्यदासस्य महात्मनः सुते ककुद्मिरूपस्य च सूर्य्यतेजसः ॥६५॥

केचित् श्रीवसुधादेवीं कलावपि विवृण्वते।
अनङ्गमञ्जरीं केचिज्जान्हवीञ्च प्रचक्षते।
उभयन्तु समीचीनं पूर्व्वन्यायात् सतां मतम् ॥ ६६ ॥
सङ्कर्षणस्य यो व्यूहः पयोब्धिशायिनामकः।
स एव वीरचन्द्रोऽभूच्चैतन्याभिन्नविग्रहः ॥ ६७ ॥
अमु प्राविशतां कार्य्यात् सहजौ निशठोल्मुकौ।
मीनकेतनरामादिव्यूहः संकर्षणोऽपरः ॥ ६८ ॥

"इसके अनन्तर बलदेव स्वरूप भगवान् अवधूत वैष्णववर्ग में सहस्र सूर्य्य की भाँति तेजः विशिष्ट होकर देदीप्यमान हुए" इस प्रकार कह कर मेरे पिता शिवानन्द ने नृत्य किया था ॥ ६३ ॥

जिन नित्यानन्द बलदेव के अंशरूप शेषदेव विष्णु की शय्या, वस्त्र, भूषण स्वरूप हैं। उनने अपने अङ्ग के वलयादि भूषणरूप से लीला शक्तिके द्वारा श्रीकृष्ण की निगूढलीलाको अवगत किया है॥६४॥

पहले वारुणी और रेवतवंशोत्पन्ना रेवती बलदेव की दो पत्नी थीं, अब वे दोनों वसुधा-जान्हवी नाम से नित्यानन्द की दो पत्नी हुईं। वे दोनों सूर्य्य के तुल्य तेजस्वी सूर्य्यदास की कन्या थीं। वे सूर्य्यदास पहले रेवती के पिता ककुद्मी थे ॥ ६५ ॥

कोई कोई वसुधादेवी को अनङ्गमञ्जरी तथा कोई कोई जान्हवी कहते हैं। साधुओं के मत में पूर्व्वन्याय से उभय समीचीन है॥६६॥

संकर्षण का व्यूह पयोब्धिशायी चैतन्य के अभिन्न विग्रह वीरचन्द्र गोस्वामी हुए। वे नित्यानन्द प्रभु के पुत्र थे ॥ ६७ ॥

विष्णुपादोद्भवा गंगा यासीत् सा निजनामतः ।
नित्यानन्दात्मजा जाता माधवः शान्तनुर्नृपः ॥ ६६ ॥
व्यूहस्तृतीयः प्रद्युम्नः प्रियनर्म्मसखोऽभवत् ।
चक्रे लीलासहायं यो राधामाधवयोर्व्रजे ।
श्रीचैतन्याद्वैततनुः स एव रघुनन्दनः ॥ ७० ॥
व्यूहस्तुर्य्योऽनिरुद्धो यः स वक्रेश्वरपण्डितः ।
कृष्णावेशजनृत्येन प्रभोः सुखमजीजनत् ॥ ७१ ॥
सहस्रगायकान्मह्यं देहि त्वं करुणामय ।
इति चैतन्यपादे य उवाच मधुरं वचः ॥ ७२ ॥
स्वप्रकाशविभेदेन शशिरेखा तमाविशत् ।
आविर्भावो गौरहरेर्नकुलब्रह्मचारिणि ॥ ७३ ॥
आवेशश्च तथा ज्ञेयो मिश्रे प्रद्युम्नसञ्ज्ञके ।
आचार्य्यो भगवान् खञ्जः कला गौरस्य कथ्यते ॥ ७४ ॥

निशठ और उल्मुक दोनों सहोदर नित्यानन्दव्यूह वीरचन्द्र में प्रवेश हुए थे। अब इनका नाम मीनकेतन-रामदास है ॥ ६८ ॥

विष्णुचरणोद्भवा गङ्गा निज नाम से ही अर्थात् गङ्गा नाम से नित्यानन्द प्रभु की कन्या हैं। माधव पहले शान्तनु राजा थे ॥ ६६ ॥

तृतीय व्यूह प्रद्युम्न जी जो कि व्रज में राधामाधव की लीला के सहायकारी प्रियनर्म्मसखा थे वे अब श्रीचैतन्य तथा अद्वैतविग्रह के अभिन्न रघुनन्दन हुए ॥ ७० ॥

चतुर्थ व्यूह अनिरुद्ध वक्रेश्वर पण्डित हुए। जो श्रीकृष्णावेश से नृत्य के द्वारा महाप्रभु को सुख देते थे। उन्होंने महाप्रभु को मधुरवचन से कहा था—हे करुणामय ! मुझे सहस्र गायकत्व प्रदान कीजिये। निज प्रकाश विशेष से शशिरेखा ने इनमें प्रवेश किया था। नकुल ब्रह्मचारी में गौरहरि का आविर्भाव तथा प्रद्युम्नमिश्र में उन

गोपीनाथाचार्य्यनाम्ना ब्रह्मा ज्ञेयो जगत्पतिः ।
नवव्यूहे तु गणितो यस्तन्त्रे तन्त्रवेदिभिः ॥ ७५ ॥
व्रजे आवेशरूपत्वाद्व्यूहो योऽपि सदाशिवः ।
स एवाद्वैतगोस्वामी चैतन्याभिन्नविग्रहः ॥ ७६ ॥
यश्च गोपालदेहः सन् व्रजे कृष्णस्य सन्निधौ ।
ननर्त्त श्रीशिवातन्त्रे भैरवस्य वचो यथा ॥ ७७ ॥
एकदा कार्त्तिकेमासि दीपयात्रामहोत्सवे ।
सरामः सह गोपालः कृष्णो नृत्यति यत्नवान् ॥ ४८ ॥
निरीक्ष्य मद्गुरुर्देवो गोपभावाभिलापवान् ।
प्रिये नर्त्तितुमारब्धश्चक्रभ्रमणलीलया ॥ ७६ ॥
श्रीकृष्णस्य प्रसादेन द्विविधोऽभूत् सदाशिवः ।
एकस्तत्र शिवः साक्षादन्यो गोपालविग्रहः ॥ ८० ॥

का आवेश जानना चाहिए । भगवान् आचार्य्यरूप गौरहरि की कला है ॥ ७१–७४ ॥

जगत्पति ब्रह्मा जो कि तन्त्रवेदियों के द्वारा नवव्यूह के मध्य में गिने गये हैं वे आज गोपीनाथाचार्य हुए ॥ ७५ ॥

व्रज में आवेश रूप जो सदाशिव व्यूह है वे अब श्रीचैतन्य के अभिन्न विग्रह अद्वैताचार्य्य गोस्वामी हुए हैं ॥ ७६ ॥

जिनने गोपालविग्रह होकर व्रज में श्रीकृष्ण के निकट रह कर नृत्य किया था । इस विषय में शिवातन्त्र में भैरव का वचन यथा "एक समय कार्त्तिक मास में दीपयात्रा महोत्सव पर राम तथा गोपाल के साथ श्रीकृष्ण ने यत्न से नृत्य किया । उसको देखकर गुरु शंकर जी गोपीभावाभिलाषी हो चक्रभ्रमण लीला से श्रीकृष्ण के निकट नाचने लगे । श्रीकृष्ण के प्रसाद से सदाशिव दो स्वरूप हो गये । एक साक्षात् शिव जी दूसरे गोपालविग्रह हैं" ॥ ७७–८० ॥

महादेवस्य मित्रं यः कुवेरो गुह्यकेश्वरः ।
कुवेरपण्डितः सोऽद्य जनकोऽस्य विदाम्वरः ॥ ८१ ॥
पुरा कुवेरः कैलासे सिद्धसाध्यनिषेविते ।
जजाप परमं मन्त्रं शैवं श्री शिववल्लभः ॥ ८२ ॥
ततो दयालुर्भगवान् वरं वृणिष्वेति सोऽब्रवीत् ।
तदा कुवेरो वरयामास त्वं मे सुतो भव ॥ ८३ ॥
प्रार्थितस्तेन देवेशो वरदेशः सदाशिवः ।
जन्मन्यनन्तरे पुत्र प्राप्स्यामि पुत्रतां तव ॥ ८४ ॥
इति प्राप्य वरं कष्टं कियन्तं कालमास्थितः ।
कार्य्यादीशवशात् सोऽद्याद्वैतस्य जनकोऽभवत् ॥८५॥
योगमाया भगवती गृहिणी तस्य साम्प्रतम् ।
सीतारूपेणावतीर्णा श्रीनाम्ना तत्प्रकाशतः ॥ ८६ ॥
तस्य पुत्रोऽच्युतानन्दः कृष्णचैतन्यवल्लभः ।
श्रीमत्पण्डितगोस्वामिशिष्यः प्रिय इति श्रुतम् ॥ ८७ ॥

महादेव जी के मित्र विदाम्वर गुह्यकेश्वर जी आज अद्वैत आचार्य्य के पिता कुवेर पण्डित हुए ॥ ८१ ॥

शिववल्लभ कुवेर ने पहले सिद्ध-साध्य जनों से परिसेवित कैलास में शिव सम्बन्धी मन्त्र का जप किया। उससे दयालु भगवान् शिव जी ने प्रसन्न होकर "वर माँगो" ऐसा कहा। कुवेर ने "तुम मेरे पुत्र हो" ऐसा वर माँगा। उनसे प्रार्थित होकर सदाशिव ने कहा कि इस जन्म के अनन्तर मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा। इस प्रकार वर प्राप्त होकर कुवेर जी ने कुछ काल दुःख से बिताया। पश्चात् ईश के कार्य्याधीन के वश अद्वैताचार्य्य के जनक हुए ॥ ८२-८५ ॥

योगमाया भगवती वर्त्तमान उनकी गृहिणी होकर सीतादेवी नाम से प्रकट हुई। उनका प्रकाश रूप श्री नाम करके हुई। सीता-

यः कार्त्तिकेयः प्रागासीदिति जल्पन्ति केचन ।
केचिदाहू रसविदोऽच्युतानाम्नी तु गोपिका ॥
उभयन्तु समीचीनं द्वयोरेकत्र सङ्गतात् ।
कार्त्तिकेयः कृष्णमिश्रस्तत् साम्यादिति केचन ॥ ८८ ॥
नन्दिनी जङ्गली ज्ञेया जया च विजया क्रमात् ॥ ८९ ॥
श्रीवासपण्डितो धीमान् यः पुरा नारदो मुनिः ।
पर्व्वताख्यो मुनिवरो य आसीन्नारदप्रियः ।
स रामपण्डितः श्रीमांस्तत्कनिष्ठसहोदरः ॥ ९० ॥
मुरारिगुप्तो हनुमानङ्गदः श्रीपुरन्दरः ।
यः श्रीसुग्रीवनामासीद्गोविन्दानन्द एव सः ॥ ९१ ॥
विभीषणो यः प्रागासीद्रामचन्द्रपुरी स्मृतः ॥ ९२ ॥
उवाचातो गौरहरिर्नैतद्रामस्य कारणम् ।
जटिला राधिकाश्वश्रूः कार्य्यतोऽपिशादेव तम् ।

देवी के पुत्र अच्युदानन्द हुए । जो महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य के प्रिय तथा पण्डित गोस्वामी के शिष्य थे । कोई कोई रसवेत्ता कहते हैं कि ये पहले कार्त्तिकेय थे । कोई कोई रसिक ऐसा कहते हैं कि ये पहले अच्युता नामक गोपी थे । उभय समीचीन है । दोनों का मिल कर प्रकट होना संगत है । किसी के मत में कार्त्तिकेय कृष्णमिश्र हुए । क्योंकि दोनों में समान कार्य्य देखा गया है ॥ ८६–८९ ॥

जो पहले नारद जी थे वे अब बुद्धिमान् श्रीवास पण्डित हुए । पहले नारदप्रिय पर्व्वत नामक जो मुनिश्रेष्ठ हुए वे अब श्रीवास पण्डित के कनिष्ठ सहोदर श्रीमान् रामपण्डित हैं ॥ ९० ॥

पहले जो हनुमान थे वे अब मुरारिगुप्त हुए । सुग्रीव के साथ अंगद जी भी महाप्रभु की लीला में प्रकट हुए थे । अंगद श्रीपुरन्दर तथा सुग्रीव गोविन्दानन्द हुए । पहले जो विभीषण थे वे रामचन्द्रपुरी हुए हैं ॥ ९१–९२ ॥

अतो महाप्रभुर्भिक्षासंकोचादि ततोऽकरोत् ॥
ऋचीकस्य मुनेः पुत्रो नाम्ना ब्रह्मा महातपाः ।
प्रल्हादेन समं जातो हरिदासाख्यकोऽपि सन् ॥ ९३ ॥
मुरारिगुप्तचरणैश्चैतन्यचरितामृते ।
उक्तो मुनिसुतः प्रातस्तुलसीपत्रमाहरन् ॥ ९४ ॥
अधौतमभिशप्तस्तं पिता यवनतां गतः ।
स एव हरिदासः सन् जातः परमभक्तिमान् ॥ ९५ ॥
वृन्दावने याः प्रागासन्नणिमाद्यष्टसिद्धयः ।
ता एवाष्टौ भक्तरूपा भूता गौडे च ते यथा ॥ ९६ ॥
अनन्तश्च सुखानन्दो गोविन्दो रघुनाथकः ।
कृष्णानन्दः केशवश्च श्रीदामोदरराघवौ ॥
पुर्य्युपाधिकमाज्ञेया अणिमाद्यष्टसिद्धयः ॥ ९७ ॥

इसीलिये ही महाप्रभु ने उनको लक्ष्य करके कहा था यह राम का कारण नहीं है। राधिका की सास जटिला ने कार्य्यवश रामचन्द्रपुरी में प्रवेश किया है। इसलिये महाप्रभु उनसे भिक्षादि ग्रहण के विषय में संकोच रखते थे। ऋचकमुनि के पुत्र जिनका नाम महातपा ब्रह्मा है उनने भी प्रल्हाद जी के साथ जन्म लिया है। वे अब हरिदास हुए ॥ ९३ ॥

मुरारिगुप्तचरण ने चैतन्यचरित नामक ग्रन्थ में कहा है-मुनिसुत महातपा ब्रह्मा ने एक समय प्रातःकाल में तुलसीपत्र का आहरण कर बिना धोये पिता को अर्पण किया। पिता के द्वारा अभिशाप प्राप्त होकर यवन हुए। वे ही यवनकुल के उत्पन्न परमभक्तिमान् हरिदास जी हैं ॥ ९४-९५ ॥

वृन्दावन में पहले अणिमादि जो अष्टसिद्धियाँ थीं उन सब का अब गौड़देश में महाप्रभु के भक्त होकर जन्म हुआ। क्रम से उनका

जायन्तेयाः स्थिता ऊर्द्ध्वरेतसः समदर्शिनः ।
नव भागवताः पूर्व्वं श्रीभागवतसंहिताः ॥ ९८ ॥
प्रत्यूचुर्जनकं तेऽद्य भूत्वा सन्न्यासिनः सदा ।
प्रभुणा गौरहरिणा विहरन्ति स्म ते यथा ॥ ९९ ॥
श्रीनृसिंहानन्दतीर्थः श्रीसत्यानन्दभारती ।
श्रीनृसिंह–चिदानन्द–जगन्नाथा हि तीर्थकाः ॥ १०० ॥
तीर्थाभिधो वासुदेवः श्रीरामः पुरुषोत्तमः ।
गरुडाख्यावधूतश्च श्रीगोपेन्द्राख्य आश्रमः ॥ १०१ ॥
लोके ये निधयः ख्याताः पद्म–शंखादयो नव ।
अत्रैव निधिरत्नाख्य गर्व्भ जाताः प्रभोः प्रियाः ॥ १०२ ॥
श्रीश्रीनिधिश्च श्रीगर्व्भः कविरत्नः सुधानिधिः ।
विद्यानिधिर्गुणनिधि–रत्नबाहुर्द्विजाग्रणीः ।
श्रीमानाचार्य्यरत्नश्च श्रीरत्नाकरपण्डितः ॥ १०३ ॥

नाम-अनन्त, सुखानन्द, गोविन्द, रघुनाथ,कृष्णानन्द, केशव, दामोदर तथा राघव हैं। ये आठों पुरी उपाधी से युक्त हैं ॥ ९६-९७ ॥

ऊर्द्धरेता, समदर्शी, भगवद्भक्त जो नौ जन जयन्ती पुत्र थे, जिन्होंने पहले जनक ऋषि को भागवतसंहिता सुनाई थी उन ने सब अब सन्यासग्रहण पूर्वक गौरहरि के साथ विहार किया। उनका नाम श्रीनृसिंहानन्दतीर्थ, श्रीसत्यानन्दभारती, श्रीनृसिंहतीर्थ, श्रीचिदानन्दतीर्थ, श्रीजगन्नाथतीर्थ, वासुदेवतीर्थ, श्रीरामतीर्थ, पुरुषोत्तमतीर्थ है। गरुड़अवधूत तथा गोपेन्द्र ये आश्रम उपाधि से युक्त हैं॥९८-१०१॥ लोक में पद्म-शंखादि जो नौ निधियाँ हैं उनने अब प्रभु के प्रिय हो कर मनुष्य देह से जन्म लिया। उनका नाम श्रीनिधि, श्रीगर्व्भ, कविरत्न, सुधानिधि, विद्यानिधि, गुणनिधि, रत्नबाहु, आचार्य्यरत्न, रत्नाकरपण्डित है ॥ १०२—१०३ ॥

नीलाम्बरश्चक्रवर्त्ती–गौरस्य भावि जन्म यत्।
सभायां कथयामास तेनासौ गर्ग उच्यते ॥ १०४ ॥
श्रीशच्या जनकत्वेन सुमुखो वल्लवो मतः।
पाटला या व्रजे ख्याता ज्ञेया तस्य सधर्म्मिणी ॥ १०५ ॥
पुराणानामर्थवेत्ता श्रीदेवानन्दपण्डितः।
पुरासीन्नन्दपरिषत्पण्डितो भागुरिमुनिः ॥ १०६ ॥
काशीनाथो लोकनाथः श्रीनाथो रामनायकः।
चत्वारोऽमी ज्ञानिभक्ताः सनकाद्या न संशयः ॥ १०७ ॥
चतुर्ष्वप्येषु शब्देषु नाथशब्दस्य कीर्त्तनात्।
चतु सनवदेवात्र चतुर्नाथ उदीरितः ॥ १०८ ॥
वेदव्यासो य एवासीद्दासो वृन्दावनोऽधुना।
सखा यः कुसुमापीडः कार्य्यतस्तं समाविशत् ॥ १०९ ॥
भट्टो वल्लभनामाभूच्छुको द्वैपायनात्मजः ॥ ११० ॥

नीलाम्बर चक्रवर्त्ती जी पहले गर्ग थे। उन्होंने मिश्र जगन्नाथ जी की सभा में पहले से ही गौरागदेव के जन्म की भावी सूचना दी थी ॥ १०४ ॥

वृन्दावन में यशोदा जी के पिता सुमुखनामक गोप अब शची-माता के जनक हुए। उनकी सहधर्म्मिणी व्रज में पाटला नामक गोपी थी। पहले नन्द की परिषद् के पण्डित भागुरिमुनि नामक जो पुरोहित थे वे अब पुराणों के अर्थज्ञाता देवानन्द पण्डित हुए। काशीनाथ,लोकनाथ,श्रीनाथ,रामनाथ ये चार ज्ञानीभक्त सनकादि चार थे। इसमें कोई सन्देह नहीं है। इन चारों में नाथ शब्द का प्रयोग है। इसलिये चतुः सन की तरह ये चारों नाथ कहे जाते हैं ॥१०५।१०८॥

पहले वेदव्यास जी अब वृन्दावनदास जी हुए। वृन्दावन में जो पहले कुसुमापीड नामक सखा थे अब उनने कार्य्यवश इनमें प्रवेश

आचार्य्यः श्रीजगन्नाथो गङ्गादासः प्रभुप्रियः ।
आसीन्निभुवने प्राग् यो दुर्व्वासा गोपिकाप्रियः ॥ १११ ॥
चन्द्रशेखर आचार्य्यश्चन्द्रो ज्ञेयो विचक्षणैः ।
श्रीमानुद्धवदासोऽपि चन्द्रावेशावतारकः ॥ ११२ ॥
अतश्चैतन्यहरिणा कथितोऽयं निशापतिः ।
श्रीमद्विश्वेश्वराचार्य्यो यः प्रागासीद्दिवाकरः ॥ ११३ ॥
विश्वकर्म्मा पुरा योऽभूदद्य भास्करठक्कुरः ।
भिक्षुको वनमाली [redacted]: सुदामासीद्द्विजः पुरा ।
धनं प्राप्य प्रभोः सङ्गे दुःखं मत्वाभ्रमद्यतः ॥ ११४ ॥
वैकुण्ठे द्वारपालौ यौ जयाद्यविजयान्तकौ ।
तावाद्य जातौ स्वेच्छातः श्रीजगन्नाथमाधवौ ॥ ११५ ॥
पुण्डरीकाक्षकुमुदौ ख्यातौ वैकुण्ठमण्डले ।
गोविन्दगरुडाख्यौ तौ जातौ गौडे प्रभोः प्रियौ ॥ ११६ ॥

किया है । द्वैपायन के आत्मज शुकदेव जी अब वल्लभभट्ट करके प्रसिद्ध हैं ॥ १०६—११० ॥

आचार्य्य जगन्नाथ और प्रभु के प्रिय गंगादास ये दोनों पहले त्रिभुवन में गोपिकाप्रिय दुर्व्वासा थे । चन्द्रशेखर आचार्य्य को विचक्षण जनों को चन्द्र जानना चाहिये । श्रीमान् उद्धवदास जी भी चन्द्र के आवेश अवतार हैं । इसलिये चैतन्यप्रभु इनको निशापति कहते थे । श्रीविश्वेश्वराचार्य्य पहले दिवाकर थे ॥ १११—११३ ॥

पहले जो विश्वकर्म्मा थे वे अब भास्कर ठाकुर हैं । पहले जो सुदामा जी थे अब वे भिक्षुकवनमाली हुए । सुदामा जी प्रभु से धन प्राप्त होकर दुःखी हो गये थे । अब केवल प्रभु का सङ्ग पाकर सुख पूर्वक विहार करने लगे ॥ ११४ ॥

वैकुण्ठ के जय विजय नामक दोनों द्वारपाल अब निज इच्छा से जगन्नाथ माधव हुए । वैकुण्ठ में जो पुण्डरीकाक्ष-कुमुद प्रसिद्ध हैं

गरुडः पण्डितः सोऽय गरुडो यः पुरा श्रुतः ।
पुरा योऽक्रूरनामासीत् स गोपीनाथसिंहकः ।
इति केचित् प्रभाषन्तेऽक्रूरः केशवभारती ॥ ११७ ॥
पुरी श्रीपरमानन्दो य आसीदुद्धवः पुरा ।
इन्द्रद्युम्नो महाराजो जगन्नाथार्च्चकः पुरा ।
जातः प्रतापरुद्रः सन् सम इन्द्रेण सोऽधुना ॥ ११८ ॥
भट्टाचार्य्यः सार्व्वभौमः पुरासीद्गीष्पतिर्द्दिवि ॥ ११९ ॥
प्रियनर्म्मसखः कश्चिदर्जुनः पाण्डवोऽर्जुनः ।
मिलित्वा समभूद्रामानन्दरायः प्रभोः प्रियः ॥ १२० ॥
अतो राधाकृष्णभक्तिप्रेमतत्त्वादिकं कृती ।
रामानन्दो गौरचन्द्रं प्रत्यवर्णयदन्वहम् ॥ १२१ ॥
ललितेत्याहुरेके यत्तदेकेनानुमन्यते ।
भवानन्दं प्रति प्राह गौरो यस्त्वं पृथापतिः ॥ १२२ ॥

वे दोनों अब गौड़देश में प्रभु के प्रिय गोविन्द तथा गरुड़ नाम से हुए हैं ॥ ११५—११६ ॥

पहले जो गरुड़ थे अब वे गरुड़ पण्डित हुए। पहले अक्रूर नाम से जो प्रसिद्ध हुए अब वे गोपीनाथसिंह हुए। कोई कोई केशव-भारती को अक्रूर जी का अवतार मानते हैं ॥ ११७ ॥

पहले जो उद्धव जी थे वे अब परमानन्दपुरी हुए हैं। पहले जो जगन्नाथ जी के अर्च्चक इन्द्रद्युम्न महाराज हुए उनने अब इन्द्र के साथ प्रतापरुद्र होकर जन्म लिया ॥ ११८ ॥

सार्वभौम भट्टाचार्य्य पहले देवलोक में बृहस्पति थे। श्रीकृष्ण के प्रिय नर्म्मसखा अर्जुन तथा पाण्डव अर्जुन दोनों मिलकर प्रभु के प्रिय रामानन्दराय हुए। इसलिये वे गौरचन्द्र के निकट राधाकृष्ण के भक्तिप्रेमतत्त्व का वर्णन करते थे। कोई कोई महा-

गोप्यऽर्जुनीयया सार्द्धमेकीभूयापि पाण्डव ।
अर्जुनो यद्रायरामानन्द इत्याहुरुत्तमा ॥ १२३ ॥
अर्जुनीयाभवत्तुर्णमर्जुनोऽपि च पाण्डव ।
इति पाद्मोत्तरे खण्डे व्यक्तमेव विराजते ।
तस्मादेतत्त्रय रामानन्दरायमहाशय ॥ १२४ ॥
व्रजे भक्ता समासेन कथ्यन्तेऽथ यथामति ॥ १२५ ॥
पुरा श्रीदामनामासीदभिरामोऽधुना महान् ।
द्वात्रिंशता जनैरेव वाह्य काष्ठमुवाह य ॥ १२६ ॥
पुरा सुदाम नामासीदद्य ठक्कुरसुन्दर ।
वसुदामसखा यश्च पण्डित श्रीधनञ्जय ॥ १२७ ॥
सुबलो य प्रियश्रेष्ठ स गौरीदासपण्डित ।
कमलाकर पिप्पलाइ नाम्नासीद्यो महावल ॥ १२८ ॥

नुभाव इनको ललिता जी का अवतार मानते हैं। कोई कोई ऐसा स्वीकार नहीं करते हैं। क्योंकि गौरचन्द्र भवानन्द के लिये कहते थे, तुम पृथापति पाण्डुराज हो। विज्ञगण कहते हैं कि पाण्डुपुत्र अर्जुन अर्जुनीया नाम्नी किसी गोपी के साथ मिल कर रामानन्द का जन्म हुआ है। पाद्मोत्तर खण्ड में स्पष्ट ही देखा जाता कि अर्जुन अर्जुनीया हुए हैं। अतएव ललिता अर्जुनीया–गोपी और पाण्डव ये तीनों मिलकर रामानन्दराय नामसे कहे गये हैं॥११६-१२४॥

अब व्रज भक्त गणों का वर्णन करते हैं—पहले जो श्रीदाम नामक गोपाल हुए वे अब अभिराम ठाकुर हैं। वे बत्तीस व्यक्तियों द्वारा उठाने योग्य काष्ठ को वशी करके उठाया ॥ १२५–१२६ ॥

पहले जो सुदाम नामक गोपाल थे अब वे सुन्दरठक्कुर हुए। वसुदाम सखा धनञ्जय पण्डित हुए। प्रियतम सुवल गौरीदास पण्डित तथा महाबल कमलाकर पिप्पलाई हैं ॥ १२७–१२८ ॥

सुबाहुर्यो व्रजे गोपो दत्त उद्धारणाख्यक.।
महेशपण्डित. श्रीमान्महाबाहुर्व्रजे सखा ॥ १२६ ॥
स्तोककृष्ण. सखा प्राग्यो दासः श्रीपुरुषोत्तमः ॥ १३० ॥
सदाशिवसुतो नाम्ना नागरः पुरुषोत्तमः।
वैद्यवंशोद्भवो दामा यो वल्लवो सखा व्रजे ॥ १३१ ॥
नाम्नार्जुनः सखा प्राग् यो दासः श्रीपरमेश्वरः।
काल. श्रीकृष्णदासः स यो लवङ्गः सखा व्रजे ॥ १३२ ॥
खोलावेचातया ख्यात' पण्डितः श्रीधरो द्विज ।
आसीद्व्रजे हास्यकारी यो नाम्ना कुसुमासवः ॥ १३३ ॥
बलरामसखा. कश्चित् प्रबलो गोपबालकः।
आसीद्व्रजे पुरा योऽद्य स हलायुधठक्कुर. ॥ १३४ ॥
वरुथपः सखा नाम्ना कृष्णचन्द्रस्य जो व्रजे।
आसीत् स एव गौराङ्गवल्लभो रुद्रपण्डित. ॥ १३५ ॥

व्रज मे जो सुबाहु करके गोप थे वे अब उद्धारणदत्त करके ख्यात हुए हैं। महाबाहु सखा महेश पंडित हैं ॥ १२६ ॥

पहले जो स्तोककृष्ण सखा रहे वे पुरुषोत्तमदास हुए। व्रज मे जो दाम नामक गोप रहे वे अब वैद्यवंश उत्पन्न सदाशिव के पुत्र नागर पुरुषोत्तम हैं ॥ १३०–१३१ ॥

व्रज में जो अर्जुन नामक सखा रहे वे परमेश्वरदास तथा लवंगसखा कालाकृष्णदास हुए ॥ १३२ ॥

व्रज मे हास्यकारी जो कुसुमासव सखा थे वे अब खोलावेचा नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मणवंश मे उत्पन्न पंडित श्रीधर हैं। व्रज मे जो बलदेव के सखा प्रबल नामक गोपबालक थे वे अब हलायुध ठाकुर हैं ॥ १३३–१३४ ॥

व्रज मे वरुथप नामक कृष्ण के सखा अब गौराङ्गप्रिय रुद्रप-

गन्धर्वो यो व्रजे गोप. कुमुदानन्दपण्डितः ॥ १३६ ॥
पुरा वृन्दावने चेटौ स्थितौ भृङ्गारभंगुरौ ।
श्रीकाशीश्वरगोविन्दौ तौ जातौ प्रभुसेवकौ ॥ १३७ ॥
वृन्दावने स्थितौ प्राग् यौ भृत्यौ रक्तकपत्रकौ ।
गौरागसेवकावद्य हरिदास वृहच्छिशू ॥ १३८ ॥
पयोदवारिदौ प्राग् यौ नीरसंस्कारकारिणौ ।
तावद्य भृत्यौ रामायिनन्दायिश्चेति विश्रुतौ ॥ १३९ ॥
व्रजे स्थितौ गायकौ यौ मधुकण्ठमधुव्रतौ ।
मुकुन्दवासुदेवौ तौ दत्तौ गौराङ्गगायकौ ॥ १४० ॥
नटश्चन्द्रमुखः प्राग् य स करो मकरध्वज.॥ १४१ ॥
पुरासीद् यो व्रजे नाम्ना मृदङ्गी श्रीसुधाकर. ।
स श्रीशंकरघोषोऽद्य डम्फवाद्यविशारदः ॥ १४२ ॥
आसीद्व्रजे चन्द्रहासो नर्त्तको रसकोविद. ।
सोऽयं नृत्यविनोदी श्रीजगदीशाख्य-पण्डित ॥ १४३ ॥

पण्डित हैं। गन्धर्वनामक गोप कुमुदानन्द पडित हैं ॥१३५-१३६॥

पहले वृन्दावन मे भृङ्गार तथा भंगुर नामक दो कृष्ण के भृत्य थे वे अब काशीश्वर-गोविन्द नाम से प्रभु सेवक होकर प्रकट हुए। पहले व्रज में रक्तक-पत्रक करके जो दो भृत्य थे अब वे गौर सेवक हरिदास वृहच्छिशु हुए। पहले व्रज मे जलसस्कारकारी पयोद तथा वारिद नामक जो दो सेवक थे अब वे रामायी-नन्दायी नाम से ख्यात हुए॥ १३५-१३६॥

व्रज के मधुकठ और मधुव्रत नामक दोनो गायक मुकुन्द तथा वासुदेवदत्त नाम से महाप्रभु के सेवक हुए॥ १४०॥

पहले जो चन्द्रमुख नट थे अब वे मकरध्वजकर हैं। मृदंगिया सुधाकर गौरलीला मे डफवाद्य में विशारद शकरघोष हुए। व्रज

वेणुश्च मुरली योऽस्यान्नाम्ना मालाधरो व्रजे ।
सोऽधुना वनमालाख्यः पण्डितो गौरवल्लभः ॥ १४४ ॥
वृन्दावने यौ विख्यातौ शुकौ दक्षविचक्षणौ ।
तावद्य जातौ मज्ज्येष्ठौ चैतन्यरामदासकौ ॥ १४५ ॥
अधुना वल्लवीवर्गा ये ये भूताः प्रभुप्रियाः ।
ते त एव प्रकाश्यन्ते यथामति यथाश्रुतम् ॥ १४६ ॥
श्रीराधा प्रेमरूपा या पुरा वृन्दावनेश्वरी ।
स श्रीगदाधरो गौरवल्लभः पण्डिताख्यकः ॥ १४७ ॥
निर्णीतः श्रीस्वरूपैर्यो व्रजलक्ष्मीतया यथा ॥ १४८ ॥
पुरा वृन्दावने लक्ष्मीः श्यामसुन्दरवल्लभा ।
साद्य गौरप्रेमलक्ष्मीः श्रीगदाधरपण्डितः ॥ १४९ ॥

में चन्द्रहास नामक जो रसज्ञ नर्त्तक हुए थे अब नृत्यविलासी जगदीश पंडित हैं । व्रज में कृष्ण के वेणु-मुरली धारणकारी मालाधर थे अब वे गौरप्रिय वनमाली पंडित हुए ॥१४१—१४४॥

वृन्दावन में दक्ष विचक्षण नामक जो दोनों शुक पक्षि थे अब वे चैतन्य-रामदास रूप से प्रकट हुए । ये दोनों मेरे बड़े भाई हैं ॥ १४५ ॥

अब प्रभु की प्रेयसी गोपियों ने जहाँ जन्म लिया उसका यथामति जैसा सुना है वर्णन करते हैं ॥ १४६ ॥

पहले वृन्दावनेश्वरी प्रेमस्वरूपिणी श्रीकृष्ण की कान्ता श्रीराधिका जी है वे अब गौरवल्लभ गदाधरपण्डितगोस्वामी हैं । स्वरूपगोस्वामि ने जिनको व्रज की लक्ष्मी रूप से निर्णय किया है । पहले वृन्दावन में श्यामसुन्दर की प्रिया लक्ष्मी अब गौराङ्गप्रेमलक्ष्मी गदाधरपण्डित है । जब ललिता राधा की अनुगता है तब वह अनुराधा करके ख्यात हैं । अतः ललिता जी का गदाधरपंडित गोस्वामि में प्रवेश है । यह

राधामनुगता यत्तल्ललिताप्यनुराधिका ।
अतः प्राविशदेषा तं गौरचन्द्रोदये यथा ॥ १५० ॥
इयमपि ललितैव राधिकाली न खलु गदाधर एष भूसुरेन्द्रः ।
हरिरयमथ वा स्वयैव शक्त्या त्रितयमभूत् स सखी च राधिका च ॥ १५१ ॥
ध्रुवानन्दब्रह्मचारी ललितेत्यपरे जगुः ।
स्वप्रकाशविभेदेन समीचीनं मतन्तु तत् ॥ १५२ ॥
अथवा भगवान् गौरः स्वेच्छयागात्त्रिरूपताम् ।
अतः श्रीराधिकारूपः श्रीगदाधरपण्डितः ॥ १५३ ॥
राधाविभूतिरूपा या चन्द्रकान्तिः पुरा स्थिता ।
साद्य गौराङ्गनिकटे दासवंशगदाधरः ॥ १५४ ॥
पूर्णानन्दा व्रजे यासीद्बलदेवप्रियाग्रणी ।
सापि कार्य्यवशादेव प्राविशत्तं गदाधरम् ॥ १५५ ॥
पुरा चन्द्रावली यासी द्व्रजे कृष्णप्रिया परा ।
अधुना गौडदेशे सा कविराजः सदाशिवः ॥ १५६ ॥

कथा चैतन्यचन्द्रोदय मे वर्णित है। "यह भूसुर श्रीगदाधर राधिका की प्रियसखी ललिताकी भाँति प्रतीयमान हो रहे हैं। भावार्थ है यह गदाधर नहीं है यह तो ललिता हैं। अथवा श्रीहरि ही निजशक्ति के द्वारा स्वयं, राधिका तथा ललिता इन त्रिविध प्रकार से प्रतीयमान हो रहे हैं"। कोई कोई कहते हैं कि ध्रुवानन्दब्रह्मचारी ललिता जी हैं। निज प्रकाशभेद के हेतु यह मत समीचीन है। किम्वा भगवान् गौरचन्द्र निज इच्छा से त्रिरूप हुए है। अतएव गदाधर पण्डित राधिका स्वरूप हैं ॥ १४७–१५३ ॥

पहले राधिका की भूषणरूपा जो चन्द्रकान्ता थी वह अब गौराङ्ग के निकट दासवंश गदाधर हुई। व्रज मे बलराम की प्रियतमा जो

यस्या वक्षसि सुष्वाप कृष्णो वृन्दावने पुरा ।
सा श्रीभद्राद्य गौराङ्गप्रिय शङ्करपण्डित ॥ १५७ ॥
पुरा श्रीतारकापाल्यौ ये स्थिते व्रजमण्डले ।
ते साम्प्रतं जगन्नाथश्रीगोपालौ प्रभो प्रियौ ॥ १५८ ॥
शैव्या यासीद्व्रजे चण्डी स दामोदरपण्डित ।
कुतश्चित् कार्य्यतो देवी प्राविशत्त सरस्वती ॥ १५९ ॥
कलामशिक्षयद्राधा या विशाखा व्रजे पुरा ।
साद्य स्वरूपगोस्वामी तत्तद्भावविलासवान् ॥ १६० ॥
केशविन्यासमकरोद्राधा चित्रा व्रजे पुरा ।
सेदानीं कविराज श्रीवनमाली प्रभो प्रिय ॥ १६१ ॥
श्रीराधाप्राणरूपा या श्रीचम्पकलता व्रजे ।
साद्य राघवगोस्वामी गोवर्द्धनकृतस्थिति ।
भक्तिरत्नप्रकाशाख्यग्रन्थो येन विनिर्म्मित ॥ १६२ ॥

पूर्णानन्दा थी वह अब कार्य्यार्थ गदाधर मे प्रविष्ट हुई । पहले व्रजमे श्रीकृष्ण की परमप्रिया चन्द्रावली नाम्नी जो सखी थी अब वह गौडदश म सदाशिव कविराज हुई ॥ १५४–१५६ ॥

पहले श्रीकृष्ण ने जिसके वक्ष मे शयन किया वह श्रीभद्रा अब गौराङ्गप्रिय शङ्कर पण्डित है ॥ १५७ ॥

पहले व्रजमडल मे तारका पाली नामक जो दो गोपी थीं वह दोनो गोपी अब प्रभुप्रिय जगन्नाथ गोपाल हुई । व्रज की चण्डी शैव्या सखी दामोदर पडित है । किसी कार्य्य के वश सरस्वतीदेवी ने उसमे प्रवेश किया है । पहले व्रज म जो श्रीविशाखा राधिका जी को कला सिखाती थीं वह अब उस उस भाव के विलासी स्वरूप गोस्वामी जी है । चित्रा नाम सखी जो कि व्रज म पहले राधिका का केशविन्यास करती थी वह अब प्रभुप्रिय वनमाली कविराज हैं ।

तुङ्गविद्या व्रजे यासीत् सर्व्वशास्त्रे विशारदा।
सा प्रवोधानन्दयतिर्गौरोद्‌गानसरस्वती ॥ १६३ ॥
इन्दुलेखा व्रजे यासीन्छ्रीराधायाः सखी पुरा।
कृष्णदासब्रह्मचारी कृतवृन्दावनस्थितिः ॥ १६४ ॥
रङ्गदेवी पुरा यासीदद्य भट्टो गदाधरः।
अनन्ताचार्य्यगोस्वामी या सुदेवी पुरा व्रजे ॥ १६५ ॥
श्रीकाशीश्वरगोस्वामी शशिरेखा पुरा व्रजे।
धनिष्ठा भक्ष्यसामग्रीं कृष्णायादाद्‌व्रजेऽमिताम्।
सैव सम्प्रति गौराङ्गप्रियो राघवपण्डितः ॥ १६६ ॥
गुणमाला व्रजे यासीद्दमयन्ती तु तत्स्वसा।
रत्नरेखा कृष्णदासः कृष्णानन्दः कलावती ॥ १६७ ॥
गौरसेनी पुरा नारायणवाचस्पतिः कृती।
पीताम्बरस्तु कावेरी सुकेशी मकरध्वजः ॥ १६८ ॥

श्री राधिका की प्राणस्वरूपा व्रज की चम्पकलता सखी आज गोवर्द्धन निवासी राघवगोस्वामी है। राघवपंडित ने भक्तिरत्नप्रकाश नामक ग्रंथ की रचना की थी ॥ १५८—१६२ ॥

व्रज में सर्वशास्त्र विशारदा पहले जो तुङ्गविद्या सखी थी वह अब गौर गुणगान में सरस्वती प्रबोधानन्द सरस्वती है। पहले व्रज में इन्दुलेखा राधिका की सखी थी वह अब कृष्णदासब्रह्मचारी हैं। इन्होंने बृन्दावन में वास लिया है। रङ्गदेवी सखी अब भट्टगदाधर हैं। व्रज की सुदेवी सखी अब अनन्ताचार्य्य गोस्वामी है। पहले व्रज में शशिरेखा जी अब श्रीकाशीश्वर गोस्वामी है। व्रज में पहले धनिष्ठा नामक जो सखी रही जो कि श्रीकृष्ण के लिये अपरिमित खाद्य सामग्री प्रदान करती थी वह अब गौराङ्गप्रिय राघवपडित है। गुणमाला नामक व्रज में जो रही वह अब उनकी भगिनी दमयन्ती

माधवी माधवाचार्य्य इन्दिरा जीवपण्डितः ॥ १६६ ॥
व्रजे यासीत् सुमधुरा तुङ्गविद्या प्रिया पुरा ।
विद्यावाचस्पतिर्गौरप्रियो व्रजजनप्रियः ॥ १७० ॥
बलभद्राख्यको भट्टाचार्य्यः श्रीमधुरेक्षणा ।
श्रीनाथमिश्रश्चित्राङ्गी कविचन्द्रो मनोहरा ॥ १७१ ॥
व्रजे नान्दीमुखी यासीत् साद्य सारङ्गठक्कुरः ।
प्रह्लादो मन्यते कैश्चिन्मत्पित्रा स न मन्यते ॥ १७२ ॥
कलकण्ठीसुकण्ठ्यौ ये व्रजे गान्धर्व्वनाटिके ।
रामानन्दवसु· सत्यराजश्चापि यथायथम् ॥ १७३ ॥
व्रजे कात्यायनी यासीदद्य श्रीकान्तसेनकः ॥ १७४ ॥
व्रजाधिकारिणी यासीद्वृन्दादेवी तु नामतः ।
सा श्रीमुकुन्ददासोऽद्य खण्डवासः प्रभुप्रियः ॥ १७५ ॥

है । रत्नरेखा कृष्णदास,कलावती कृष्णानन्द हैं । पहले जो शौरसेनी है वह अब नारायण वाचस्पति हैं । कावेरी पीताम्बर तथा सुकेशी मकरध्वज है ॥ १६३—१६८ ॥

माधवी माधवाचार्य्य तथा इन्दिरा जीवगोस्वामी हैं । पहले व्रज में जो सुमधुरा नामक तुङ्गविद्या की सखी रही वह अब गौर-प्रियपात्र विद्यावाचस्पति हैं । वे व्रजजन के प्रिय पात्र हुए ॥ १७० ॥

व्रज में जो मधुरेक्षणा है वह बलभद्र भट्टाचार्य्य हुई । चित्राङ्गी श्रीनाथमिश्र और मनोहरा कविचन्द्र हैं । व्रज में जो नान्दीमुखी थी वह अब सारङ्गठाकुर हैं । कोई कोई उन को प्रह्लाद मानते हैं । मेरे पिता का यह मत नहीं है ॥ १७—१७२ ॥

व्रज में पहले कलकण्ठी तथा सुकण्ठी नामक गान्धर्व्व नटिनी थीं वे दोनों अब रामानन्दवसु और सत्यराज हुई । व्रज की कात्यायनी देवी श्रीकान्तसेन हैं । व्रज की अधिकारिणी वृन्दादेवी अब प्रभु के

पुरा वृन्दावने वीरादूती सर्व्वाश्च गोपिकाः ।
निनाय कृष्णनिकटं सेदानीं जनको मम ।
व्रजे विन्दुमती यासीदद्य सा जननी मम ॥ १७६ ॥
पुरा मधुमती प्राणसखी वृन्दावने स्थिता ।
अधुना नरहर्य्याख्यः सरकार प्रभोः प्रियः ॥ १७७ ॥
पुरा प्राणसखी यासीन्नाम्ना रत्नावली व्रजे ।
गोपीनाथाख्यकाचार्य्यो निर्म्मलत्वेन विश्रुतः ॥ १७८ ॥
वंशी कृष्णप्रिया यासीत् सा वशीदासठक्कुरः ॥ १७९ ॥
श्रीरूपमञ्जरी ख्याता यासीद्वृन्दावने पुरा ।
साद्य रूपाख्यगोस्वामी भूत्वा प्रकटतामियात् ॥ १८० ॥
या रूपमञ्जरी प्रेष्ठा पुरासीद्रतिमञ्जरी ।
सोच्यते नामभेदेन लवङ्गमञ्जरी बुधैः ॥ १८१ ॥
साद्य गौराभिन्नतनुः सर्व्वाराध्यः सनातनः ।
तमेव प्राविशत् वार्य्यान्मुनिरलः सनातनः ॥ १८२ ॥

प्रिय, श्रीखंड ग्राम निवासी मुकुन्ददास है। पहले वृन्दावन में जो वीरा नामक दूती रही जो कि गोपियों को कृष्ण के निकट ले जाती थी वह अब मेरे पिता शिवानन्दसेन है। व्रज में जो विन्दुमती थी वह अब मेरी माता हैं ॥ १७३—१७६ ॥

पहले व्रज में मधुमती नामक जो प्राणसखी थी वह अब प्रभु के प्रियपात्र नरहरि सरकार ठाकुर है। पहले व्रज में रत्नावली नामक जो प्राणसखी थी वह अब परम पवित्र गोपीनाथाचार्य्य हैं। श्रीकृष्ण की प्रिया वंशी अब वशीदास ठाकुर हुईं। पहले व्रज में जो रूपमंजरी थीं वह अब रूपगोस्वामी होकर प्रकट हुईं। रूपमंजरी की प्रिया रतिमंजरी जो कि नाम भेद से पण्डितगण के द्वारा लवङ्गमंजरी कही जाती है वह अब गौर के अभिन्नतनु, सर्व्वाराध्य सनातन गोस्वामी

श्रीमल्लवङ्गमञ्जर्य्याः प्रकाशत्वेन विश्रुतः ।
शिवानन्दश्चक्रवर्त्ती कृतवृन्दावनस्थितिः ॥ १८३ ॥
अनङ्गमञ्जरी यासीत् साद्य गोपालभट्टकः ।
भट्टगोस्वामिनं केचिदाहुः श्रीगुणमञ्जरी ॥ १८४ ॥
रघुनाथाख्यको भट्टः पुरा या रागमञ्जरी ।
कृतश्रीराधिकाकुण्ड-कुटीरवसतिः [redacted] तु ॥ १८५ ॥
दासश्रीरघुनाथस्य पूर्व्वाख्या रसमञ्जरी ।
अमुं केचित् प्रभाषन्ते श्रीमतीं रतिमञ्जरीम् ।
भानुमत्याख्यया कश्चिदाहुस्तं नामभेदतः ॥ १८६ ॥
भूगर्भठक्कुरस्यासीत् पूर्व्वाख्या प्रेममञ्जरी ।
लोकनाथाख्यगोस्वामी श्रीलीलामञ्जरी पुरा ॥ १८७ ॥
कलावती रसोल्लासा गुणतुङ्गा व्रजे स्थिता ।
श्रीविशाखाकृतं गीतं गायन्ति स्माद्य ता मताः ।
गोविन्द-माधवानन्द-वासुदेवा यथाक्रमम् ॥ १८८ ॥

हैं। कार्य्य के लिये मुनिरत्न सनातन का भी इनमें प्रवेश है। शिवानन्द चक्रवर्त्ती लवङ्गमंजरी का प्रकाश करके प्रसिद्ध तथा वृन्दावनवासी हैं ॥ १७७-१-३ ॥

अनङ्गमंजरी श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी हैं। इनको कोई कोई गुणमंजरी कहते हैं। पहले जो रागमंजरी है वह अब रघुनाथभट्ट है। जो कि राधकुण्ड के तट में कुटीर पर वास करते थे। रघुनाथदास जी का पहिला नाम रसमंजरी है। इनको कोई कोई श्रीमती रतिमंजरी कहते हैं। कोई कोई नामभेद से भानुमती कहते हैं। भूगर्भठाकुर का पहला नाम प्रेममंजरी है। लोकनाथ गोस्वामी पहले लीलामंजरी थे ॥ १८४-१८७ ॥

कलावती-रसोल्लासा-गुणतुङ्गा नामक यों व्रज में रहकर विशाखा

रागलेखा–कलाकेल्यौ राधादास्यौ पुरा स्थिते ।
ते ज्ञेये शिखिमाहाती तत्स्वसा माधवी क्रमात् ॥ १८६ ॥
पुलिन्दतनया मल्ली कालिदासोऽधुनाभवत् ॥ १९० ॥
शुक्लाम्बरो ब्रह्मचारी पुरासीद्यज्ञपत्निका ।
प्रार्थयित्वा यदन्नं श्रीगौराङ्गो भुक्तवान् प्रभुः ।
केचिदाहुर्ब्रह्मचारी याज्ञिकब्राह्मणः पुरा ॥ १९१ ॥
अपरे यज्ञपत्न्यौ श्रीजगदीश–हिरण्यकौ ।
एकादश्यां ययोरन्नं प्रार्थयित्वाऽवसत् प्रभुः ॥ १९२ ॥
मथुरायां पुरा यासीत् सैरन्ध्री कृष्णवल्लभा ।
साद्य नीलाचलावासः काशीमिश्रः प्रभोः प्रियः ॥ १९३ ॥
मालती–चन्द्रलतिका–मञ्जुमेधा–वराङ्गदा ।
रत्नावली च कमला–गुणचूडा–सुकेशिनी ॥ १९४ ॥
कर्पूरमञ्जरी–श्याममञ्जरी–श्वेतमञ्जरी ।
विलासमञ्जरी–कामलेखा च मौनमञ्जरी ॥ १९५ ॥
गन्धोन्मादा–रसोन्मादा–चन्द्रिका कलभाषिणी ।
गोपाली–हरिणी–काली–कालाक्षी–नित्यमञ्जरी ॥ १९६ ॥
कलकण्ठी–कुरङ्गाक्षी–चन्द्रिका–चन्द्रशेखरा ।
या याः स्वयोग्यसेवायां नियुक्ताः सन्ति राधया ॥ १९७ ॥

रचित गीत को गाती थीं अब वे तीनों यथाक्रम से गोविन्द, माधवानन्द, वासुदेव नाम से ख्यात हैं। रागरेखा कलाकेलि नामक दोनों राधादासी अब शिखिमाहाती तथा उनकी भगिनी माधव हुई। पुलिन्दकन्या मल्ली अब कालिदास हैं। पहले जो यज्ञपत्नी थी वह अब शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी हुई। जिनसे अन्न की प्रार्थना कर गौराङ्ग-प्रभु भोजन करते थे। कोई कोई कहते हैं कि ब्रह्मचारी जी पहले याज्ञिक ब्राह्मण रहे। अन्य दो यज्ञपत्नी श्रीजगदीश-हिरण्यक हैं।

गौरेण तत्प्रियैः सार्द्धं धृतपुरुषविग्रहाः ।
खेलन्ति स्म स्वभावानुसारचाः क्रमशो यथा ॥ १६८ ॥
शुभानन्दो द्विजो ब्रह्मचारी श्रीधरनामकः ।
परमानन्दगुप्तो यत्कृता कृष्णस्तवावली ॥ १६९ ॥
रघुनाथो द्विजः कश्चिद्गौराङ्गानन्यसेवकः ।
कसारिसेनः सेनः श्रीजगन्नाथो महाशयः ॥ २०० ॥
सुबुद्धिमिश्रः श्रीहर्षो रघुमिश्रो द्विजोत्तमः ॥ २०१ ॥
रिपवः षट् काममुख्या जिता येन वशीकृताः ।
यथार्थनामा गौरेण जितामित्रः स निर्म्मितः ॥ २०२ ॥
निर्म्मिता पुस्तिका येन कृष्णप्रेमतरङ्गिणी ।

प्रभु ने एकादशी के दिवस जिन दोनों से अन्न प्रार्थना कर भोजन किया । पहले मथुरा में कृष्णवल्लभा जो सैरिन्ध्री (कुब्जा) थी वह अब नीलाचलवासी, प्रभुप्रिय काशीमिश्र हैं ॥ १८८-१९७ ॥

मालती, चन्द्रलतिका, मञ्जुमेधा, वराङ्गदा, रत्नावली, कमला, गुणचूडा, सुकेशिनी, कर्पूरमंजरी, श्याममंजरी, श्वेतमंजरी, विलासमंजरी, कामलेखा, मीनमंजरी, गन्धोन्मादा, रसोन्मादा, चन्द्रिका, कलभाषिणी, गोपाली, हरिणी, काली, कलाक्षी, नित्यमंजरी, कलकंठी, कुरंगाक्षी, चन्द्रिका, चन्द्रशेखरा जो ये सब राधिका के द्वारा निज निज योग्यसेवा में नियुक्त हैं वे सब प्रिय पुरुष शरीर धारण कर निज निज भावानुसार गौरचन्द्र के साथ क्रीड़ा करती हैं। उनका नाम यथाक्रम से यह है-शुभानन्दद्विज, श्रीधरब्रह्मचारी, कृष्णस्तवावली रचयिता परमानन्दगुप्त, गौराङ्ग के अनन्य सेवक रघुनाथ नामक कोई ब्राह्मण, कंसारिसेन, जगन्नाथसेनमहाशय, सुबुद्धिमिश्र, श्रीहर्ष, द्विजश्रेष्ठरघुमिश्र, कामादिषड्रिपु जयकारी श्रीगौराङ्ग के द्वारा जितामित्र करके बोले हुए, कृष्णप्रेमतरङ्गिणी के रचयिता

श्रीमद्भागवताचार्य्यो गौराङ्गात्यन्तवल्लभः ।
सुशीलः पण्डितः श्रीमान् जीवः श्रीवल्लभात्मजः ॥ २०३ ॥
वाणीनाथद्विजश्चम्पहट्टवासी प्रभोः प्रियः ॥ २०४ ॥
ईशानाचार्य्यकमलौ लक्ष्मीनाथाख्य-पण्डितः ।
गङ्गामन्त्री जगन्नाथो मामुपाधिर्द्विजोत्तमः ॥ २०५ ॥
श्रीकण्ठाभरणोपाधिरनन्तश्चट्टवंशजः ।
हस्तिगोपालनामा च रङ्गवासी च वल्लभः ॥ २०६ ॥
हर्य्याचार्य्यो गौरसङ्गी मिश्रः श्रीनयनस्तथा ।
कविदत्तो रामदासश्चिरञ्जीव-सुलोचनौ ॥ २०७ ॥
केचिन्महान्तः केचित्स्युर्महान्तश्चोपपूर्व्वकाः ।
उभयेषां गुणास्तुल्यास्तेनामी गणिता मया ॥ २०८ ॥
खण्डवासी नरहरेः साहचर्य्यान्महत्तरौ ।
गौराङ्गैकान्तशरणौ चिरञ्जीव-सुलोचनौ ॥ २०९ ॥
गुरोर्नाम न गृह्णीयादिति शास्त्रानुसारतः ।
श्रीश्रीनाथस्य पूर्व्वाख्या मया न प्रकटीकृता ॥ २१० ॥

गौरवल्लभ श्रीमद्भागवताचार्य्य, सच्चरित्र श्रीवल्लभात्मज पंडित श्रीजीव,प्रभुप्रिय चम्पाहाट निवासी वाणीनाथद्विज,ईशानाचार्य्य,कमल,लक्ष्मीनाथपण्डित,गङ्गामन्त्री,द्विजोत्तमजगन्नाथ मामुपाधि, चट्टवंशजात कण्ठाभरण उपाधिवाले अनन्त,हस्तिगोपाल,रङ्गवासी वल्लभ, हरि आचार्य्य, गौरांगसंगी श्रीनयनमिश्र, कविदत्त, रामदास, चिरञ्जीव, सुलोचन हैं ॥ २०७ ॥

इनमें से कोई कोई महान्त कोई कोई उपमहान्त थे । उभय का समान गुण होने के कारण पृथक्रूप से गणना नहीं की गई है॥२०८॥

खण्डवासी नरहरि के सहायक के कारण चिरंजीव और सुलोचन महत्तर हैं और गौराङ्ग के एकान्त आश्रित हैं ॥ २०९ ॥

व्याचकार परिपाटयायो भागवत-संहिताम्।
कुमारहट्टे यत्कीर्त्ति कृष्णदेवो विराजते ॥ २११ ॥
ये ये महान्त क्रमभङ्गभूतास्ते मेऽपराध कृपया क्षमन्तम्।
गुणान् विनिर्णीय सता समस्तान् ब्रह्मेशशेषाः कथितु न शक्ता ॥२१२
मीमांसकेभ्य शठतार्किकेभ्यो विशेषतो हेतुरतेभ्य एव ।
गोप्य प्रयत्नाद्रसशास्त्रविद्भ्यो देय सदा गौरपदाश्रयेभ्य ॥२१३॥
श्रीगौराङ्गगणोद्देशदीपिका रचिता मया।
दीप्यता परमानन्दसन्दोहभक्तवेश्मनि ॥ २१४ ॥
शाके वसुग्रहमिते मनुनैव युक्ते
ग्रन्थोऽयमाविरभवत् कतमस्य वस्त्रात्।

"शास्त्र के अनुसार आदि में गुरु का नाम उल्लेख नहीं करना चाहिये" इसलिये मैंने गुरु श्रीनाथ का पहला नाम नहीं प्रकाश किया है ॥ २१० ॥

जिनने परिपाटी के साथ भागवतसंहिता की व्याख्या की जिन की कीर्त्ति कुमारहट्ट में कृष्णदेवविग्रह रूप से विराजमान हैं। जिन जिन महान्तों का क्रमभंग हुआ है वे सब कृपा कर मेरा अपराध क्षमा करें। क्योंकि ब्रह्मा ईश और शेष भी साधुओं की गुणावली वर्णन करने में असमर्थ हैं ॥ २१२ ॥

मीमांसक, शठ, तार्किक, विशेष करके हेतुवादी इन सब के निकट यत्न से इस ग्रन्थ का गोपन रखें। गौरपदाश्रयी रसशास्त्रवेत्ताओं को इसे प्रदान करना चाहिये ॥ २१३ ॥

परमानन्द खनि भक्तों के गृह में हमसे विरचित यह श्रीगौरगणोद्देशदीपिका देदीप्यमान होवें ॥ २१४ ॥

वसु (८) ग्रह (९) मनु (१४) से युक्त शकाब्द में अर्थात् १४९८ शाक में किसी एक दिवस मैंने इस ग्रन्थ की रचना की।

चैतन्यचन्द्रचरितामृतमग्नचित्तैः
शोध्य. समाकलितगौरगणाख्य एषः ॥ २१५ ॥

इति श्रीपुरीदासपरमानन्ददासापरनामधेय
कविकर्णपूरविरचिता श्रीगौरगणोद्देशदीपिका
समाप्ता ॥

महाप्रभु श्रीचैतन्यचन्द्र के चरितामृत में मग्न चित्त विद्वगण मेरा इस गौरगण नामक ग्रन्थ का संशोधन करेंगे ॥ २१५ ॥

इति गौरगणोद्देशदीपिका का अनुवाद समाप्त हुआ ॥
मङ्गलवार-सप्तमी माघ बदी सम्वत् २०१० स्थान—मथुरा मदनमोहन जी का मन्दिर में (चक्रतीर्थ) अनुवादक—कृष्णदास ॥

भज-निताइ गौर राधेश्याम।



जप-हरेकृष्ण हरे राम ॥

श्रीसंकल्पकल्पद्रुमः



★

वृन्दावनेश्वरि ! वयो-गुण-रूप-लीला-
सौभाग्य-केलि-करुणाजलधे ! ऽवधेहि।
दासीभवानि सुखयानि सदा सकान्तां
त्वामालीभिः परिवृतामिदमेव याचे ॥ १ ॥
शृंगारयानि भवतीमभिसारयानि
वीक्ष्यैव कान्तवदनं परिवृत्य यान्तीम्।
धृत्वाञ्चलेन हरिसन्निधिमानयानि
संप्राप्य तर्जनसुधां हृपिता भवानि ॥ २ ॥
पादे निपत्य शिरसानुनयानि रुष्टां
तं प्रत्यपाङ्ग-कलिकामपि चालयानि।
तद्दोर्द्वयेन सहसा परिरम्भयानि
रोमाञ्चकञ्चुकवतीमवलोकयानि ॥ ३ ॥

हे वृन्दावनेश्वरि ! हे वयः, गुण, रूप, लीला, सौभाग्य, केलि, करुणा की समुद्र ! अवधान कीजिये। कुछ निवेदन करता हूँ। मैं आपकी दासी बनूँगा। कान्त के साथ सखीमण्डल से परिवृता आप की सेवा कर सुखी करूँगा॥ १ ॥

मैं आपको विविध विभूषण से भूषित कराकर अभिसार कराऊँगा। जब आप वाम्यता के वश कान्तवदन का अवलोकन कर फिर जाएँगी तब मैं वस्त्राञ्चल धारण कर श्रीहरि के निकट आपको लाऊँगा तथा आप की तर्ज्जना को सुधा की भाँति प्राप्त होकर प्रसन्न प्राप्त करूँगा ॥ २ ॥

आपको रुष्टा देख चरण में पतित होकर अनुनय करूँगा तथा

प्राणप्रिये ! कुसुमतल्पमलङ्कुरु त्व-
मित्यच्युतात्तिमकरन्द-रसं धयानि ।
मा मुञ्च माधव ! सतीमिति गद्गदार्द्ध-
वाचस्तवैत्य निकटं हरिमाक्षिपानि ॥ ४ ॥
वामामुरस्य निजवक्षसि तेन रुद्धा-
मानन्दबाष्पतिमिता मुहुरुच्छलन्तीम् ।
व्यस्तालका स्खलितवेणीमबद्धनीवीं
त्वां वीक्ष्य साधु जनुरेव कृतार्थयानि ॥ ५ ॥
तल्पे मयैव रचिते बहुशिल्पभाजि
पौष्पे निवेश्य भवतीं ननेति वाचम् ।
कृष्णं सुखेन रमयन्तमनन्तलीलं
वातायनात्तनयनैव निभालयानि ॥ ६ ॥

आपका अलक्ष्य में अपाङ्ग चालना सङ्केत कर श्रीहरि के विशाल भुजों के द्वारा आपको परिरम्भित कराऊँगा । उससे आप रोमाञ्च कञ्चुलिका से युक्त हो जायगीं । उसे देखकर आनन्दित हो जाऊँगा ॥३॥

आपका हस्तधारण कर "हे प्राणप्रिये ! इस कुसुमशय्या को अलंकृत कीजिये" इस प्रकार जब श्रीहरि कहेंगे तब मैं उस मकरन्दरस का पान करूँगा । फिर जब आप गद् गद् अर्द्ध वचन से कहेंगी कि "हे माधव ! मैं सती हूँ मुझे छोड़ दीजिये" तब मैं आकर आप के समक्ष श्रीहरि का तिरस्कार करूँगा ॥ ४ ॥

वाम्य स्वभाववती आपको हस्तयुगल से उठा कर जब श्रीकृष्ण निज वक्षःस्थल से रोध करेंगे तब आप आनन्द से उच्छलित होकर कुछ नहीं कह सकेंगी । उस समय आपकी अलकावली बिखर जायगी, वेणी का बन्धन टूट जायगा, नीवीबन्धन खुल जायगा । आप की इस प्रकार मधुर अवस्था देख कर जन्म को सफल करूँगा ॥५॥

मुझसे विरचित बहु शिल्पकला विशिष्ट पुष्पशय्या में नहीं नहीं

स्थिरा वहिर्व्यजनयन्त्र-निवद्धडोरी-
पार्णिाकर्षणवशान्मृदु वीजयानि ।
उत्तुङ्ग केलिकलिन-श्रमबिन्दुजाल-
मालोपयानि मणितैः स्मितमुद्गीरानि ॥ ७ ॥

श्रीरूपमञ्जरि-मुखप्रियकिङ्करीणामादेशमेव सतत शिरसा वहानि ।
तेनैव हन्त तुलसी परमानुकम्पापात्रीभवानि करवाणि सुखेन सेवाम् ॥ ८

माल्यानि हारकटकानि मृजा विचित्र-
वर्त्तिं शिताशुघुसृणागुरुचन्दनानि ।
वीटीर्लवङ्ग घनपुरादियुता सखीभि
मार्द्धं सुखं विरचयानि कला प्रकाश्य ॥ ६ ॥

इस प्रकार बोलने वाली आपको बैठाकर अनन्त लीलापरायण श्री कृष्ण जब आपके साथ विलास करेंगे तब मैं गवाक्षरध्र मे नयन दे कर दर्शन करूँगा ॥ ६ ॥

आप दोनो जब विलास से विश्रान्त होकर अत्युच्च केलिक्रीडा से श्रमित होंगे तब मैं बाहिर रह कर व्यजन यन्त्र डोरी का आकर्षण कर मृदु मृदु व्यजन करूँगा तथा घर्म्म कण दूर कराकर मन्द-हास्य के साथ रतिकूजन श्रवण करूँगा ॥ ७ ॥

उस समय श्रीरूपमञ्जरी प्रमुख प्रिय किङ्करीगण आदेश करेंगी कि "तुम अब डोरि परित्याग कर पुष्पानयन चन्दनघर्षणादि परिचर्या मे आओ"। उनका आदेश सर्वदा मस्तक मे धारण कर तत्कालीन सेवा में नियुक्त होऊँगा तथा आज्ञा प्रतिपालन करने के कारण तुलसीमञ्जरी की परम अनुकम्पा पात्र बनूँगा ॥ ८ ॥

मैं माला का ग्रथन, हार केयूरादि अलङ्कार का मार्जन, मञ्जरी-भङ्गी आदिक निर्म्माणार्थ विचित्र बाती की रचना, कर्पूर-कुङ्कुम-अगुरु-चन्दनादि से अनुलेपन का प्रस्तुत, लवङ्ग, सुपारि आदि से ताम्बूल निर्म्माण करूँगा, जिनसे सखियो के बीच मेरी कला कौशल

त्वां स्रस्तवेषवसनाभरणां सकान्तां
वीक्ष्य प्रसाधनविधौ द्रुतमुद्यताभिः ।
श्रीरूप-रङ्ग-तुलसी-रतिमञ्जरीभिः
दृष्टानयानि तव सम्मुखमेव तानि ॥ १० ॥
त्वामाशिखाचरणमूढविचित्रवेषां
स्प्रष्टुं पुनश्च धृततृष्णमवेक्ष्य कृष्णम् ।
आयान्तमेव विकट-भ्रुकुटीविभङ्ग-
हुङ्कृत्युदञ्चितमुखी विनिवर्त्तयानि ॥ ११ ॥
तत्रेत्य विस्मयवतीं ललितां प्रतीह
साध्वीत्वकण्टकविनिष्क्रमणार्थमस्याः ।
प्राप्तं न्यसिद्धत्वयि ! मामियमेव धूर्त्ते
त्युक्तिं हरेः स्वहृदलिं रसयानि नित्यम् ॥ १२ ॥
निष्क्रम्य कुञ्जभवनाद्विपिने विहर्त्तुं
कान्तैकबाहु परिरब्धतनुं प्रयान्तीम् ।

का प्रकाश होगा ॥ ९ ॥ केलिविलास से कान्त के साथ आपका स्रस्त वेश भूषादि देखकर श्रीरूपमंजरी-तुलसी-रतिमंजरी आदिक सखियाँ आपको सजाने के लिये उद्यत होंगी, उनकी दृष्टि निक्षेप से मैं उन सब वस्तुओं को आपके सन्मुख लाऊँगा ॥ १० ॥ हे राधिके ! मस्तक से चरण पर्य्यन्त विचित्र वेषों से भूषित आपको सतृष्ण श्रीकृष्ण स्पर्श करने के लिये जब आवेंगे तब उस समय मैं मिथ्यारोष के वश विकट भ्रुकुटी नचा कर हुंकार के द्वारा ऊपर मुख उठा कर उन का तिरस्कार करूँगा ॥ ११ ॥

वहाँ श्रीकृष्ण आ कर विस्मयवती ललिता जी को कहेंगे कि हे ललिते ! यह मैं राधिका का साध्वीत्व कण्टक दूर करने के लिये आया हूँ । परन्तु धूर्त्ता तुम्हारी यह सखी निषेध करती है । इस प्रकार मनोहर श्रीकृष्ण की उक्ति रूप मधुधारा का मैं निज हृदय म-

त्वामालीभिः सह कथोपकथा प्रफुल्ल-
वक्त्रमहं व्यजनपाणिरनुप्रयामि ॥ १३ ॥
गायामि ते गुणगणांस्तववर्त्मगम्यं
पुष्पास्तरैर्मृदुलयामि सुगन्धयामि ।
साली ततिः प्रतिपदं सुमनोऽतिवृष्टिं
स्वामीन्यहं प्रतिदिशं तनवानि बाढम् ॥ १४ ॥
प्रेष्ठ-स्वपाणिकृतकौसुम-हारकाञ्ची-
केयूरकुण्डलकिरीटविराजिताङ्गीम् ।
त्वां भूषयामि पुनरात्मकवित्व-पुष्पै-
रास्वादयानि रसिकालिततीरिमानि ॥ १५ ॥
चन्द्रांशुरूप्य-सलिलैरवनिक्तरोध-
स्यन्दचलत्कदम्बसुरभावलिगीतकीर्त्तिं ।

मधुकर के द्वारा आस्वादन करूँगा ॥ १२ ॥ हे वृन्दावनेश्वरि! कुञ्ज भवन से बाहिर होकर विपिन विहार के लिये गमनोद्यत, श्रीकृष्ण के बाहु से आलिङ्गित, सखियों के साथ कथोपकथन में प्रफुल्लहृदया आपके पीछे पीछे व्यजन हाथ में लेकर मैं गमन करूँगा ॥ १३ ॥ हे स्वामिनि! मैं निजरचित पद्यों से आपके गुणगण का गान करूँगा और जिस मार्ग में आप आयेंगे उस मार्ग में पुष्प बिछाकर कोमल तथा सुगन्धित करूँगा। सखियों के साथ पद पद में चारों दिशा में पुष्पों का वर्षण करूँगा ॥ १४ ॥ हे वृन्दावनेश्वरि! वनविहार समय जब प्रियतम अपने हाथों से कुसुम चयन कर उसके द्वारा हार, काञ्ची, केयूर, कुण्डल, किरीटादि बनाकर आपको भूषित करेंगे तब मैं भी कविता कुसुमों से आपको भूषित करूँगा अर्थात् कविता के द्वारा उसका वर्णन कर उस कविता कुसुम रस से रसिक सखीसमूह का आनन्द विधान करूँगा ॥ १५ ॥ हे श्रीराधे! कदम्बों के सुगन्ध से सुगन्धित, भ्रमरों से गीत कीर्ति, चन्द्रकिरण रूप रौप्य जल से

आरब्ध-रासरभसां हरिणा सह त्वां
त्वत्पाठितैव विदुषी कलयानि वीनाम् ॥ १६ ॥
रासं समाप्य दयितेन समं सखीभि
र्विश्रान्तिभाजि नवमालतिकानिकुञ्जे ।
स्वप्यानयानि रसधत् करकाम्ररम्भा-
द्राक्षादिकानि सरसं परिवेषयानि ॥ १७ ॥
तल्पं सरोजदलक्लृप्तमनङ्गकेलि-
पर्य्याप्तमात्मकलया रचितं तुलस्याम् ।
त्वां प्रेयसा सह रसादधिशाययानि
ताम्बुलमाशयितुमुल्वनमुल्लसानि ॥ १८ ॥
सम्वाहयानि चरणाब्जतलैः स्पृशानि
जिघ्रानि सौरभ-समृद्धचमत्क्रियाब्धिः ।
अक्ष्णोर्दधान्युरसिजौ परिरम्भयानि
चुम्बान्यलक्षितमवेक्षित सौकुमार्य्योः ॥ १९ ॥

मानों धौत उस यमुना पुलिन में जब आप श्रीहरि के साथ रासारम्भ करेंगी तब उस समय आपकी शिक्षिता, वीणावाद्य में पण्डिता मैं वीणा लेकर बाइन करूँगा ॥ १६ ॥ सखियों के सह प्राणवल्लभ के साथ जब आप रासविहार समापन कर नवीन मालतीकुञ्जमें विश्राम करेंगी तब मैं सरस अनार, आम्र, केला, अंगूरादिक फल लाकर परिवेषण करूँगा ॥ १७ ॥ हे राधे ! तुलसी के द्वारा निज कला प्रकाशन पूर्वक कमलदलों से विरचित अनङ्गक्रीड़ा युक्त शय्या में प्रियतम के साथ आपको शयन कराऊँगा तथा परमानन्द से सरस ताम्बूल प्राप्ति के लिये उल्लसित होऊँगा ॥ १८ ॥ हे ईश्वरि ! मैं आप का चरणकमल युगल की संवाहन (सेवा) करूँगा तथा संवाहन करता हुआ सौरभ का आघ्राण कर आश्चर्य्य समुद्र का लाभ करूँगा और भी नयनयुगल में लगा कर स्तनों में परिरम्भन कराऊँगा तथा अ-

निशास्तनुश्रन्तेतरप्रसृतालकाल्या
ताडङ्क-हारतिलगन्धनहाप्रमुक्ता ।
प्रेष्ठस्य ते तव च सग्रथिता निभाल्य
तत्रानयानि परमाप्तसखी प्रबोध्य ॥ २० ॥
ता दर्शयानि सुखसिन्धुषु मज्जयानि
ताभ्य प्रसादमतुल सहसा लभानि ।
तन्नूपुरादिरणितैर्गतसान्द्रनिद्रा
शय्योत्थिता सचकिता भवतीं भजानि ॥ २१ ॥
हे स्वामिनि ! प्रियसखीत्रपयाकुलाया
कान्ताङ्गतस्तव वियोक्तुमपारयन्त्या ।
स्त्रग्ग्रन्थयान्यलवकुण्डलमाल्यमुक्ता-
ग्रन्थि विचक्षणतयाङ्गुलिकौशलेन ॥ २२ ॥
नाशाग्रत श्रुतियुगाच्च वियोजयानि
तद्भूषण मणिसरास्तु विसूत्रयानि ।

लक्षित रूप से चुम्बन कर उसका सौकुमार्य का आस्वादन करूँगा ॥ १६ ॥ हे देवि ! रात्रि शेष मे आपका और आपके प्रियतम का प्रसरणशील अलक, ताटङ्क, हार, वेसर का ग्रन्थन शेष देख कर परमप्रिय सखियों को जागरित कर वहाँ उन वेशों का आनयन पूर्वक आपको दिखाऊँगा ॥ २० ॥ सखियों को उन्हे दिखाकर सुखसागर मे निमज्जित करूँगा तथा उनके अतुलनीय प्रसाद का लाभ करूँगा। सखियों के नूपुर शब्दों से निविड निद्रा प्राप्त अथच चकित होकर जागरण कारी आपका भजन करूँगा ॥ २१ ॥ हे स्वामिनि ! आप प्रियसखिया को देख कर लज्जायुक्त हो उठने की चेष्टा करेंगी । परन्तु हार कुण्डलादि से ग्रन्थित हो जाने के कारण कान्त के अग से आप वियुक्त होने मे असमर्था होंगी उस समय में विचक्षणता से अगुली कौशल दिखाकर ग्रन्थि विमोचन करूँगा ॥ २२ ॥ मैं आपके ना-

प्राणार्बुदादधिकमेव सदा तवैकं
रोमापि देवि ! कलयानि कृतावधाना ॥ ८३ ॥
त्वा सालिमाल्मसदनं निभृतं व्रजन्तीं
त्यक्त्वा हरेरनुपथं तदलक्षितेत्य ।
तं खण्डितामनुनयन्तमवेक्ष्य चन्द्रा
तद्वृत्तमालिततिसंसदि वर्णयानि ॥ ८४ ॥
प्रक्षालयानि वदनं सलिलैः सुगन्धै
र्दन्तान् रसालजदलैस्तव धावयानि ।
निर्लेजयानि रसना तनुहेमपट्या
सन्दर्शयानि मुकुरं निपुणं प्रमृज्य ॥ ८५ ॥
स्नानाय सूक्ष्मवसनं परिधाययानि
हाराङ्गदाद्यपरमनादवतारयानि ।
अभ्यञ्जयान्यरुणसौरभहृद्यतैलै
रुद्वर्त्तयानि नवकुंकुमचन्द्रचूर्णैः ॥ ८६ ॥

साथ से बेसर, कर्णयुगल से कुण्डल को उन्मुक्त करूँगा। निज अर्बुद प्राण से भी अधिक आपका एक एक तनुरुह को सावधानता के साथ अवलोकन करूँगा ॥ ८३ ॥ हे स्वामिनि ! सखियों के साथ जब आप निभृत मार्ग से निज गृह को गमन करेंगे उस समय मैं आपका संग त्याग कर अलक्षितरूप से श्रीकृष्ण के पश्चात् गमन करूँगा तथा खण्डिता चन्द्रावली के अनुनय कारी उनको देखकर उस वृत्तान्त का सखियों की सभा में वर्णन करूँगा ॥ ८४ ॥

हे देवि ! मैं सुगन्ध जलों से आपके मुख का प्रक्षालन, आम्रदलों से दन्तों का धावन, सूक्ष्म सुवर्ण जिभी से जीभ का सम्मार्जन कराऊँगा। उत्तम रूप से मुख का मार्जन करा कर आप के समक्ष दर्पण रख देऊँगा ॥ ८५ ॥ स्नान कराने के लिये आपको सूक्ष्मश्वेतवस्त्र पहिना कर भीअङ्ग से हार-अङ्गदादि अलङ्कार का उतारण

नीरैर्थहासुरभिभिः स्नपयानि गात्रा-
दम्भांसि सूक्ष्मवसनैरपसारयानि ।
केशान् जवादगुरुधूम-कुलेन यत्ना-
दाशोपयानि रभसेन सुगन्धयानि ॥ २७ ॥
वासो मनोभिरुचितं परिधापयानि
सौवर्णकङ्कतिकया चिकुरान् विशोध्य ।
गुम्फानि वेणीममलैः कुसुमैर्विचित्रा
मग्रे लसच्चमरिकामनिजातभाताम् ॥ २८ ॥
चूडामणिं शिरसि मौक्तिकपत्रपास्यां
भाले विचित्रतिलकं च मुदारचय्य ।
अङ्क्त्वाक्षिणी श्रुतियुगं मणिकुण्डलाढयं
नासामलंकृतवतीं करवानि देवि ! ॥ २९ ॥
गण्डद्वये मकरिके चिबुके विलिख्य
कस्तुरिकेष्टपृषतं कुचयोश्च चित्रम् ।

करूँगा तथा अरुणवर्ण मनोहर सुगन्धित तैल से श्रीअङ्ग का उद्वर्त्तन कर पीछे कुंकुम-कर्पूरचूर्ण से भूषित कराऊँगा ॥ २६ ॥

उसके अनन्तर महान् सुगन्धि जल के द्वारा स्नान कराकर सूक्ष्म वस्त्र के द्वारा श्रीअंग से जल का अपसारण करूँगा । यत्न के साथ केश कलाप अगुरुधूम्र से सुखा कर आनन्द के द्वारा सुगन्धित करूँगा ॥ २७ ॥ आपके मनो अभिरुचित वस्त्र को पहिनाय कर पीछे सुवर्ण रचित कंघा के द्वारा केशकलाप का संस्कार कर चमरी स्थित मणि के द्वारा शोभित वेणी को सुगन्धि पुष्पों से भूषित करूँगा॥२८॥ हे श्रीराधे ! आपके ललाट में आनन्द के साथ विचित्र तिलक की रचना कर तथा मस्तक में मुक्ता निर्म्मित ललाटिका और चूड़ामणि को धारण कराऊँगा । हे देवि ! आपके नेत्रों को काजल से रंजित तथा कर्णों में मणि कुण्डल का अर्पण कर पश्चात् मुक्ताफल से नासा

वाह्वोस्तवाङ्गदयुगं मनिवन्धयुग्मे
चूडामसारकलिताः कलयानि यत्नात् ॥ ३० ॥
पान्यंगुलीः कनकरत्नमयोर्म्मिकाभि
रभ्यर्च्चयानि हृदयं पदकोत्तमेन ।
मुक्तोत कञ्चुलिकयोरसिजौ विचित्र-
माल्येन हारनिचयेन च कण्ठदेशम् ॥ ३१ ॥
काञ्च्या नितम्बमथ हंसकनूपुराभ्यां
पादाम्बुजे दलततिं रणदंगुरीयैः ।
लाक्षारसैररुणमप्यनुरञ्जयानि
हे देवि ! तत्तलयुगं कृतपुण्यपुञ्जा ॥ ३२ ॥
अङ्गानि साहजिकसौरभयन्त्यथापि
देव्यर्च्चयानि नवकुङ्कुमचर्च्चयैव ।
लीलाम्बुजं करतले तव धारयानि
त्वां दर्शयानि मणिदर्पणमर्पयित्वा ॥ ३३ ॥

को अलंकृत करूँगा ॥ २६ ॥ हे श्रीराधे आपके गण्डयुगल में मकरिका, चिबुक में कस्तूरीविन्दु तथा कुचयुग्म में विचित्र चित्र का अङ्कन करूँगा। और भी बाहु दोनों में अङ्गद तथा मणिबन्ध में इन्द्रनीलमणि के द्वारा चूड़ा का परिधान कराऊँगा ॥ ३० ॥ आपकी हस्तांगुलि समूह मणिमय मुद्रिका के द्वारा, वक्षोदेश उत्तम पदक के द्वारा स्तन युगल मुक्ता ग्रथित कंचुकी के द्वारा, कण्ठदेश विचित्र माला-हारों से विभूषित करूँगा ॥ ३१ ॥ नितम्बदेश कांची के द्वारा, पादपद्म दोनों पादकटक तथा नूपुर के द्वारा, अंगुलिसमूह शब्दायमान विछिया के द्वारा सजाकर हे देवि ! कृत पुण्यपुंजा मैं पादपद्म का तलदेश अरुणवर्ण लाक्षारस के द्वारा अनुरंजित कराऊँगा॥३२॥ हे देवि ! आपके श्रीअंग स्वाभाविक सुगन्धमय हैं। तो भी नवीन कुंकुम से मैं उसको चर्चित करूँगा। आपके हस्तारविन्द में लीला-

सौन्दर्य्यमद्भुतमवेक्ष्य निजं स्वकान्त-
नेत्रालिलोभनमवेत्य विलोलगात्रीम्।
प्राणार्बुदेन विधुवर्त्तिकदीपकैश्च
निर्म्मञ्छयानि नयनाम्बुनिमज्जिताङ्गी ॥ ३४ ॥
गोष्ठेश्वरी प्रहितया सह कुन्दवल्ल्या
प्राभातिकप्रियतमाशनसाधनाय।
यान्तीं समं प्रियसखीभिरनुप्रयानि
ताम्बूलसम्पुटमणिव्यजनादि पाणिः ॥ ३५ ॥
गोष्ठेश्वरी-सदनमेत्य पदे प्रणम्य
तस्यास्तदाप्तभविकां त्रपयावृताङ्गीम्।
घ्राता तया शिरसि तन्नयनाम्बुसिक्तां
त्वां वीक्ष्य तामहमपि प्रणमामि भक्त्या ॥ ३६ ॥

कमल धारण करा कर मणिदर्पण का अर्पण कराऊँगा ॥ ३३ ॥ निज अद्भुत सौन्दर्य्य दर्शन कर यह प्राणवल्लभ के नयन भ्रमरों का लोभनीय है ऐसा बोध कर आप चंचलगात्री होंगी तब उस समय मैं अश्रुवारि से सिंचिता होकर अर्बुद प्राण के द्वारा कपूर-बत्ती लेकर निर्मञ्छन (आरती) करूँगा ॥ ३४ ॥ हे देवि ! आप यशोदा प्रेरित कुन्दलता के साथ श्रीहरि का प्रातःकालीन भोजन साधनार्थ प्रियसखियों के सह जब नन्दालय गमन करेंगे तब उस समय मैं हाथों मे ताम्बूलपात्र और मणि वीजना लेकर आपका अनुगमन करूँगा॥३५॥ गोष्ठेश्वरी के गृह में उपस्थित होकर आप उनके चरण में भूपतित दण्डवत कर कुशल लाभ करेंगी। यशोदा नयन जल से आपको सिंचित कर मस्तक का आघ्राण करेंगी। उस समय आप लज्जिता हो नीचे वदन कर खड़ी रहेंगी। मैं इस प्रकार आपको दर्शन करता हुआ गोष्ठेश्वरी को भक्ति के साथ प्रणाम करूँगा ॥ ३६ ॥ हे सुन्दरि

मूर्त्तं तयोऽसि वृषभानुकुलस्य भाग्यं
गेहस्य मेऽसि तनयस्य च मे वराङ्गि !।
नैरूज्यदास्यमृतपाणिरभूर्वरेण
दुर्व्वाससो यदिति तद्वचसाहसानि ॥ ३७ ॥
स्नातानुलिप्तवपुषो दयितस्य तस्य
तात्कालिके मधुरिमन्यति लोलिताक्षीम् ।
स्वामिन्यवेत्य भवतीं क्वचन प्रदेशे
तत्रैव केन च मिषेण समानयानि ॥ ३८ ॥
प्रक्षालयानि चरणौ भवदङ्गतः स्रङ्-
माल्यादिपाकरचनानुपयोगि यत्तत् ।
उत्तारयानि तदिदं तु तवाऽस्त्विति त्व-
द्वाचोल्लसानि विकसन्मधुमाधवीव ॥ ३९ ॥

राधिके ! तुम वृषभानु वंश की मूर्त्तिमती तपस्या स्वरूपा हैं। मेरा गृह तथा तनय का मूर्त्तिमान सौभाग्य है। क्योंकि दुर्व्वासा जी के वर से तुम अमृत-हस्ता हो। मेरे पुत्र को निरुज्यकारिणी हो"। इस प्रकार आपके प्रति यशोदा जी का वचन सुनकर मैं हास्य करूँगा ॥ ३७ ॥ हे स्वामिनि ! स्नानानुलेपनादि के अनन्तर प्रियतम के तत्कालिक माधुर्य्य आस्वादन से आपको चंचल नयना जान कर यहाँ कोई कृष्णदर्शनोपयोगी स्थान में किसी छल से निमिषमात्र के लिये आपको लाऊँगा ॥ ३८ ॥ उसके अनन्तर आपके चरण युगल का प्रक्षालन कर पाक समय उचित मणि-पुष्पों की मालाओं को श्रीअङ्ग से उत्तोलन करूँगा। उस समय पूर्वकृत मेरी चतुराई के वश आप श्रीकृष्ण माधुर्य्य दर्शनानन्द से विभोर होकर"हे दासि ! ये सब आभरण तुम्हारे हों तुम इनका ग्रहण करो" इस प्रकार कहेंगी। मैं उसे सुनकर वसन्तकाल में विकसित माधवीलता की भाँति उल्लसित होऊँगा ॥ ३९ ॥ पाक के अनन्तर सुमिष्ट पायस, अन्न, दाल, साग

पत्न्यास्थितां मधुरपायसशाकसूप-
भाज्जिप्रभृत्यमृतनिन्दि चतुर्विधान्नम् ।
त्वां लोकयानि ननेति मुहुर्वदन्तीं
गोष्ठेशयापि परिवेशयितुं निदिष्टाम् ॥ ४० ॥
तृप्त्युत्थितां प्रियतमाङ्गरुचिधयन्त्या
वातायनार्पितदृशः सहसोल्लसन्त्याः ।
आनन्दजद्युतितरङ्गभरे मनोज-
मञ्जुकृते तव मनो मम मज्जयानि ॥ ४१ ॥
राधे ! तवैव गृहमेतदहं च जाते !
सूनोः शुभे ! किमपरां भवतीमवैमि ।
तद्भुत्र सम्मुखमिति व्रजपागिरा त्वत्
वक्त्रे स्मितं स्वहृदयं रसयानि नित्यम् ॥ ४२ ॥
यान्तं वनाय सखिभिः सममात्मकान्तं
पित्रादिभिः सरुदितैरनुगम्यमानम् ।

प्रभृति अमृतनिन्दी चार प्रकार के अन्न के परिवेशनार्थ यशोदा के द्वारा आदिष्टा होकर आप बार बार नहीं नहीं ऐसा कहेंगी । मैं इस प्रकार आपका दर्शन करूँगा ॥ ४० ॥ हे श्रीराधिके ! आप भोजन से तृप्त प्रियतम की अङ्गकान्ति का दर्शन करते हुए उल्लसिता होकर गवाक्ष में नेत्रार्पण करेंगे । मैं आपके कन्दर्पकृत आनन्द जनित कान्ति तरङ्ग में मन को निमग्न करूँगा ॥ ४१ ॥ "हे राधे ! हे पुत्रि ! हे मङ्गलरूपे ! यह घर तुम्हारा है । मैं अपने पुत्र से तुमको भिन्न नहीं जानती हूँ" । इस प्रकार व्रजरानी का वचन सुनकर आपके श्रीमुख में मन्दहास्य उत्पन्न होगा । मैं चित्त में उसका आस्वादन करूँगा ॥ ४२ ॥ उसके अनन्तर आपके प्राणवल्लभ सखाओं के साथ पूर्वाह्न समय में वन के लिये गमन करेंगे । पित्रादि गुरुजन रोदन करते हुए उनका अनुगमन करेंगे । उसे देखकर आप अपने घर पर आय

वीच्याप्तगौरवगेहां दिननाथपूजा-
व्याजेन लब्वगहनां भवतीं भजानि ॥ ४३ ॥
कान्तं विलोक्य कुसुमावचये प्रवृत्ता-
मादाय पत्रपुटीकामनुयान्यहं त्वाम् ।
का तस्करीयमिति तद्वचसा न कापी
त्युक्त्वा सहार्पितदृशं भवतीं स्मराणि ॥ ४४ ॥
पुष्पाणि दर्शय कियन्ति हृतानि चौरी !
त्युक्त्यैव पुष्पपुटिकामपि गोपयानि ।
तद्वीक्ष्य हन्त मम कक्षतले क्षिपन्तं
पाणिं बलात्तमभिमृश्य भवानि दूना ॥ ४५ ॥
रक्षाय देवि ! कृपया निजदासिकां मा-
मित्युक्तकातरगिरा शरणं व्रजानि ।
किं धूर्त ! दुःखयसि मज्जनमित्यमूष्य
बाहुं करेण तुदतीं भवतीं श्रयानि ॥ ४६ ॥

कर सूर्य्यपूजा छल से वन गमन करेंगी । मैं भी आपका भजन क॰
रूँगा अर्थात् आपके साथ वन में गमन करूँगा ॥ ४३॥ वनमें जाकर आप कान्त का अवलोकन कर पुष्पचयन में प्रवृत्ता होंगी । मैं भी उस समय पत्र निर्म्मित पुष्पाधार (फूलदानी) लेकर आपका अनुगमन करूँगा । श्रीकृष्ण जब मुझसे पूछेंगे हे सखि ! "यह चोरी (पुष्पचोरी) कौन है" तब मैं"कोई नहीं है"कह कर कृष्णार्पितनयना आपका स्मरण कराऊँगा ॥ ४४ ॥ हे चोरि ! कितने पुष्पों की चोरी की मुझे दिखाओ इस प्रकार श्रीकृष्ण के बोलने पर मैं पुष्पाधार का गोपन करूँगा। उसे देखकर श्रीकृष्ण बल प्रकाश के साथ मेरे कक्ष में हस्तार्पण करेंगे । मैं उसमें व्यथित हो जाऊँगा ॥ ४५ ॥ हे देवि ! मैं तुम्हारी दासी हूँ । आज मेरी रक्षा कीजिये" । इस प्रकार कातर वाक्य से आपके आश्रय की प्रार्थना करूँगा । आप उस समय "हे

त्यक्त्वैव मा भवदुरश्चवचं विखण्ड्य
माला भजं तव गलात् स्वगले निधाय ।
पुष्पाणि चौरि ! मम किं तव कण्ठहेतो
स्तत्कण्ठमेव सुभृश परिपीडयानि ॥ ४७ ॥
राजास्ति कन्दरतले चल तत्र धूर्त्त !
तस्याज्ञयैव सहसा च विवस्त्रयिष्ये ।
ता वीक्ष्य हृष्यति सचेन्निजदिव्यमुक्ता–
माला प्रदास्यति ललाटतटे मदीये ॥ ४८ ॥
दोषो न ते व्रजपतेस्तनयोऽसि तस्य
दुष्टस्य यन्नरपतेः खलु सेवकोऽभूः ।
तद्बुद्धिरीदृगभवन्मम चात्र साध्व्या
भाले किमेतदभवल्लिखितं विधात्रा ॥ ४९ ॥

धूर्त्त ! क्यों मेरे जन को दुःख देते हो ? इस प्रकार कह कर निज हस्त से श्रीकृष्ण हस्त का पीडन करेंगे । मैं भी आपका आश्रय लूँगा ॥४६॥ श्रीकृष्ण मेरा परित्याग कर आपके वक्षस्थल विराजित कञ्चुक का खण्डन कर आपकी कण्ठस्थ पुष्पमाला को अपने गले में धारण कर कहेंगे "हे चौरि ! हमारे ये पुष्पसमूह क्या तुम्हारी माला के लिये हैं । अत उससे परिवर्त्त में हम तुम्हारा कण्ठदेश का पीडन करेंगे ॥ ४७ ॥ हे धूर्त्त ! इस पर्वत कन्दरा में कन्दर्पराजा विराजमान हैं । वहाँ चलो । उनकी आज्ञा से मैं तुमको विवस्त्रा करूँगा । पुष्पचौरी तुमको देखकर वह प्रसन्न हो मेरे ललाट में अपनी दिव्य मुक्तामाला का प्रदान करेगा ॥ ४८ ॥ हे राधे ! आप उस समय श्रीकृष्ण को प्रत्युत्तर इस प्रकार करेंगी । हे कृष्ण ! तुम व्रजराज के पुत्र होकर उस दुष्ट राजा के सेवक बन रहे हो । इस प्रकार जो तुम्हारी बुद्धि हो गई है उसमें तुम्हारी दोष नहीं है । परन्तु उस दुष्ट सग का दोष है । हाय साध्वी मेरे ललाट में क्या विधाता ने ऐसा

इत्यादि वाङ्मयसुधामहह श्रुतिभ्यां
स्वाभ्यां धयान्युदरपूरमथेक्षणाभ्याम्।
रूपामृतं तव सकान्ततया विलास-
सीधुञ्च देवि! वितरान्यऽयमाद्यानि ॥ ५० ॥
प्रेष्ठ-सरस्यभिनवां कुसुमैर्विचित्रां
हिन्दोलिकां प्रियतमेन सहाधिरूढाम्।
त्वां दोलयान्यऽथकिराणि परागराजि-
र्गायानि चारुमहतीमपि वादयानि ॥ ५१ ॥
वृन्दावने सुरमहीरुहयोगपीठ-
सिंहासने स्वरमणेन विराजमानाम्।
पाद्यार्घ्यधूपविधुदीपचतुर्विधान्न-
स्रग्भूषणादिभिरहं परिपूजयानि ॥ ५२ ॥
गोवर्द्धने मधुवनेषु मधूत्सवेन
विद्राविताग्रपसखी शतवाहिनीकाम्।
पिष्टातयुद्धमनुकान्तजयाय यान्तीं
त्वां माद्यानि नव-जातुपकूपिकालीः ॥ ५३ ॥

ही लिखा है ॥ ४६ ॥ हे देवि ! मैं आनन्द के साथ इस प्रकार वचन सुधा से निज कर्णयुगल को पान करा कर पश्चात् नयन दोनों के द्वारा कान्त के साथ आपकी विलाससुधा का पान कर आनन्द उन्मत्त हो जाऊँगा ॥ ५० ॥ हे देवि ! आप प्रिय सरोवर (राधाकुण्ड) में पुष्पनिर्म्मित अभिनव विचित्र हिन्दोलिका (झूला) में प्रियतम के साथ आरोहण करेंगी । मैं आपको झुलाऊँगा, परागों का वर्षण करूँगा, गान करूँगा, वीणा बजाऊँगा ॥५१॥ हे देवि ! वृन्दावन में कल्पवृक्ष के मूल में योगपीठस्थ सिंहासन पर प्राणवल्लभ के साथ आप विराजमान होने पर मैं पाद्य, अर्घ्य, कर्पूर, दीप, चतुर्विध अन्न, माला, भूषणादि के द्वारा सर्व प्रकार आपकी सेवा करूँगा॥५२॥

अग्रे स्थितोऽस्मि तव निश्चल एव वक्ष
उद्घाटय कन्दुकचयं क्षिपचेद्बलिष्ठा ।
उद्घाटय कञ्चुकमुरः किल दर्शयन्ती
स्वस्थापि तिष्ठ यदि ते हृदि वीरतास्ति ॥ ५४ ॥
यत्कथ्यसे तदयमेव तव स्वभावो
यत्पूर्व्वजन्मनि भवानजितः किलासीत् ।
मिथ्येव तत् यदिह भोः कविशो जितोभू
न्मतकिङ्करीभिरपि तद्विगतत्रपोऽसि ॥ ५५ ॥
इत्येवमुत्पुलकिनी कलयानि वाचः
सिञ्जानकङ्कणकनत्कृतदुन्दुभीकम् ।
युद्धं सुरासुरिव रदारदि चारुबाहु
बाहव्यमन्द नरवरानखरिस्तवानि ॥ ५६ ॥

हे राधे ! आप श्रीगोवर्द्धन में वसन्तकान्त-वन प्रदेश मे होलिका उत्सव के द्वारा लज्जारहित होकर सखी सेना के साथ गुलाल युद्ध मे कान्त की जय करने के लिये गमन करेंगीं उस समय में आपको नवीन कुंकुम कुप्पाओं का ग्रहण कराऊँगा ॥ ५३ ॥ उस समय श्रीकृष्ण कहेंगे-मैं वक्ष उद्घाटन कर निश्चलभाव से तुम्हारे आगे खड़ा हूँ यदि तुम बलवती हो तव मेरा वक्षः में कन्दुकों का क्षपण करो । यदि तुम्हारे हृदय मे वीरत्व है तब कॉचोली (अँगिया) उद्घाटन पूर्वक वक्षः दिखा कर मेरे आगे अवस्थित करो ॥ ५४ ॥

श्रीकृष्ण के इस प्रकार वचन सुनकर आप कहने लगेंगी कि हे श्रीकृष्ण ! तुम जो आत्मप्रशंसा करते हो यह तुम्हारा स्वभाव है। हम सबने पौर्णमासी जी के मुख से जो सुना है कि-तुम पूर्व्वजन्म में अजित थे वह मिथ्या है । क्योंकि हमारी दासियों से तुम कितनी बार पराजित हो गये हो अतएव तुम निर्लज्ज हो ॥ ५५ ॥ मे तुम दोनों के इस प्रकार वचन सुनकर अत्यन्त पुलकायमान हो जाऊँगा

कस्याश्चिदद्रि नृपदिव्यदुपत्यकायां
सप्रेयसि त्वयि सखीशतवेष्टितायाम् ।
विश्रान्तिभाजि वनदेवतयोपनिता-
नीष्टानि सीधु चषकानि पुरो दधानि ॥ ४७ ॥
हा किं-कि-किं घ धरणी घु-घु घुर्णतीयं
धा-धा-ध धावति भयात् वि-वि वृक्षपुञ्जः ।
भी-भी-भि भीरुरहमत्र कथं जि-जीवा-
न्येवं लगिष्यसि यदा दयितस्य कण्ठे ॥ ४८ ॥
त्वत्स्वामिनी प्रलपतीयमिमां गदेन
हीनां करोमि कलयात्र निरेहिनेतः ।
इत्युक्तिसीधुरसतर्पित हृत्तदैव
निष्क्रम्य जालयिततो विदधानि नेत्रे ॥ ४९ ॥

और कङ्कण की झङ्कार के साथ दुन्दुभिवाद्य से युक्त मुसामुसि-दन्तादन्ति-हाथाहथि तथा नखानखि युद्ध की स्तुति करूँगा ॥ ४६ ॥ आप इस गिरिराज की किसी उपत्यका में प्राणवल्लभ के साथ शत-शत सखियों से परिवेष्टिता होकर विश्राम करेंगी। मैं उस समय व-नदेवी के द्वारा आनीत मधुपात्र समूह को आपके आगे धरूँगा॥४७॥ उस समय मधुपान से आपका वचन स्खलित हो जाएगा। आप कहने लगेगी हाय यह ध-धरणी क्या क्या क्या घु-घु घूर्णायमान हो रही है। भय से वि-वि वृक्षसमूह धा-धा धावमान हो रहा है। भि-भि-भि भीरु मैं किस प्रकार जि-जीवन धारण करूँगी। इस प्रकार कहती हुई आप प्रियतम के कण्ठलग्ना हो जायेंगी ॥ ४८ ॥ उस स-मय श्रीकृष्ण हमें कहेंगे-तुम्हारी स्वामिनि राधा प्रलाप कर रही हैं। मैं उनको आरोग्य कर रहा हूँ। तुम यहाँ से मत चली जाओ। उन का इस प्रकार कथामृत रस से तृप्त हृदय हो यहाँ से निर्गत होकर लताजाल में नयन अर्पण करूँगा अर्थात् आप दोनों का विवाद उ-

घोणाक्षिकर्णवदने जलसेकतया
कृष्णस्तया जित इतः सहसा निमज्ज्य ।
माहो भवन् स खलु यत्कुरुते स्म तत्तत्
वेदाम्यहं तव मुखाम्बुजमेव वीक्ष्य ॥ ६० ॥
अभ्यञ्जयानि ससखीदयितां सहालि
स्त्वां स्नापयानि वसनाभरणैर्विचित्रम् ।
शृङ्गारयानि मणिमन्दिरपुष्पतल्पे
संभोजयानि करकादय शाययानि ॥ ६१ ॥
वानीर कुञ्ज इह तिष्ठति कृष्ण ! देवी
निन्हुत्य मृग्यसि कथं सदितः परत्र ।
सत्यामिमां मम गिरं तमविश्वसन्तं
यान्तं मति प्रदर्श्य भवती हर्षयानि ॥ ६२ ॥

रसव देखूँगा ॥ ५६ ॥ जलविहार के समय नासिका-कर्ण-नेत्र और मुख में जलसींचन के द्वारा आपके द्वारा पराजित श्रीकृष्ण हठात् वहाँ से जल में निमग्न हो जाएगें। पश्चात् माह बन कर जो करेंगे उसे मैं आपका मुखपद्म देखकर जान लूँगा ॥ ६० ॥ कान्त और सखियों के साथ आपको मैं अभ्यञ्जन तथा स्नान करा कर विचित्र वसन-आभरण के द्वारा विभूषित कराऊँगा। पश्चात् दाडिम (अनार) फलादि भोजन करा कर मणिमन्दिर में पुष्पशय्या पर शयन कराऊँगा ॥ ६१ ॥ हे राधे ! आप शयन करते हुए वहाँ उठकर कौतुक वश वानीरकुंज (वेत्र निकुंज) में छिप जाएगीं। श्रीकृष्ण आपको ढूंढने लगेंगे। मैं परिहास कर उनसे कहूँगा। हे श्रीकृष्ण ! देवी राधिका इस वानीर कुंज में छुपे हैं। अतएव अन्यत्र क्यों ढूंढ रहे हैं। परन्तु श्रीकृष्ण मेरे इस सत्य वचन में अविश्वास कर अन्यत्र गमन करेंगे। मैं आपको उसे दिखा कर प्रसन्न करूँगा ॥६२॥ तद-

स्वामिन्यसूत्र हरिरस्ति कदम्बकुञ्जे
निन्हुत्य मृग्यसि कथं तदितः परत्र ।
सत्यामिमां मम गिरं खलु विश्वसत्याः
पानौ जयं तव नयानि तमाप्तवत्याः ॥ ६३ ॥
राधे ! जिता च जयिनी च पणं न दातु
मादातुमप्यहह चुम्बनमीशिषे त्वम् ।
आश्लेषचुम्बमधुराधरपानतोऽन्यं
द्युते ग्लह रसविदः प्रवरं वदन्ति ॥ ६४ ॥
गोवर्द्धनेऽत्र मम कापि सखी पुलिन्द–
कन्यास्ति शृङ्गयतितरां निपुणोद्दशेऽर्थे ।
मद्ग्राह्यदेय-पणवस्तुनि मन्नियुक्ता
सा ते गृहीष्यति च दास्यति चोपगूहम् ॥ ६५ ॥
उक्त्वेत्थमात्मदयितं प्रतिवक्ष्यसे मां
याहीत्यथोत्पुलकिनी द्रुतपादपाता ।

नन्तर आपसे कहूँगा हे स्वामिनि ! श्रीहरि कदम्बकुंज में छिपे हुए हैं अतः अन्यस्थान में क्यों अन्वेषण करती हो । मेरे इस वचन का विश्वास कर श्रीकृष्ण को प्राप्त होने पर आपके हस्त में जय समर्पण करूँगा ॥ ६३ ॥ उसके अनन्तर पाशक्रीड़ा मे श्रीकृष्ण कहेंगे-हे राधे ! तुम पराजित अथवा जय युक्त हो चुम्बनपण का दान किम्वा ग्रहण नहीं करती हो । परन्तु रसिकगण पाशक क्रीड़ा में आलिङ्गन चुम्बन और अधर पान के भिन्न अन्य किसी पण को श्रेष्ठ नहीं मानते हैं ॥ ६४ ॥ श्रीकृष्ण को आप उसके उत्तर में कहेंगी—इस गोवर्द्धन में भृङ्गी नामक मेरी एक सखी पुलिन्दकन्या है । वह मेरे पक्ष में नियुक्त होकर मेरा ग्राह्य किम्वा देय आलिङ्गनादिपण (शर्त) ग्रहण-प्रदान करेगी ॥ ६५ ॥ आप निज कान्त को इस प्रकार कह कर मुझे उसको लाने के लिये आज्ञा करेंगी । मैं द्रुतगति से जाकर

तामानयान्युपमुकुन्दमथासयानि
तं लज्जयानि सुमुखीरतिहासयानि ॥ ६६ ॥
स्वीया किलं व्रजपुरे मुरली तवैका
प्राभूत्तामपि भवानवित्तं सभार्य्याम् ।
सा लम्पटापि भवदावरसीधुसिक्ता-
प्यन्यं पुमांसमिह मृग्यति चित्रमेतत् ॥ ६७ ॥
वंशीं सतीं गुणवतीं सुभगां द्विषत्योऽ-
साध्यो भवत्य इह तत् समतामलब्धाः ।
तां क्वापि बध्यमनयंस्तदहं भुजाभ्यां
बद्ध्वैव वः शिखरि गह्वर गाः करोमि ॥ ६८ ॥
इत्यागतं हरिमवेत्य रहस्तदीय-
कक्षादहं मुरलिकां सहसा गृहीत्वा ।

उसको लाऊँगा तथा श्रीकृष्ण के समीप बैठाऊँगा। उससे वह लज्जित होगी और सखिगण हास्य करेंगी ॥ ६६ ॥ भृङ्गी दर्शन के पश्चात् श्रीकृष्ण चुम्बनादि पण को त्याग कर मुरली का पण करेंगे। जब वे हार कर मुरली प्रदान करेंगे अथवा सखियाँ बलपूर्वक मुरली ले लेंगी उस समय उनका मुरली अप्राप्त जनित विषाद उपस्थित होगा। उसे देखकर सखीगण परिहास करते हुए कहेंगे हाय वृन्दावन में एक मात्र मुरली आपका धन था आप उस निज भार्य्या को वश में नहीं कर सके। और भी वह लम्पटा मुरली आपके अधरामृत से सिक्ता होकर भी पर पुरुष का अन्वेषण करती है। यह अति आश्चर्य्य की बात है ॥ ६७ ॥ सखियों का इस प्रकार वचन सुन कर श्रीकृष्ण कहेंगे—सती, गुणवती, सुभगा वंशी के लिये द्वेष वश उसको तुम सबने आबद्ध कर रखा है। क्योंकि उसकी समता को तुम सब लाभ नहीं कर सकते हो। अतः मैं भुजयुगल से तुम सबको बाँध कर गिरि-गह्वर में ले जाऊँगा ॥ ६८ ॥ श्रीकृष्ण इस प्रकार कहकर जब

तां गोपयानि वदलक्षितमात्तचित्र-
पुष्पेषु सङ्गररसां कलयानि च त्वाम् ॥ ६६ ॥
ब्रह्मन्निमामनुगृहाण भवन्तमेव
भास्वन्तमर्च्चयितुमिच्छति मे स्नुषेयम् ।
इत्यार्य्यया प्रणमितां धृत-विप्रवेशे
कृष्णेऽर्पितां च भवतीं स्मितभाग् भजानि ॥ ७० ॥
यान्तीं गृहं स्वगुरुनिघ्नतयाति लौल्यात्
कान्तावलोकनकृते मिषमामृशन्तीम् ।
दूरेऽनुयानि यदतोऽनुविर्वाचतास्य
मेहीति यद्यसि तदास्य-रुचो धयन्ती ॥ ७१ ॥
गेहागतां विरहिणीं नवपुष्पतल्पे
त्वां शाययानि परतः किलमूमुराभाम् ।

आलिङ्गन के लिये उद्यत होंगे तब मैं उनके अलक्ष्य निर्जन में आपके कक्ष से हठात् मुरली लेकर गोपन (चोरी) करूँगा । आप काम-क्रीड़ा में उल्लास लाभ करेंगी । मैं आपका दर्शन करूँगा ॥ ६६ ॥ सूर्य्य की पूजा के उपलक्ष्य में आगत विप्रवेशी श्रीकृष्ण को देखकर जटिला कहेगी-हे ब्राह्मण ! वधू पर अनुग्रह करो, मेरी वधू सूर्य्य की भाँति तेजस्वी तुमको पुरोहित करने की इच्छा का है । यह सूर्य्य की पूजा करेगी । इस प्रकार कह कर जटिला आपको विप्रवेशी कृष्ण के पास लेकर प्रणाम करायेगी तथा समर्पण करेगी । उससे आप हास्ययुक्त होंगी । मैं आपका भजन करूँगा ॥ ७० ॥ आप गुरु आदेश प्राप्त होकर गृह गमन के समय श्री कृष्ण के दर्शन तृष्णा में चिन्तायुक्त हो जाएगी । मैं आपके पीछे पीछे गमन करूँगा । आप मुख फिरा कर श्रीहरि की मुखकान्ति पान करती हुई मुझको कहेगी सखि किंकरी ! चली आओ ॥ ७१ ॥ विरह कातरा आप जब अपराह्न में गृह में आगमन करेंगी तब मैं नवीन पुष्पशय्या में आप

तस्मात् परत्र शयनं विसपुञ्जक्लृप्त-
मध्याशयानि विधुचन्दनपङ्कलिप्ताम् ॥ ७२ ॥
आकर्ण्य चन्दन-कलाकथितं ब्रजेशा-
सन्देशमुत्सुकमतेः सहसा सहाल्याः ।
सायन्तनाशनकृते दयितस्य नव्य-
कर्पूरकेलि-वटकादिविनिर्म्मितौ ते ॥ ७३ ॥
लिम्पानि चुल्लिमथ तत्र कटाहमच्छ-
मारोहयानि दहनं रचयानि दीप्तम् ।
निराज्य खण्डकदलीमरिचेन्दुसीरि
गोधूमचूर्णमुखवस्तु समानयानि ॥ ७४ ॥
अत्यद्भुतं मलयजद्रवसेकतत्या
वृद्धिं जगाम यदिदं विरहानलौजः ।
कर्पूरकेलीवटकावलि साधकाऽग्नि-
ज्वालेन स्वस्तिमनयत्तदिति ब्रुवाणि ॥ ७५ ॥

को सुख शयन कराऊँगा । आप कुछ काल शयन करेंगी । पश्चात् प्रियविरह से जब वह शय्या तुषाराग्नि तुल्य हो उठेगी तब मैं मृणाल रचित कर्पूर चन्दन लिप्त अन्य शय्या में आपको शयन कराऊँगा । ॥ ७२ ॥ हे सखि ! आप चन्दनकला के द्वारा कथित ब्रजेश्वरी का आदेश सुन कर प्रियतम के सायंकालीन नव कर्पूरकेलि आदिक भोजन निर्म्माण के लिये सखियों के साथ उत्सुकता हो जायेंगी । मैं उस समय आपका (चूल्हे) का विलेपन करूँगा । उसमें पवित्र कड़ाही धर दूँगा तथा अग्नि प्रज्वलित करूँगा । और भी जल, घृत, शर्करा, केला, मिर्च, कपूर, नारियल, गोधूमचूर्णादिक सामग्री का आनयन करूँगा ॥ ७३-७४ ॥ मैं उस समय परिहास करके कहूँगा- चन्दनादि द्रवसमूह के सिंचन से जो विरहानल प्रबल हो उठा था वह अब लड्डूआदि साधनकारी अग्निज्वाला से किस प्रकार शान्त हो

धूलिर्गवां दिशमरुद्ध हरेः सहाम्बा
रावत्युदन्तमतुलं मधु पाययानि ।
तत्पानसन्मदनिरस्त–समस्तकृत्यां
समुत्थिता सहगणामभिसारयानि ॥ ७६ ॥
तत्कृष्णवर्त्म निकटस्थलमानयानि
निर्वापयानि विरहानलमुत्थतं ते ।
आयात एष इति वल्लिनिगूढगात्री–
माकृष्य मह्यमहहेश्वरि ! कोपयानि ॥ ७७ ॥
श्रीकृष्णदिङ्मधुलिहौ भवदास्यपद्म
माघ्रापयान्यति तृषं तव दृक् चकोरीम् ।
तद्वक्त्रचन्द्र–विकसत्स्मितधारयैव
संजीवयानि मधुरिम्नि निमज्जयानि ॥ ७८ ॥
वैवश्यमस्य तव चाद्भुतमीक्षयानि
त्वमानयानि सदनं ललिता निदेशात् ।

गया है ॥ ७५ ॥ हे स्वामिनि ! हम्बारव करते हुए श्रीकृष्ण की गौएँ आ रही हैं । उनकी धूल दश दिशा में छा गई है । आप देखिये ! इस प्रकार वृत्तान्तरूप मधुपान करा कर उस आनन्द से समस्त कार्य से आपको विरत करा कर सखियों के साथ आपका अभिसार कराऊँगा ॥ ७६ ॥ जिस मार्ग में श्रीकृष्ण का आगमन होगा उस मार्ग के किसी स्थान में आपको लाकर विरहानल का निर्वापन (शान्ति) करूँगा । हे ईश्वरि ! जब श्रीकृष्ण आवेंगे तो मैं आप को दिखाने के लिये आकर्षित करूँगा । आप मेरे प्रति कोपयुक्ता होंगी ॥७७॥ हे देवि ! श्रीकृष्ण के नयन भ्रमरों के द्वारा आपका मुखपद्म का आस्वादन कराऊँगा । अति तृष्णायुक्त आपकी नेत्र चकोरी को श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र की हास्यरूप सुधा के द्वारा भली भाँति जीवित कराऊँगा तथा श्रीकृष्ण माधुर्य में मज्जित कराऊँगा ॥ ७८ ॥

कर्पूरकेल्यमृतकेलितती: प्रदास्तं
गोष्ठेश्वरीमनुसरानि समं सखीभिः ॥ ७६ ॥
गत्वा प्रणम्य तव संकथयानि देवि !
पृष्टा तयाथ षटकावलिमीक्षयित्वा ।
तां हर्षयानि भवदद्भुत सद्गुणाली
स्तत्कीर्त्तिता स्ववयसे शृणवानि हृष्टा ॥ ८० ॥
वीक्ष्यागतं तनयमुन्नतसम्भ्रमोर्म्मि-
मग्नां स्तनाक्षि-पयसामभिषिच्य पूरैः ।
अभ्यञ्जनादिकृतये निजदासिकास्ता
साज्ञापि तां निदिशतीं मनसा स्तवानि ॥ ८१ ॥
स्नानानुलेपवसनाभरणैर्विचित्र-
शोभस्य मित्रसहितस्य तया जनन्या ।
स्नेहेन साधु बहुभोजितपायितस्य
तस्यावशेषितमलक्षितमाददानि ॥ ८२ ॥

श्रीकृष्ण तथा आपकी अद्भुत विवशता का दर्शन करूँगा। मैं ललिता के आदेश से आपको गृहमें लाऊँगा और कर्पूरकेलि तथा अमृतकेलि समूह को दिखाने के लिये सखियों के साथ गोष्ठेश्वरी के निकट गमन करूँगा ॥ ७६ ॥ सायङ्काल में गोष्ठेश्वरी के सदन में गमन कर उनके द्वारा आलिङ्गिता हो उनसे आपका मङ्गल कहूँगा। उसके पश्चात् लड्डू समूह का दर्शन कराकर उन्हें आनन्दित कराऊँगा। यशोदा के द्वारा कीर्त्तित तुम्हारे अद्भुत गुणावली का सखीसमाज में कीर्त्तन करूँगा ॥ ८० ॥ गोष्ठ से समागत पुत्र को देखकर अति सम्भ्रम तरङ्ग में निमज्जिता गोष्ठेश्वरी श्रीकृष्ण को नयन जल तथा स्तन दुग्धधारा से अभिषिक्त कर पश्चात् अभ्यञ्जनादि के लिये निज दासियों को और मुझको आदेश करेंगी। उस समय में व्रजेश्वरी का मन-मन में स्तव करूँगा ॥ ८१ ॥ श्रीकृष्ण जननी के द्वारा स्नेह

तेनैवकान्तविरहज्वर-भेषजेन
तत्कालिकेन तदुदन्तरसेन चापि ।
आगत्य साधु शिशिरीकरवाणि शीघ्रं,
त्वन्नेत्रकर्णरसना हृदयानि देवि ! ॥ ८३ ॥
स्नानाय पावनतडागजले निमग्नां
तीर्थान्तरे तु निजबन्धुवृतो जलस्थः ।
संमज्य तत्र जलमध्यत एत्य स त्वा-
मालिङ्गय तत्र गत एव समुत्थितः स्यात् ॥ ८४ ॥
तन्नो विदुर्निकटगा अपि ते ननन्द
पवस्रादयो न किल तस्य सहोदराद्याः ।
ज्ञात्वाहमुत्पुलकितैव सहालिरेत-
च्चातुर्यमेत्य ललितां प्रति वर्णयामि ॥ ८५ ॥
उद्यानमध्य वलभीमधिरुह्य तत्र
वातायनार्पित दृशं भवतीं विधाय ।

से मित्रमण्डल के साथ स्नान, अनुलेपन, वस्त्र, आभरणादि से विचित्र शोभायमान होकर भोजन-पान कर शयन (किंचित् विश्राम) करेंगे। उस समय में अलक्षित रूप से श्रीकृष्ण का अवशेष ग्रहण करूँगा ॥८२॥ हे देवि उस अधरामृत के द्वारा जो कि आपके विरह ज्वर का प्रशमन करने वाला है उससे तथा श्रीकृष्ण की स्नान-भोजन वार्तादि से मैं आपके रसना कर्ण हृदय को शीतल करूँगा ॥ ८३ ॥ हे देवि ! ग्रीष्मकाल में पावनसरोवर में स्नानार्थ किसी घाट में निज बन्धुवर्ग के साथ जलविहार करते करते श्रीकृष्ण अलक्षितभाव से डूबकर अन्यघाट में उठ आपको आलिङ्गित कर फिर पहले के घाट में बन्धुवर्ग में उपस्थित होंगे ॥८४॥ इस विषय को निकटस्था आपकी ननन्दी आदि कोई नहीं जानेंगी अथच श्रीकृष्णके सहोदरादिक भी कोई नहीं जानेंगे। परन्तु मैं उस कृष्ण की चातुरी वार्त्ता

संदर्श्य तत्प्रियतमं सुरभीदुहान-
मानन्दवारिधिमहोर्म्मिषु मज्जयानि ॥ ८६ ॥
गत्वा मुकुन्दमथ भोजितपायितं तं
गोष्ठेशया तव दशां निभृतं निवेद्य ।
सङ्केतकुञ्जमधिगत्य पुनः समेत्य
त्वां ज्ञापयान्ययि ! तदुत्कलिकाकुलानि ॥ ८७ ॥
त्वां शुक्लकृष्णरजनीसरसाभिसार-
योग्यैर्विचित्रवसनाभरणैर् विभूष्य ।
प्रापय्य कल्पतरुकुञ्जमनङ्गसिन्धौ
कान्तेन तेन सह ते कलयानि केलीः ॥ ८८ ॥
हे श्रीतुलस्युरुकृपासुतरङ्गिनीस्त्वं
यन्मूर्ध्नि मे चरणपङ्कजमादधास्त्वम् ।
यच्चाहमप्यपिबमम्बु मनाक् तदीयं
तन्मे मनस्युदयमेति मनोरथोऽयम् ॥ ८९ ॥

को जानकर घर आकर ललिता को सुनाऊँगा ॥ ८५ ॥ उसके अनन्तर पुष्पोद्यान में चन्द्रशाला के ऊपर आपको आरोहित करा कर प्रियतम का दर्शन कराऊँगा। आप गवाक्षद्वार में नयन अर्पण कर गोदोहनकारी श्रीकृष्ण का दर्शन करेंगी तथा आनन्द सागर की महान् तरङ्गों में मग्न हो जावेंगी ॥ ८६ ॥ अनन्तर श्रीकृष्ण गोष्ठेश्वरी के द्वारा स्नेह के साथ भोजन कर शयन करेंगे। मैं उस समय उनके पास निभृत में जाकर आपकी दशा का निवेदन कर संकेतस्थान जान आपके निकट आकर श्रीकृष्ण की उत्कण्ठा का वर्णन करूँगा॥८७॥ उसके अनन्तर ज्योत्स्ना, या अन्धकार रजनी के सरस अभिसार योग्य उचित वस्त्राभरण के द्वारा आपको विभूषित कर कल्पवृक्ष के कुञ्ज में लेकर कान्त के साथ अनङ्गसमुद्र में क्रीड़ा कराऊँगा॥ ८८॥ हे अत्यधिक कृपातरङ्गिणी रूपा श्रीतुलसि ! आपने मेरे मस्तक में

क्वाहं परश्शतनिकृत्यनुविद्धचेताः
सङ्कल्प एष सहसा क्व सुदुर्ल्लभेऽर्थे।
एवं कृपैव तव मामजहात्युपाधि-
शून्येव मन्तुमदधत्यगते गंति में ॥ ९० ॥
हे रङ्गमञ्जरि ! कुरुष्व मयि प्रसादं
हे प्रेममञ्जरि ! किरात्र कृपादृशं स्वाम्।
मामानय स्वपदमेव विलासमञ्ज-
र्य्यालीजनैः सममुरीकुरु दास्यदाने ॥ ९१ ॥
हे मञ्जुलालि ! निजनाथपदाब्जसेवा-
सातत्य सम्पदतुलासि मयि प्रसीद।
तुभ्यं नमोऽस्तु गुणमञ्जरि ! मा दयस्व
मामुद्धरस्व रसिके ! रसमञ्जरि त्वम् ॥ ९२ ॥

चरणपद्म का अर्पण किया है। मैंने भी उस पादपद्म धौत जल का अल्पमात्र पान किया। उससे ही मेरा यह मनोरथ उदय हो रहा है। "हे तुलसी !" यह ग्रंथकार के निज मन्त्रदाता गुरु का सिद्ध देहप्राप्त नाम का सम्बोधन है ॥ ८९ ॥ शताधिक्य शाठ्यता में अनुबद्धचित्त वाला मैं कहाँ हूँ ? और हठात् सुदुर्लभ अर्थ में यह मेरा सङ्कल्प या कहाँ है ? परन्तु आपकी उपाधिशून्य कृपा ही मेरी भाँति अगति की गति है। जो कि अपराध नहीं देखती हुई इस प्रकार सङ्कल्प करा रही है ॥ ९० ॥ हे रङ्गमंजरि ! मेरे लिये प्रसन्नता प्रदान कीजिये। हे प्रेममंजरि ! इस दुर्गत जन में कृपा दृष्टि का अर्पण कीजिये। हे विलासमंजरि ! निज चरणपद्म में रख कर सखियों के साथ दास्य में अधिकार दीजिये। यहाँ "रङ्गमंजरि !"यह ग्रंथकार के परमगुरु का सिद्धस्वरूप सम्बोधन है तथा "प्रेममंजरि !"परापर गुरु का सम्बोधन है। "विलासमंजरी" श्रीनरोत्तमठाकुर महाशय के सिद्धदेह का सम्बोधन है ॥ ९१ ॥ हे मंजुलालि ! आप निजनाथ की पादपद्म सेवा में

हे भानुमत्य ! नुपम प्रणयाब्धिमग्ना
स्वस्वामिनोस्त्वमसि मां पदवीं नय स्वाम् ।
प्रेमप्रवाह पतितासि लवङ्गमञ्ज-
र्यात्मीयतामृतमयीं मयि धेयि दृष्टिम् ॥ ६३ ॥
हे रूपमञ्जरि ! सदासि निकुञ्जयूनोः
केलिकलारसविचित्रितचित्तवृत्तिः ।
त्वद्दत्तदृष्टिरपि यत् समकल्पयं तत्
सिद्धौ तवैव करुणा प्रभुतामुपैतु ॥ ६४ ॥
राधाङ्गशश्वदुपगूहनतस्तदाप्त-
धर्म्मद्वयेन तनुचित्तधृतेन देव !

अतुलनीय ममत्ति स्वरूपा हैं। मेरे लिये प्रसन्न हों। हे गुणमंजरि! आपको प्रणाम करता हूँ। आप दया कीजिये। हे रसिके रसमजरि! मेरा उद्धार करो। यहाँ "मञ्जुनालि !" श्री लोकनाथ गोस्वामी के "गुणमञ्जरि !" श्री गोपालभट्ट गोस्वामी जी के "रसमञ्जरि !" श्री रघुनाथगोस्वामी जी के सिद्ध मञ्जरी देह का सम्बोधन है ॥ ६२ ॥ हे भानुमति ! आप स्वामिनी जी के अनुपम प्रणय समुद्र में निरन्तर मग्ना हैं। आप मुझे अपनी पदवी को प्राप्त कराइये। हे लवगमञ्जरि ! आप प्रेम-प्रवाह में पतिता हैं एक बार मेरे प्रति आत्मीयता अमृतमयी दृष्टि को प्रदान कीजिये। यहाँ ' भानुमति !" जीव गोस्वामी के "लवङ्गमञ्जरि !" श्री सनातन गोस्वामी जी के सिद्ध मञ्जरीदेह का सम्बोधन है ॥ ६३ ॥

हे रूपमञ्जरि ! आप निरन्तर श्री राधागोविन्द के केलिकला रस में विचित्रित चित्तवृत्ति वाली हैं। मैंने आप के द्वारा दत्त दृष्टि होकर जो जो संकल्प किया है, उस की सिद्धि करने में आप की करुणा प्रभुत्व प्राप्त हो ॥ ६४ ॥ हे देव नन्दनन्दन ! निरन्तर श्री राधिका के श्री अंग का आलिङ्गन के वश प्राप्त धर्म्म दोनों अर्थात्

गौरदयानिधिरभूरयि ! नन्दसूनो !
तन्मे मनोरथलतां सफलीकुरु त्वम् ॥ ६५ ॥
श्रीराधिकागिरिभृतौ ललिताप्रसाद-
लभ्याविति व्रजवने महतीं प्रसिद्धिम् ।
श्रुत्वाश्रयानि ललिते ! तव पादपद्मं
कारुण्यरञ्जितदृशं मयि हा !! निधेहि ॥ ६६ ॥
त्वं नाम-रूप-गुण-शील-वयोभिरैक्या
द्राधेव भासि सुदृशां सदसि प्रसिद्धा ।
आगः शतान्यगणयन्नुररीकुरुष्व
तन्मां वराङ्गि ! निरुपाधिकृपे ! विशाखे ! ॥ ६७ ॥
हे प्रेम सम्पदतुला व्रजनव्ययूनोः
प्राणाधिकाः प्रियसखाः ! प्रियनर्म्मसख्यः ! ।
युष्माकमेव चरणाब्जरजोभिषेकं
साक्षादवाप्य सफलोऽस्तु ममैव मुदूर्ध्ना ॥ ६८ ॥

तनु और चित्त का धारण में गौर दयानिधि हो रहे हैं। निष्कर्ष यह है कि श्री राधिका के तनु धर्म्म गौरवर्ण के धारण में गौर तथा चित्त धर्म्म दया की धारण में दयानिधि, अर्थात् दोनों के धारण में गौरदयानिधि हुए हैं। अतः मेरी मनोरथ लता को सफल कीजिये ॥ ६५ ॥ श्री व्रजवन में ऐसी प्रसिद्धि है कि ललिता जी की अनुकम्पा से राधा गिरिधारी की प्राप्ति होती है। हे ललिते ! मैंने इसे सुन कर आप के चरणकमल का आश्रय ले लिया है। आप मेरे ऊपर कृपादृष्टि कीजिये ॥ ६६ ॥ हे विशाखे ! रमणी-समाज में "आप रूप-गुण-नाम और स्वभाव में राधिका की सदृशा हैं" ऐसी परम प्रसिद्धि है। अतः हे अहेतुककृपामयि ! हे श्रेष्ठाङ्गि ! शत अपराध का ग्रहण न कर मुझ को अङ्गीकार कीजिये ॥ ६७ ॥ हे अमल प्रेम सम्पत्ति के अधिकारी व्रज नव-युवक दोनों के प्राणाधिक

वृन्दावनीयमुकुट ! व्रजलोकसेव्य !
गोवर्द्धनाचलगुरो ! हरिदासवर्य्य !।
त्वत्सन्निधिस्थितियुषो मम हृत्शिलास्व
प्येता मनोरथलताः सहसोद्भवन्तु ॥ ९९ ॥
श्रीराधया सम ! त्वदीय सरोवर ! त्व–
त्तीरे वसानि समये च भजानि संस्थाम् ।
त्वन्नीरपानजनिता मम तववल्ल्यः
पाल्यास्त्वया कुसुमिता फलिताश्चः कार्य्या ॥ १०० ॥
वृन्दावनीयसुरपादपयोगपीठ
त्वस्मिन् बलादिह निवासयसि स्वयं यत् ।
तन्मे त्वदीय तलतस्थूप एव सर्व्व–
सङ्कल्पसिद्धिमयि साधु कुरुष्व शीघ्रम् ॥ १०१ ॥
वृन्दावनस्थिरचरान् परिपालयित्रि !
वृन्दे ! तयोरसिकयोरतिसीभगेन ।

प्रिय सखागण ! और प्रिय नर्म्म सखीगण ! आप सब के पादपद्म रजों से अभिषिक्त होकर मेरा मस्तक सफल हो ॥ ९८ ॥ हे वृन्दावन के मुकुट स्वरूप ! हे व्रजजन सेव्य ! हे गोवर्द्धन ! हे पर्वतगुरो ! हे हरिदास श्रेष्ठ ! आप के निकट वास करने के कारण प्रस्तर सदृश मेरे इस चित्त में भी यह मनोरथ लता हठात् उठी है ॥ ९९ ॥ हे राधिका के तुल्य उनके सरोवर श्रीराधाकुण्ड ! मैं तुम्हारे तीर मैं वास कर रहा हूँ । समय आने पर प्राण त्याग भी करूँगा । तुम्हारे जल-पान से मेरा हृदय में जो आशालता उठी है वह तुम्हारे द्वारा पालनीया पुष्पिता और फलवती हो ॥ १०० ॥ हे वृन्दावन के कल्पवृक्ष सम्बन्धी योगपीठ ! तुमने अपने स्थान में बल-पूर्वक मुझे वास कराया है । अतः तुम्हारे तल स्थित मेरे इस संकल्प का शीघ्र सिद्ध कराओ ॥ १०१ ॥ हे वृन्दावन के स्थिर-चर सब की पालयित्रि !

आढ्यासि तत्कुरु कृपां गणना यथैव
श्रीराधिकापरिजनेषु ममापि सिद्धेत् ॥ १०२ ॥
वृन्दावनावनिपते ! जय सोम ! सोम–
मौले ! सनन्दन–सनातन–नारदेड्य ! ।
गोपीश्वर ! व्रजविलासियोगाङ्घ्रिपद्मे
प्रेम प्रयच्छ निरुपाधि नमो नमस्ते ॥ १०३ ॥
हित्वान्याः किलवासना भजत रे वृन्दावनं सन्ततं
राधाकृष्णविलासवारिधिरसास्वादं न चेत् विन्दथ ।
त्यक्तुं शक्नुथ न स्पृहामपि पुनस्तत्रैव हृद्वृत्तयो !
विश्रद्धाः श्रयत ममैव सततं सङ्कल्पकल्पद्रुमम् ॥ १०४ ॥
इति श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्तीठक्कुरविरचितः
श्रीसंकल्पकल्पद्रुमः सम्पूर्णः ॥

हे श्रीवृन्दे ! तुम रसिक दोनों के अति सौभाग्य से युक्त हो। तुम कृपा करो। जिससे कि श्रीराधिका के परिकर में मेरी गणना सिद्धि हो ॥ १०२ ॥ हे वृन्दावनधरित्रि के पालक ! हे सोम रूप ! हे चन्द्र-मौले ! हे सनन्दन सनातन-नारद पूज्य ! हे गोपीश्वर ! आप जय-युक्त हों। व्रजविहारी दोनों के चरण कमल में मेरा निरुपाधि प्रेम का प्रदान कीजिये। आप को नमस्कार ! नमस्कार है !! ॥१०३॥ हे मेरी चित्तवृत्तियों ! तुम सब एकान्त रूप से–अन्य वासनाओं का त्याग कर श्रीवृन्दावन का भजन करो। यदि वृन्दावन में श्रीराधा-गोविन्द के विलास समुद्र का रसास्वाद नहीं प्राप्त हुआ हो अथवा यदि उस लोभ का परित्याग नहीं करना चाहते हो, तब विशेष श्रद्धा के साथ मेरा इस संकल्पकल्पवृक्ष का आश्रय लेओ ॥ १०४ ॥

ॐ श्रीसंकल्पकल्पद्रुम का अनुवाद समाप्त ॐ

अनुवादक—कृष्णदास ।

॥ श्रीश्रीराधाकृष्णपादाम्बुजेभ्यो नमः ॥

श्रीव्रजविलासस्तवः



प्रतिष्ठारज्जुभिर्बद्धं कामाद्यैर्वर्त्मपातिभिः ।
छित्त्वा ताः संहरन्तस्तानघारेः पान्तु मां भटाः ॥ १ ॥
दग्धं वार्द्धकवन्यवह्निभिरलं दष्टं दुरान्ध्याहिना
विद्धं मामतिपारवश्यविशिखैः क्रोधादिसिंहैर्वृतम् ।
स्वामिन् प्रेमसुधाद्रवं करुणया द्राक् पायय श्रीहरे
येनैतानवधीर्य्य सन्ततमहं धीरो भवन्तं भजे ॥ २ ॥
यन्माधुरीदिव्यसुधारसाब्धेः स्मृतेः कणेनाप्यतिलोलितात्मा ।
पद्यैर्व्रजस्थानखिलान् व्रजश्च नत्वा स्वनाथौ वत तौ दिदृक्षे ॥३॥

कामादि लुटेरों के द्वारा प्रतिष्ठारूप रज्जू से मैं बँन्धा पड़ा हूँ । अब अघनाशन श्रीहरि के मार्गरक्षक वीर सेनागण उस बन्धन का छेदन तथा उन लुटेरों का संहार कर मेरी रक्षा करें ॥ १ ॥

वार्द्धक्यरूप वनाग्नि में जलता जा रहा हूँ । उसमें फिर दुरान्ध्य सर्प मुझको दंशन कर रहा है । परवशतारूप बाणसमूह चारों ओर से मुझे बींध डारते हैं । क्रोधादि सिंहों से मैं घिरा हुआ हूँ । हे स्वामिन् ! हे श्रीहरे ! आप शीघ्र निज कारुण्य गुण से प्रेम सुधाद्रव का वर्षण कर मुझे पान कराईये । जिससे कि मैं इन सबका निवारण करता हुआ धीर होकर आपका भजन करूँगा ॥ २ ॥

जिनके माधुरी दिव्य सुधारस समुद्र का कणमात्र स्मरण कर मैं लोलायमान हो रहा हूँ उन निजनाथ श्रीराधा गोविन्द का व्रज के समस्त और व्रज को पद्यों के द्वारा नमस्कार करता हुआ सरसावलोकन करना चाहता हूँ ॥ ३ ॥

प्रादुर्भावसुधाद्रवेण नितरामङ्कित्वमाप्त्वा ययो
र्गोष्ठे ऽभीद्दणमनङ्ग एष परितः क्रीड़ाविनोदं रसैः।
प्रीत्योल्लासयतीह मुग्धमिथुनश्रे णीवतंसाविमौ
गान्धर्व्वा–गिरिधारिणौ वत कदा द्रक्ष्यामि रागेण तौ ॥ ४ ॥
वैकुण्ठादपि सोदरात्मजवृता द्वारावती सा प्रिया
यत्र श्रीशतनिन्दिपट्टमहिषीवृन्दैः प्रभुः खेलति।
प्रेमक्षेत्रमसौ ततोऽपि मथुरा प्रेष्ठा हरेर्जन्मतो
यत्र श्रीव्रज एव राजतितरां तामेव नित्यं भजे ॥ ५ ॥
यत्र क्रीड़ति माधवः प्रियतमैः स्निग्धः सखीनां कुले
र्नित्यं गाढ़रसेन रामसहितोऽप्यद्यापि गोचारणैः।
यस्याप्यद्भुत-माधुरी रसविदां हृद्येव कापि स्फुरेत्
प्रेष्ठं तन्मथुरापुरादपि हरेर्गोष्ठं तदेवाश्रये ॥ ६ ॥

जिनके प्रादुर्भावरूप सुधाद्रव से निरन्तर सिंचित होकर अनङ्ग मानो दिव्य अंग का धारण कर लिया है तथा क्रीड़ाविनोद रसों से उन मुग्ध मिथुन श्रेणी के अवतंस श्रीगान्धर्व्वा गिरिधारी की प्रीति के साथ उल्लासित कर रहा है। मैं कब उन दोनों का अनुराग के साथ दर्शन करूँगा ॥ ४ ॥

वैकुण्ठ से सहोदर तथा पुत्रादिकों से परिवृत द्वारकापुरी परमप्रिय है। जहाँ प्रभु श्रीहरि लक्ष्मीशत तिरस्कारी पटरानियों के साथ क्रीड़ा करते हैं। उस द्वारकापुरी से प्रेम का क्षेत्ररूप श्रीमथुरा प्रभु की जन्मभूमि के कारण परमप्रिय है। उस मथुरापुरी में श्रीव्रजमण्डल विशेष भाव से विराजमान है। हम उस मथुरा का नित्य भजन करते हैं ॥ ५ ॥

जहाँ श्रीबलदेव के साथ श्रीमाधव निज प्रियतम सखाओं के सहित गाढ़रस प्रकट से गोचारणादि के द्वारा नित्य क्रीड़ा करते हैं। और जिसकी कोई अद्भुतमाधुरी रसिकों के हृदय में स्फूर्त्तिशील है

वैदग्ध्योत्तर-नर्म्म-कर्म्मठसखीवृन्दैः परीतं रसैः
प्रत्येक तरुकुञ्जवल्लरिगिरिद्रोणीषु रात्रिन्दिवम्।
नाना केलिभरेण यत्र रमते तन्नव्ययुनोर्युगं
तत्पादाम्बुजगन्धवन्धुरतरं वृन्दावनं तद्भजे ॥ ७ ॥
यत्र श्रीपरितो भ्रमत्यविरतं तास्ता महसिद्धयः
स्फीताः सृष्टिरलं गवामुदयनी वासोऽपि गोष्ठौकसाम्।
वात्सल्यात् परिपालितो विहरते कृष्णः पितृभ्यां सुखै
स्तान्नन्दीश्वरमालयं ब्रजपतेर्गोष्ठोत्तमाङ्गं भजे ॥ ८ ॥
पुत्रस्याभ्युदयार्थमादरभरै मिष्टान्नपानोत्करै
र्दिव्यानाञ्च गवां मणिव्रजयुजां दानैरिह प्रत्यहं।
यो विप्रान् गणशः प्रतोषयति तद्भव्यस्य वार्त्तां मुहुः
स्नेहात् पृच्छति यश्च तद्गतमनास्तं गोकुलेन्द्रं भजे ॥९॥

उस मथुरा से भी श्रेष्ठ श्रीहरि का गोष्ठ है। मैं उस गोष्ठ का आश्रय करता हूँ ॥ ६ ॥

वे नवीन युवा दोनों जहाँ वैदग्ध्यादिक नर्म्म कर्म्म में चतुर सखियों के साथ प्रत्येक वृक्ष, कुञ्ज, लता, पर्व्वतकन्दरा में रात्रि-दिन नाना केलिपरायण हो रसमय बिहार करते हैं तथा उनके चरणकमलों की गन्ध द्वारा जो अति सुन्दरतर है हम उस वृन्दावन का भजन करते हैं ॥ ७ ॥

जहाँ सदा सर्वदा लक्ष्मीदेवी चार ओर फिरती रहती है,वे सब महा-सिद्धियाँ जहाँ मौजूद रहती हैं, जहाँ गो प्रचार सेवा की सृष्टि हुई तथा जो व्रजवासियों का निवासस्थान है, जहाँ श्रीकृष्ण पिता-माता के द्वारा वात्सल्य सुख से परिपालित होकर विहार करते हैं, गोष्ठराज श्रीनन्द जी के गोष्ठ से उत्तम उस नन्दीश्वर गृह का हम भजन करते हैं ॥ ८ ॥

पुत्र श्रीकृष्ण अभ्युदय (मङ्गल) के लिये जो आदर के साथ

पुत्रस्नेहभरैः सदास्नुतकुचद्वन्द्वा तदीयोच्छल-
द्घर्मस्यापि लवस्य रक्षणविधौ स्वप्राणदेहार्व्वु दैः।
आसक्ता क्षणमात्रमप्यकलनात् सद्यः प्रसूतेव गौ
र्व्यग्रा या विलपत्यलं वहुभयात् सा पातु गोष्ठेश्वरी ॥ १० ॥
पुत्रादुच्चैरपि हलधरात् सिञ्चति स्नेहपूरे
गोविन्दं याऽद्भूतरसवतीप्रक्रियासु प्रवीणा ।
सख्यश्रीभिर्व्रजपुरमहाराजराज्ञीं नयैस्तद्
गोपेन्द्रं या सुखयति भजे रोहिणीमीश्वरीं ताम् ॥ ११ ॥
उद्यच्छ्रुभ्रांशुकोटिद्युतिनिकरतिरस्कारकार्य्युज्ज्वलश्री-
दुर्व्वारोद्दाम-धाम-प्रकररिपुघटोन्मादविध्वंसिगन्धः ।

दिव्य मिष्टान्न-पान तथा मणियों से भूषित गौओं का दान से प्रतिदिवस गणसह विप्रों को प्रसन्न करते हैं और कृष्णगत प्राण जो स्नेह से उनको पुत्र की मङ्गलवार्त्ता बार बार पूछते रहते हैं उन गोकुलेन्द्र श्रीनन्द का हम भजन करते हैं ॥ ६ ॥

पुत्रस्नेहातिशय के वश जिनके स्तनयुगल निरन्तर क्षरण होते रहते हैं जो श्रीकृष्ण के अंगों का उच्छलित घर्म्म लव का भी रक्षण में निज अर्व्बुद प्राण-देहों के द्वारा मानो निरन्तर व्यग्र रहती हैं, जो श्रीकृष्ण के क्षणमात्र अनवलोकन से सद्यः प्रसूता गौ की तरह उत्कण्ठित हो जाती हैं तथा बहु भय की शङ्का से विलाप करती हैं वे गोष्ठेश्वरी श्रीयशोदा रक्षा करें ॥ १० ॥

जो निज पुत्र हलधर से भी अधिक स्नेहधारा के द्वारा श्रीगोविन्द का सिञ्चन करती हैं तथा अद्भुत रन्धन परिपाटी में प्रवीण हैं, जो सख्यश्रियों के द्वारा व्रज-महाराज की रानी यशोदा जी को तथा नीति के द्वारा श्रीव्रजराज को सुख देती हैं उन ईश्वरी रोहिणी माता का हम भजन करते हैं ॥ ११ ॥

जो उदयशील शुभ्रांशु चन्द्रमा कोटि की कान्तिसमूह तिरस्कार-

स्नेहादप्युन्निमेष निजमनुजमितोऽरण्यभूमौ स्ववीत
तद्वीर्य्यज्ञोपि यो न क्षणमपनयते स्तौमि तं धेनुकारिम् ॥१२॥
पर्जन्यनामा निजनप्तृगर्वै पर्जन्यलक्षाण्यभितो विनिन्दन् ।
यो नर्म्म तन्वन् रमतेऽस्य कर्णो नमाम्यहो कृष्णपितामह तम्॥१३॥
प्रियस्य नप्तुः सुखतोऽतिगर्व्वात् पादौ न यस्या पतत पृथिव्याम् ।
नमामि नर्म्मोर्च्चितनप्तृचन्द्रां वरीयसीं कृष्णपितामहीं ताम् ॥१४॥
श्वेतश्मश्रुभरेण सुन्दरमुख श्याम कृती मन्त्रणा-
भिज्ञ सभादि सन्तत व्रजपतेः कुर्व्वन् स्थितिं योऽर्च्चित ।
स्वप्राणार्व्वुदखण्डनैर्मुरभिद भ्रातु सुत तोषयेत्
साहारे निवसन् स गोष्ठमवतान्नाम्नोपनन्द सदा ॥ १५ ॥

कारी अत्युज्वल श्रीविशिष्ट हैं,जो हेला मात्र से दुर्वार अति पराक्रमशाली रिपुओं का उन्माद विध्वंस करने वाले हैं, निज अनुज श्रीकृष्ण का पराक्रम जानते हुए भी जो अत्यन्त स्नेह से अरण्य-भूमि में निमेषकाल के लिये उनका परित्याग नहीं करते हैं उन धेनुकारि श्रीवलदेव की स्तुति करता हूँ ॥ १२ ॥

पर्ज्जन्य नामक जो श्रीकृष्ण के पितामह निज नाती के गर्व से मानो पर्ज्जन्यलक्ष (मेघलक्ष) का तिरस्कार करते हैं तथा जो श्रीकृष्ण के साथ नर्म्म परिहास करने वाले हैं उन श्रीकृष्ण के पितामह को नमस्कार है ॥ १३ ॥

प्रिय नाती श्रीकृष्ण के सुख के द्वारा अतिगर्व से जिनके चरण युगल पृथ्वी में नहीं पडते थे, नाती श्रीकृष्ण की नर्म्मकारिणी उन वरीयसी नाम्नी श्रीकृष्ण की पितामही को नमस्कार करता हूँ ॥१४॥

जो शुभ्र दाढीसे सुन्दर मुख वाले तथा श्यामवर्णहैं,जो मन्त्रणादि में परम चतुर हैं, जो व्रजराज की सभा में रह कर पूजित हैं, जो भ्राता के पुत्र श्रीकृष्ण को निज अर्व्वुद प्राण से भी सुख देने वाले हैं तथा जिनका वासस्थान साहार में है वे उपनन्द जी सर्वदा गोष्ठ की रक्षा

गौरः कोमलधीरुदारचरितः स्निग्धो व्रजेन्द्रानुजः
श्यामश्मश्रुरलं तदीयचरणे भक्तः सुनन्दापिता ।
[illegible]: प्राणैः परिमञ्छ्य माधवसुखं दघ्ना महिष्याः परं ।
सन्नन्दस्तनुते स पातु नितरां नः कासरीणां पतिः ॥ १६ ॥
श्यामः सूक्ष्ममतिर्मुधातिमधुरो ज्योतिर्विदामग्रणीः
पाण्डित्यैर्जितगीस्पतिर्व्रजपतेः सव्ये कृतावस्थितिः ।
कृष्णं पालयतीह यः प्रियतया प्राणार्बुदैरप्यलं
मन्त्रेणाप्युपनन्दसूनुमिह तं प्रीत्या सुभद्रं नुमः ॥ १७ ॥
दैत्याद्भीतेरतिविकलधीः कोमलाङ्गस्य सूनोः
कृष्णस्योच्चैः सततमवने वत्सला व्यग्रचित्ता ।
कृच्छ्रैरम्यां बहुभिरभितो हन्त सन्तोष्य शूरं
दैत्यघ्नं या सुतमजनयत् साम्बिका पातु धात्री ॥ १८ ॥

करें ॥ १५ ॥

जो गौरवर्ण हैं, जिनकी बुद्धि अति कोमल है तथा जो उदारचरित्र वाले और स्निग्ध हैं, जिनकी श्यामवर्ण दाढ़ी है, वे व्रजराज के भक्त अनुज सन्नन्द हम सबकी रक्षा करें । सन्नन्द जी कासरियों के पति हैं । उन्होंने माधव के सुख के लिये प्राण का निर्मञ्छन किया है ॥ १६ ॥

श्यामवर्ण, सूक्ष्मबुद्धि वाले, अतिमधुर, ज्योतिर्विदों के अग्रगामी, पाण्डित्य से बृहस्पति को जीतने वाले तथा व्रजराज के वाम भाग में रहने वाले, उपनन्द के पुत्र सुभद्र जी को प्रीति के साथ हम नमस्कार करते हैं । जो मन्त्रणादि के द्वारा परम प्रीति के साथ निज अर्बुद प्राण से भी श्रीकृष्ण का पालन करते थे ॥ १७ ॥

वह धात्री साम्बिका रक्षा करें । वत्सला जो दैत्यों से भयभीत होकर अतिव्याकुल हो जाती थीं तथा कोमलांग पुत्र श्रीकृष्ण की रक्षा करने में सर्वदा व्यग्रचित्ता रहती थीं । जिसने अनेक कठिन व्र-

नादैर्यस्य स्फुटति परितो दिव्यविध्यण्डकोटिः
के ते तावत् किल दितिसुताः क्षुद्रकात् क्षुद्रजीवाः ।
स्नेहान्मात्रा विजयमभितो रक्षणे सन्नियुक्तं
कृष्णस्यारात् परमिह भजे हन्त धात्रीसुतं तम् ॥ १९ ॥
मन्त्रन्यासैरिह मुररिपोस्तत्पुरोधाः पुरस्तात्
सर्व्वाङ्गानि प्रकटनिगमो भागुरिर्योऽभिरक्ष्य ।
आशीर्भिश्च प्रतिदिनमहो तच्छिरो जिघ्रतीदं
वन्दे तावन्मुनिसुरपतेस्तस्य पादाब्जयुग्मम् ॥ २० ॥
कृष्णस्योच्चैः प्रणयवसतिः संप्रवीणः सखीनां
श्यामाङ्गस्तत् समगुणवयो-वेश-सौन्दर्य्य-दर्पः ।
स्नेहादन्धोः क्षणमकलनाज्जायते योऽवधूतः
श्रीदामानं हरिसहचरं सर्व्वदा तं प्रपद्ये ॥ २१ ॥

तादि के द्वारा देवता को प्रसन्न कर दैत्यनाश कारी सुत श्रीकृष्ण का जन्म कराया ॥ १८ ॥

माता के द्वारा श्रीकृष्ण के निकट में रक्षा के लिये नियुक्त, उस धात्रीसुत विजय का हम विशेष रूप से भजन करते हैं। जिसके शब्द से मानों दिव्य ब्रह्माण्ड कोटि छिन्न भिन्न भयभीत हो जाते थे। क्षुद्र से क्षुद्र जीव दैत्यगण कौन हो सकते हैं ॥ १९ ॥

उन सुरपति मुनि भागुरि नामक पुरोहित जी के चरण दोनों की वन्दना करते हैं। जो मन्त्रों के न्यास के द्वारा श्रीकृष्ण के आगे आगे रह कर समस्त अङ्गों का रक्षण करते थे तथा प्रतिदिन आशिर्वादों के द्वारा श्रीकृष्ण के मस्तक का आघ्राण करते थे ॥ २० ॥

श्रीकृष्ण के अत्यन्त प्रणयपात्र, सखाओं में अतिप्रवीण, श्यामवर्ण, श्रीकृष्ण के समान गुण, वयः, वेश, सौन्दर्य्य, अभिमान वाले उनके सहचर श्रीदामा के सर्व्वदा हम शरण में हैं। जो स्नेह के वश प्रिय श्रीकृष्ण के क्षणमात्र अनवलोकन से अवधूत की भाँति हो जाते

गाढ़ानुरागभरतो विरहस्य भीत्या स्वप्नेऽपि गोकुलविधोर्न जहाति हस्तम् ।
यो राधिकाप्रणयनिर्भरसिक्तचेतास्तं प्रेमविह्वलतनुं सुवलं नमामि ॥२२॥

कृत्वैकत्र गवां कुलानि परितः कृष्णेन सार्द्धं मुदा
हस्ताहस्ति विनोदनर्मकथनैः खेलन्ति मित्रोत्कराः ।
प्रेमाम्भोधिविधौतगौरवमहापङ्कास्तदङ्घ्र्यर्चिता
स्तत्पादार्पित-चित्तजीवितकला ये तान् प्रपद्यामहे ॥ २३ ॥

मूर्त्तो हास्यरसः सदैव सुमनाः कामं बुभुक्षातुरः
प्राणप्रेष्ठवयस्ययोरनुदिनं वाग्देहभंग्युत्करैः ।
हास्यं यो मधुमङ्गलः प्रकटयन् संभ्राजते कौतुकी
तं वृन्दावनचन्द्रनर्मसचिवं प्रीत्या सुवन्दामहे ॥ २४ ॥

थे ॥ २१ ॥

जो गाढ़ानुराग के वश विरहभय से स्वप्न में भी श्रीकृष्णचन्द्र का हस्त को नहीं छोड़ते थे तथा जो श्रीराधिका के प्रणय निर्भर से निरन्तर सिञ्चित रहते हैं उन प्रेम से विह्वल अङ्ग वाले सुवलजी को हम नमस्कार करते हैं ॥ २२ ॥

जो सब सखागण गौ ओं को एकत्र कर श्रीकृष्ण के साथ आनन्दातिशय से हस्ताहस्ति (हाथापाई) विनोद-नर्म्म वचनों से क्रीड़ा करते हैं, जिन्होंने प्रेमसागर में गौरव महापंक को धो डाला है तथा श्रीकृष्ण के चरणों में चित्त–जीवन-विद्या को अर्पण कर दिया है, उन सब सखागण के हम शरण में आ रहे हैं ॥ २३ ॥

उन वृन्दावनचन्द्र के नर्म्मसखा प्रिय मधुमङ्गल जी की हम सुवन्दना करते हैं। जो मानो मूर्त्तिमान् हास्यरस स्वरूप तथा सदा सर्व्वदा निर्म्मल हृदय वाले हैं। वे भोजन में परम पटु हैं जो वाणी-देह की अति भङ्गि के द्वारा निरन्तर प्राण प्रिय वयस्य श्रीकृष्ण-वलदेव को हँसाते रहते हैं तथा परम कौतुकी हैं ॥ २४ ॥

गूढ़ं तत्सुविदग्धतार्च्चितसखीद्वारोन्नयन्ती तयोः
प्रेम्णा सुष्ठु विदग्धयोरनुदिनं मानाभिसारोत्सवम्।
राधामाधवयोः सुखामृतरसं यैवोपभुङ्क्ते मुहु-
र्गोष्ठे मङ्गलविधायनीं भगवतीं तां पौर्णमासीं भजे ॥ २५ ॥
खर्व्वश्मश्रु मुदारमुज्ज्वलकुलं गौरं समानं स्फुरत्
पञ्चाशत्तमवत्सवन्दितवयः क्रान्ति प्रवीणं व्रजे।
गोष्ठेशस्य सखायमुन्नततर-श्रीदामतोऽपि प्रिय-
श्रीराधं वृषभानुमुद्भट-यशोत्रातं सदा तं भजे ॥ २६ ॥
अनुदिनमिहमात्रा राधिकामव्यवार्त्ताः,
कलयितुमतियत्नात् प्रेष्यते धात्रिकायाः।
दुहितृयुगलमुच्चैः प्रेमपूरप्रपञ्चै
र्विकलमति यया।ऽसौ कीर्त्तिदा साऽवतान्नः ॥ २७ ॥

गोष्ठ में मङ्गलविधायनी उन पौर्णमासी भगवती जी का हम भजन करते हैं। जो गूढ़भाव से प्रीति के साथ विदग्धा सखियों के द्वारा प्रतिदिन विदग्ध श्रीराधा-माधव का मिलन कराकर दोनों का मान-अभिसारादि आनन्द उत्सव के सुखामृत रस का उपभोग करती हैं ॥ २५ ॥

उद्भट यश वाले श्रीकृष्ण के सखा श्रीदाम से भी श्रीराधिका को प्रीति करने वाले पिता श्री वृषभानु जी का सदा सर्व्वदा हम भजन करते हैं। जो खर्व्वायमान दाढ़ी विशिष्ट तथा गौरवर्ण हैं जिन का कुल परम उज्ज्वल है। उनका वयःक्रम पचास वर्ष का है, तथा जो व्रज में प्रवीण हैं ॥ २६ ॥

वह राधिका की माता श्रीकीर्त्तिदा देवी हम सब की रक्षा करें। जो प्रतिदिन अत्यन्त यत्न के साथ राधिका की कुशलवार्त्ता को जानने के लिये धातृ की दुहितृ दोनों को भेजती थीं तथा प्रेम प्रवाह विस्तार के द्वारा विकल बुद्धि हो जाती थीं ॥ २७ ॥

प्रथमरसविलासे हन्त रोषेण तावत्,
प्रकटमिव विरोधं सन्दधानापि भङ्गया ।
प्रवलयति सुखं या नव्ययूनोः स्वनप्त्रोः,
परमिह मुखरां तां मुर्ध्नि वृद्धां वहामि ॥ २८ ॥
सान्द्रप्रेमरसैः प्लुता प्रियतया प्रागल्भ्यमाप्ता तयोः
प्राणप्रेष्ठवयस्ययोरनुदिनं लीलाभिसारं क्रमैः ।
वैदग्ध्येन तथा सखीं प्रति सदा मानस्य शिक्षां रसै
र्येयं कारयतीह हन्त ललिता गृह्णातु सा मां गणैः ॥ २९ ॥
प्रणयललितनर्म्मस्फारभूमिस्तयोर्या
व्रजपुरनवयूनोर्या च कण्ठान् पिकानाम् ।
नयति परमधस्ताद्दिव्यगानेन तुष्ट्या
प्रथयतु मम दीक्षां हन्त सेयं विशाखा ॥ ३० ॥

हम केवल मस्तक के द्वारा उन वृद्धा मातामही मुखरा का वहन करते हैं । जो पहले रसविलास में रोष दिखा कर विरोध करती हुई पश्चात् भङ्गि के द्वारा निज नप्तृ नवीन युवा राधा माधव के अति सुख का विस्तार करती थीं ॥ २८ ॥

वह श्री ललिता मुझे अपने गणों में रखें । जो निबिड़ प्रेमरसों के द्वारा परिप्लुता हैं तथा जो दोनों की अत्यधिक प्रियता के कारण प्रगल्भता को प्राप्त हुई हैं । जो निज वैदग्ध्य दक्षता के साथ प्राणप्रेष्ठ वयस्य दोनों का लीला-भिसारादिक क्रम से कराती रहती हैं तथा जो रस के साथ निज सखी राधिका को मान की शिक्षा देती हैं॥२९॥

हाय ! वह श्रीविशाखा मेरी दास्य दीक्षा का विस्तार करें । जो व्रज नवीनयुवा दोनों की प्रणय-ललित-नर्म्मविस्तार की भूमी स्वरूपा हैं । जो दिव्यातिदिव्य गान से कोकिलों का कंठ को तिरस्कार करती हैं ॥ ३० ॥

प्रतिनवनवकुञ्जं प्रेमपूरेण पूर्णां
प्रचुरसुरभिपुष्पैर्भूषयित्वा क्रमेण ।
प्रणयति वत वृन्दा तत्र लीलोत्सवं या
प्रियगणवृत-राधाकृष्णयोस्तां प्रपद्ये ॥ ३१ ॥
सख्येनालं परमरुचिरा नर्म्मभव्येन राधां
पाकार्थं या व्रजपतिमहिष्याज्ञया सत्वयन्ती ।
प्रेम्णा शश्वत् पथिपथि हरेर्वार्त्तया तर्पयन्ती
तुष्यत्वेतां परमिह भजे कुन्दपूर्व्वां लतां ताम् ॥ ३२ ॥
व्रजेश्वर्य्यानीतां वत रसवतीकृत्यविधये
मुदा कामं नन्दीश्वरगिरिनिकुञ्जे प्रणयिनी ।
छलैः कृष्णं राधां दयितमभि तां सारयति या
धनिष्ठां तत्प्राणप्रियतरसखीं तां किल भजे ॥ ३३ ॥
श्रवन्तीतः कीर्त्तेः श्रवणभरतो मुग्धहृदया
प्रगाढोत्कण्ठाभिर्व्रजभुवमुरीकृत्य किल या ।

जो श्रीवृन्दा प्रचुर कल्पवृक्षों के पुष्पों से प्रत्येक नवीन कुञ्ज को सजाती हैं तथा जो प्रेमधारा से परिपूर्ण हैं। जो प्रियगण से परिवृत श्रीराधा-कृष्ण की लीला उत्सव का विधात्री हैं, उनकी हम शरण लेते हैं ॥ ३१ ॥

हम केवल कुन्दलता का भजन करते हैं। वे प्रसन्न होवें। जो नर्म्म,परिहास सख्य में परम रुचिरा हैं तथा जो पाक करने के लिये व्रजरानी यशोदा की आज्ञा से श्रीराधा को नित्य नन्दालय में लाती थी। मार्ग में श्रीहरि की वार्त्ता से श्रीराधिका को प्रसन्न करती हैं।॥३२॥

राधिका की प्राणप्रियसखी धनिष्ठा का हम भजन करते हैं। प्रीतिपात्री वह धनिष्ठा जब रन्धनकार्य्य विधि में व्रजेश्वरी के द्वारा आनीता राधिका लग जाती थीं तब नाना छल दिखा कर नन्दीश्वर पर्व्वत के निकुञ्ज में राधिका जी को श्रीकृष्ण के निकट पहुँचाती थीं ॥ ३३ ॥

मुदा राधाकृष्णोज्ज्वलरससुखं वर्द्धयति तां
मुखीं नान्दीपूर्व्वां सततमभिवन्दे प्रणयतः ॥ ३४ ॥
मुदा राधाकृष्ण-प्रचुर-जलकेली-रसभर-
स्खलत्कस्तूरीतद्घुसृण-घनचर्च्चार्च्चितजला ।
प्रमोदार्त्ता फेनस्मितमुदितमूर्म्मिस्फुटकर-
श्रिया सिञ्चन्तीव प्रथयतु सुखं नस्तरणिजा ॥ ३५ ॥
सर्व्वानन्दकदम्बकेन हरिणा प्राग्याचिता अप्यमूः
स्वैरं चारु रिरंसया रहसि याः क्रोधादनादृत्य ताम् ।
प्राणप्रेष्ठसखीं निजामनुदिनं तेनैव सार्द्धं मुदा
राधां संरमयन्ति ताः प्रियसखीमूर्ध्ना प्रपद्ये तराम् ॥ ३६ ॥
प्रेम्णा ये परिवण्टनेन कलिताः सेवाः सदैवोत्सुकाः
कुर्व्वाणाः परमादरेण सततं दासा वयस्योपमाः ।

हम प्रीति के साथ निरन्तर उन नान्दीमुखी की अभिवन्दना करते हैं । जो यश श्रवण से मोहित होकर प्रगाढ़ उत्कण्ठा के द्वारा अवन्ती को छोड़कर व्रजभूमि में वास करने लगी तथा जो श्रीराधाकृष्ण के उज्ज्वलरस सुख को बढ़ाने वाली हैं ॥ ३४॥

श्रीराधा-कृष्ण की अत्यधिक जलक्रीड़ा रसभर से पतित कस्तूरीकुंकुम-चन्दनादि रज से व्याप्त जलवाली यह यमुना सबका सुख विधाक करें । जो अत्यन्त प्रमोद से मानो फेन रूप स्मित के साथ तरंगरूप हस्तलक्ष्मी के द्वारा दोनों का सिञ्चन करती हैं ॥ ३५ ॥

उन सब प्रियसखियों का मस्तक नम्रता के साथ हम शरण लेते हैं । जो सब सर्वानन्द कदम्ब स्वरूप श्रीहरि के द्वारा पहले प्रार्थित होकर भी स्वच्छन्द मनोहर रमण करने में इच्छुका निज प्राण प्रेष्ठ सखी राधिका को अनुदिन उन श्रीहरि के साथ रमण कराती हैं॥३६॥

वयस्य तुल्य पत्रिमुख्यादि दासगण का हम भजन करते हैं । जो सब निरन्तर उत्सुक होकर प्रेम के साथ बाँट कर परम आदरता से

वंशी-दर्पणदूत्यवारि-विलसत्ताम्बूलवीणादिभिः
प्राणेशं परितोषयन्ति परितस्तान् पत्रिभृत्यान् भजे ॥ ३७ ॥
ताम्बूलार्पण-पादमर्दन-पयोदानाभिसारादिभि
र्वृन्दारण्यमहेश्वरीं प्रियतया यास्तोषयन्ति प्रियाः ।
प्राणप्रेष्ठसखीकुलादपि किलासङ्कोचिता भूमिकाः
केलीभूमिषु रूपमञ्जरिमुखास्ता दासिकाः संश्रये ॥ ३८ ॥
तणीकृत्य स्फारं सुरसजलधिसारं स्फुटमपि
स्वकीयं प्रेम्णा ये मर-निकरनम्रा मुररिपोः ।
सुखाभासं शश्वत् प्रथयितुमलं प्रौढकुतुकाद्
यतस्ते तान् धन्यान् परमिह भजे माधवगणान् ॥ ३९ ॥
तस्याः क्षणादर्शनतो म्रियन्ते सुखेन तस्याः सुखिनो भवन्ति ।
स्निग्धाः परं ये कृतपुन्यपुञ्जाः प्राणेश्वरीप्रेष्ठगणान् भजे तान्॥४०॥

सेवा करते हैं। ये सब वंशी, दर्पण, दौत्य, जल, ताम्बूल, वीणादि के द्वारा प्राणेश का परितोष करते हैं ॥ ३७ ॥

अब हम रूपमञ्जरी प्रमुख उन प्राणेश्वरी की दासियों का आश्रय करते हैं। जो सब ताम्बूल-प्रदान, पादमर्दन, जलप्रदान, अभिसारादि के द्वारा प्रियता के साथ वृन्दावनेश्वरी राधिका की प्राणप्रेष्ठ सखियों से भी असंकोचित होकर क्रीड़ाभूमि में प्रसन्नता विधान करती हैं ॥ ३८ ॥

हम केवल उन माधव के गणों का भजन करते हैं। जो सब निज सुखसागर को भी तृण की भाँति देखते हैं तथा जो श्रीकृष्ण के प्रेमभर से नम्र हैं। निरन्तर प्रौढ कौतुक के द्वारा यह दिखाते हैं कि जगत् में सब कुछ सुखाभास से युक्त है केवल कृष्णप्रेम ही सुख समुद्र स्वरूप है ॥ ३९ ॥

अब प्राणेश्वरी के उन प्रियगणों का हम भजन करते हैं। प्राणेश्वरी राधिका के क्षणकाल अदर्शन से जो मृतप्राय हो जाते हैं तथा

साफल्योच्चयराज्यदुज्ज्वलरसस्योच्चैः समुद्वृद्धये
सौभाग्योद्भटगर्व्वविभ्रमभृतः श्रीराधिकायाः स्फुटम् ।
गोविन्दः स्मरफुल्लवल्लवधूवर्गेण येन क्षणं
क्रीडत्येष तमत्र विस्तृतमहापुण्यं च वन्दामहे ॥ ४१ ॥
ब्रह्माण्डात् परमुच्छलत् सुखभरं तत्कोटिसंख्यादपि
प्रेम्णा कृष्णमुरचिताः प्रतिमुहुः प्राप्ताः परं निर्वृताः ।
कामं तत्पदपद्मसुन्दरनखप्रान्तस्खलद्रेणुका-
रक्षाव्यग्रधियः स्फुरन्ति किल ये तान् गोपवर्य्यान् भजे ॥४२॥
प्राणेभ्योऽप्यधिकैः प्रियैरपि परं पुत्रैर्मुकुन्दस्य याः
स्नेहात् पादसरोजयुग्मविगलद्घर्म्मस्य बिन्दोः कणम् ।
निर्मञ्छ्योरुशिखण्ड सुन्दरशिरश्चुम्बति गोप्यश्चिरं
तासां पादरजांसि सन्ततमहं निर्मञ्छयामि स्फुटम् ॥ ४३ ॥

उनके सुख से सुखी होते हैं । वे सब परम स्निग्ध कृत-पुण्यपुंज-शाली हैं ॥ ४० ॥

उन विस्तृत महापुण्यशाली गोपवधूवर्ग की हम वन्दना करते हैं । कन्दर्परस से प्रफुल्लित जिनके साथ श्रीगोविन्द क्षणकाल क्रीड़ा करते हैं । उसे सौभाग्य से उद्भट गर्व्व विभ्रम धारणकारी श्रीराधिका के स्पष्टतारूप से साफल्य से उत्कर्ष प्राप्त उज्ज्वल रस की अत्यन्त वृद्धि के लिये जानना चाहिये ॥ ४१ ॥

हम उन गोपश्रेष्ठों का भजन करते हैं । वे सब ब्रह्माण्ड सुख से कोटि संख्या में अधिक परम महासुख से सुखी हैं तथा श्रीकृष्ण के द्वारा रचित परम निर्वृतशील हैं । फिर भी वे सब श्रीकृष्ण के चरणकमलों की सुन्दर नख प्रान्त के स्खलित रजकण की संरक्षा में व्यग्रचित्त रहते हैं ॥ ४२ ॥

उन गोपियों के चरण रजों का हम निरन्तर निर्म्मञ्छन देते हैं । जो सब प्राणों से अधिक प्रिय निज पुत्रों से भी अत्यधिक श्रीकृष्ण

इन्द्रनीलखुरराजिताः पर स्वर्णबद्धवरशृङ्गरञ्जिताः ।
पाण्डुगण्डगिरिगर्वखर्व्विकाः पान्तु न सपदि कृष्णधेनवः ॥४४॥
याभो पालनदोहनोत्सवरतः सार्द्धं वयस्योत्करैः
कामं रामविराजितः प्रतिदिनं तत्पादरेणूज्ज्वलः ।
प्रीत्या स्फीतवनोरुपर्व्वतनदीकच्छेषु बद्धस्पृहो
गोष्ठाखण्डलनन्दनो विहरते ताः सौरभेयीर्भजे ॥ ४५ ॥
मणिखचितसुवर्णाश्लिष्ट-शृङ्गद्वयश्री-
रसितमणि-मनोज्ञ-ज्योतिरुत्यतखुराढ्यः ।
स्फुरदरुणिमगुच्छान्दोल-विद्योतिकण्ठः
स जयति वकशत्रोः पद्मगन्धः ककुद्मी ॥ ४६ ॥
मृदु-नवतृणमल्पं सस्पृहं वक्त्रमध्ये
क्षिपति परमयत्नादप्यखण्डञ्च गात्रे ।

में प्रेम करती थीं। जो चरण कमल युग्म से विगलित घर्म्मकण का निर्म्मञ्छन देकर प्रचुर मयूरपंख से सुन्दर श्रीकृष्ण का मस्तक चुम्बन करती हैं ॥ ४३ ॥

वे सब श्रीकृष्ण की धेनुगण हम सबकी रक्षा करें। जिनके खुर इन्द्रनीलमणि से जड़ित हैं तथा जो सुवर्ण से संयुक्त शृङ्गों से रंजित हैं ॥ ४४ ॥

वयस्यों के साथ श्रीबलदेव जी से विराजमान होकर जिनके चरण रज से उज्वल प्राप्त व्रजराज नन्दन श्रीकृष्ण पालन-दोहनादि उत्सव में रत रहते हैं तथा वन, पर्व्वत, नदीतटादि में बद्धस्पृह होकर विहार करते हैं उन सब गौओं का हम भजन करते हैं ॥ ४५ ॥

बकारि श्रीकृष्ण के वह पद्मगन्ध नामक वृषभ जययुक्त हों। जो मणि खचित सुवर्ण से युक्त शृङ्ग दोनों की शोभा से मनोहर हैं तथा असितमणि की भाँति मनोज्ञकान्ति विशेष है। जिसका खुर उठा हुआ है तथा कंठदेश अरुणिम गुच्छ से दोलायमान है ॥ ४६ ॥

प्रथयति मुरवैरी हन्त यद्वत्सकानां
सपदि किल दिदृक्षे तत्तदाटीकनानि ॥ ४७ ॥
नक्तन्दिवं मुररिपोरधरामृतं या स्फीता पिबत्यलमबाधमहो सुभाग्या ।
श्रीराधिकाप्रथितमानमपीह दिव्यनादैरधो नयति तां मुरलीं नमामि॥४८॥
दूतीभिर्बहुचाटुभिः सखिकुलेनालं वचोभङ्गिभिः
पादान्ते पतनैर्व्रजेन्द्रतनयेनापि क्रुधालिगणैः ।
राधायाः सहि शक्यते दवयितुं यो नैव मानो यया
फुत्कृत्यैव निरस्यते सुकृतिनीं वंशीं सखीं तां नुमः ॥ ४९ ॥
स्फीतस्ताण्डविको हरेर्मुरलिकानादेन नृत्योत्सवं
पूर्णान्चालशिखण्डखण्डवलगु सरसीतीरे निकुञ्जाग्रतः ।
तन्वन् कुञ्जविहारिणोः सुखभरं सम्पादयेद् यस्तयोः
स्मृत्वा तं शिखिराजमुत्सुकतया वाढं दिदृक्षामहे ॥ ५० ॥

जिनके मुख में श्रीमुरारि स्नेह युक्त होकर अल्प अल्प मृदुल नवीन तृणग्रास का अर्पण करते हैं तथा परम आदर से शरीर का कण्डूयन करते है उन गो वत्सों का कूदना—उछलना लीला को हम कब देखेंगे ॥ ४७ ॥

जो दिनरात श्रीमुरारि के अधरामृत को बाधा रहित होकर पान करती है तथा जो अति भाग्यवती है, जो अपने नादों से श्रीराधिका के उच्चतर मान को नीचे दबा देती है उस मुरली को हम नमस्कार करते हैं ॥ ४८ ॥

जो मान चाटुवाक्यों से दूतियों के द्वारा, सखियों के वचन परिपाटी के द्वारा, व्रजराजतनय के चरण पतन के द्वारा, क्रोधित आलीगण के द्वारा भी नहीं प्रशम होता था राधिका के उस मान को जो सुकृतिनी वंशीसखी फूत्कारमात्र से ही नाश कर देती थी उस वंशी को हम नमस्कार करते हैं ॥ ४९ ॥

उस ताण्डविक नामक शिखिराज मयूर का हम कब उत्सुकता

सप्ताह मुरमर्दन प्रणयतो गोष्ठे रक्षोत्सुको
विभ्रन्मानमुदारपाणिरमणौर्यस्मै सलिल ददौ ।
गान्धर्वामुरभिद्विलासविगलत्काश्मीररज्यद्गुह-
स्तत्सद्वायितरत्नसुन्दरशिलो गोवर्द्धन पातु व ॥ ५१ ॥
नीपैश्चम्पकपालिभिर्नवराशोके रसालोत्करै
पुन्नागैर्वकुलैर्लवङ्गलतिकावासन्तिकाभिर्वृ ते ।
हृद्य तत्प्रियकुण्डयोस्तटमिलन्मध्यप्रदेश पर
राधामाधवयो प्रियस्थलमिद केल्यास्तदेनाश्रये ॥ ५२ ॥
श्रीवृन्दाविपिन सुरम्यमपि तच्छ्रीमान् स गोवर्द्धन
सा रासस्थलिरप्यल रसमयी कि तावदन्यत् स्थलम् ।

के साथ युगल दोनो का स्मरण कर अवलोकन करेंगे। जो राधाकुण्ड के तट पर निकुंज के आगे श्रीहरि के मुरलीशब्द से प्रफुल्ल होकर मनोहर पत्र को घुमाता हुआ कुंजविहारी विहारिणी के परमसुख का विधान करता है ॥ ५० ॥

चार ओर खाट की भाँति रत्नमय सुन्दर शिला विशिष्ट श्रीगोवर्द्धन हम सबकी रक्षा करें। श्रीमुरारि ने गोष्ठरक्षामें अति उत्सुक होकर प्रणय के साथ उदार हस्तकमल से एक सप्ताह पर्यन्त धारण कर जिसका मान बढ़ाया है तथा जो श्रीगान्धर्वा गिरिधारी के विलासों से विगलित काश्मीरादि से शोभायमान गुहा वाला है ॥५१॥

श्रीराधा माधव का उस केलि प्रियस्थल नामक परम स्थल का हम आश्रय करते हैं। जो नीप चम्पका से,नवीन श्रेष्ठ अशोकवृक्षों से, आम्र समूह से, पुन्नाग, वकुल, लवङ्गलता, वासन्तिकादियों से परम मनोहर है तथा राधामाधव के प्रियकुण्ड श्रीराधाकुण्ड श्यामकुण्ड के मिलन स्थल मध्य प्रदेश में है ॥ ५२ ॥

वह श्रीवृन्दाविपिन तथा वह श्रीमान गोवर्द्धन परम सुन्दर है। वह रसमयी रासस्थली भी ऐसी परम सुन्दर ही है। अन्यान्य सकल

यस्याप्यंशलवेन नार्हति मनाक् साम्यं मुकुन्दस्य तत्
प्राणेभ्योऽप्यधिकप्रियेव दयितं तत्कुण्डमेवाश्रये ॥ ५३ ॥
स्फीते रत्नसुवर्णमौक्तिकभरैः सन्निर्मिते मण्डपे
थूत्कारं विनिधाय यत्र रभसात्तौ दम्पती निर्भरम् ।
तन्वाते रतिनाथनर्म्म-सचिवौ तद्राज्यचर्च्चां मुदा
त राधासरसीतटोज्ज्वलमहाकुञ्जं सदाहं भजे ॥ ५४ ॥
कान्त्या हन्त मिथः स्फुटं हृदितटे सम्विम्बितं द्योतते
प्रीत्या तन्मिथुनं मुदा पदकवद्धारेण निभ्रद्द्वयोः ।
धात्रा भाग्यभरेण निर्म्मिततरे त्रैलोक्यलक्ष्म्यास्पदे
गौरश्यामतमे इमे प्रियतमे रूपे कदाहं भजे ॥ ५५ ॥
नेत्रोपान्त-विघूर्णनैरलघु तद्दोर्मूल-सञ्चालनै
रीषद्धास्यरसैः सुधाधरधयैश्चुम्बैर्दृढालिङ्गनैः ।

स्थान सुन्दर है । परन्तु वे सव श्री मुकुन्द के प्राणों से भी अधिक प्रिया श्रीराधिका की तरह परम प्रिय श्रीकुण्ड अर्थात् राधाकुण्ड का लव अंश का साम्य नहीं प्राप्त हो सकते हैं उस राधाकुण्ड का हम आश्रय लेते हैं ॥ ५३ ॥

राधाकुण्ड के तट पर उस उज्वल महाकुञ्ज का हम निरन्तर भजन करते हैं । रत्न, सुवर्ण, मौक्तिकों से विनिर्म्मित विस्तृत मडप में अन्य सबका थूत्कार करते हुए कन्दर्पनर्म्म सचिव दम्पती दोनों जहाँ कन्दर्पराज्य चर्च्चा का विस्तार करते हैं ॥ ५४ ॥

गौर-श्याम इन प्रियतम रूप का हम कब भजन करेंगे । कान्ति के द्वारा दोनों दोनों के हृदयतट में प्रतिविम्बित हो रहे हैं । मानो पदक की भाँति अथवा पदक के छल से दोनों दोनों को धारण कर रहे हैं । दोनों विधाता के भाग्य के वश निर्म्मित हुए हैं तथा त्रैलोक्यलक्ष्मी के आस्पद स्वरूप हैं ॥ ५५ ॥

उस उज्वल महाराज की अर्थात् दिव्य शृङ्गार रसराज की हम

एतैरिष्टमहोपचारनिचयैस्तन्नव्ययुनोर्युगं
प्रीत्या य भजते तमुज्ज्वलमहाराज प्रवन्दामहे ॥ ५६ ॥
नेत्रे दैर्घ्यमपाङ्गयो कुटिलता वक्षोज-वक्ष स्थले
स्थौल्य तन्मृदु वाचि वक्रिमगुरा श्रोणी पृथुस्फारता ।
सर्वाङ्गे वरमाधुरी स्फुटमभूद्यनेह लोकोत्तरा
राधामाधवयोरलं नवनयसन्धि सदा तं भजे ॥ ५७ ॥
दुष्टारिष्टवधे स्वय समुद्भूत् कृष्णाङ्घ्रिपद्मादिद
स्फीत यन्मकरन्दविस्तृतिरिवारिष्टाख्यमिष्टं सरः ।
सोपानै परिरञ्जित प्रियतया श्रीराधया कारितैः
प्रेम्णालिङ्गदिव प्रियासर इद तन्नित्य नित्यं भजे ॥ ५८ ॥

वन्दना करते हैं । जो नेत्रोपान्त का विघूर्णनों से,विशाल भुजामूल के मञ्चालनों से, ईषत् हास्य रसों से, अधरसुधा का पानों से, चुम्बनों से, दृढ़ आलिङ्गनों से, इन सब इष्ट महोपचार से उन नवीन युवा युगल का प्रीति के साथ भजन करता है ॥ ५६ ॥

श्री राधा माधव की उस नवीन वय सन्धि का हम भजन करते हैं । जिसमें नेत्र में दीर्घता, अपाङ्ग में कुटिलता, वक्षोज तथा वक्षः स्थल में स्थूलता, मृदुवचन में वक्रिम की अतिशयता, श्रोणि मे विस्तारता, सर्वाङ्ग में वरमाधुरी ये सब अलौकिक भाव स्फुट रूप से प्रकाशित होते हैं ॥ ५७ ॥

उस श्यामकुण्ड का हम नित्य भजन करते हैं ।जो दुष्ट अरिष्टासुर का वध के समय श्रीकृष्ण के चरण कमलों से उत्पन्न हुआ है । मानो श्रीकृष्ण के चरणकमलों का मकरन्द रस का विस्तार होकर अरिष्टकुण्ड नाम से प्रसिद्ध हो गया है । श्रीराधिका के द्वारा प्रीति के साथ परिनिर्मित सोपानों से जो परिरञ्जित हो रहा है तथा प्रियता से राधाकुण्ड का आलिङ्गन कर रहा है ॥ ५८ ॥

कदम्बानां व्रातैर्मधुपकुलभङ्कार-ललितैः
परीते यत्रैव प्रिय-सलिललीलाहृतिमिषैः ।
मुहुर्गोपेन्द्रस्यात्मजमभिसरन्त्यम्बुजदृशो
विनोदेन प्रीत्या तदिदमवतात् पावनसरः ॥ ५६ ॥
पर्ज्जन्येन पितामहेन नितरामाराध्य नारायणं
त्यक्त्वाहारमभूदपुत्रक इह स्वीयात्मजे गोष्ठपे ।
यत्रावापि सुरारिहा गिरिधरः पौत्रो गुणैकाकरः
क्षुण्णाहारतया प्रसिद्धमवनौ तन्मे तडागं गतिः ॥ ६० ॥
सार्द्धं मानसजाह्नवीमुखनदी-वर्गैः सरङ्गोत्करैः
सावित्र्यादि-सुरीमुखैश्च नितरामाकाशवाण्या विधेः ।
वृन्दारण्यवरेण्यराज्यविषये श्रीपौर्णमासी मुदा
राधा यत्र सिषेच सिञ्चतु सुखं सोन्मत्तराधास्थली ॥ ६१ ॥

वह पावनसरोवर हम सबकी रक्षा करे। जो मधुप भ्रमरों के झङ्कार से ललित कदम्बों का समूह से परिव्याप्त है। जहाँ अम्बुजनयना गोपियाँ जल आनयन छल से बार बार विनोद के साथ श्रीकृष्ण का अभिसार करती हैं अर्थात् उनसे मिलती हैं॥ ५६॥

पृथिवी में क्षुण्णाहार नाम से प्रसिद्ध वह सरोवर मेरी गति हो। जहाँ पर पितामह पर्ज्जन्य ने "निज आत्मज, अपुत्रक, व्रजराज का सन्तान की कामना से आहारादि परित्याग कर नारायण की नित्य आराधना की थी तथा गुणों के खान, सुरों का शत्रुनाशन, पौत्र गिरिधर को प्राप्त हुए थे॥ ६०॥

वह उन्मत्त राधास्थली सुख का सिञ्चन करे। जहाँ श्रीपौर्णमासी भगवती ने मानसगङ्गा प्रमुख नदियों के जल से तथा सरस्वति आदिक तीर्थों से अत्यन्त उत्सुकरंग से निरन्तर ब्रह्मा की आकाशवाणी के साथ वृन्दावन के श्रेष्ठ राज्याधिकार विषय में राधिका का अभिषेक सिञ्चन किया है॥ ६१॥

प्रीत्या नन्दीश्वरगिरितटे स्फारपाषाणवृन्दै
श्चातुष्कोण्येऽनुकृतिगुरुभिर्निर्मिता या विदग्धै ।
रेमे कृष्णः सखिपरिवृतो यत्र नर्माणि तन्व-
न्नास्थानीं तां हरिपदलसत् सौरभाक्तां प्रपद्ये ॥ ६२ ॥
वैदग्ध्योज्ज्वलवल्गुवल्लववधूवर्गेण नृत्यन्नसौ
हित्वा तं मुरजिद्रसेन रहसि श्रीराधिकां मण्डयन् ।
पुष्पालङ्कृतिसञ्चयेन रमते यत्र प्रमोदोत्करै
स्तल्लोक्याद्भुतमाधुरी परिवृता सा पातु रासस्थली ॥ ६३ ॥
गान्धर्विकामुरविमर्द्दनवाविहारलीलाविनोदरसनिर्भरभोगिनीयम् ।
गोवर्द्धनोज्ज्वलशिलाकुलमुन्नयन्ती वीचीभरैरवतु मानसजाह्नवी माम्॥६४
येषा क्वापि च माधवो विहरते स्निग्धैर्गवस्योत्करै
स्तद्धातुद्रवपुञ्जचित्रिततरैस्तैस्तैः स्वयं चित्रितः ।

हम श्रीहरि के पदकमल सौरभ से रंजित आस्थानी नामक मनोहर स्थल का शरण में आ रहे हैं। जो नन्दीश्वर पर्वत के तट पर है तथा विस्तार पाषाण समूह से चतुष्कोण आकार विशिष्ट है। जहाँ श्रीकृष्ण सखियों से परिवृत होकर विदग्धता से नर्म्म परिहास करते हुए क्रीड़ा करते हैं ॥ ६२ ॥

वह रासस्थली सबकी रक्षा करे। जहाँ श्रीमुरारि रस वैदग्ध्य परमोज्वल मनोहर गोपवधूवर्ग के साथ नृत्य करते हुए उसका परित्याग कर रहस्यस्थल पर पुष्पों के अलङ्कार समूह से श्रीराधिका को भूषित कर रमण करते हैं ॥ ६३ ॥

वह मानसगङ्गा मेरी रक्षा करें। जो गान्धर्वा मुरनाशन के नौकाविहार रूप लीलाविनोद रसाधिक्य का भोग करने वाली है तथा जो तरंगों से गोवर्धन के अत्युज्वल शिलासमूह को उन्मज्जित करती है॥६४॥ उन पर्वतराज श्रीगोवर्द्धन का हम भजन करते हैं। जहाँ राधिका के साथ श्रीमाधव उसके गैरिकादि धातुओं से चित्रित स्निग्ध

खेलाभिः किल पालनैरपि गवां क्वापि नर्म्मोत्सवैः
श्रीराधासहितो गुहासु रमते तान् शैलवर्य्यान् भजे ॥ ६५ ॥
स्फीते यत्र सरित्सरोवरकुले गाः पालयन्निर्वृतो
ग्रीष्मे वारिविहार-केलिनिवहे गोपेन्द्रदिव्यात्मजः ।
प्रीत्या सिञ्चति मुग्धमित्रनिकरान् हर्षेण मुग्धः स्वयं
काङ्क्षन् स्वीयजयं जयार्थिन इमान्नित्यं तदेतद्भजे ॥ ६६ ॥
येषां कच्छपिकालसन्मुरलिकानादेन हर्षोत्करैः
स्वस्तार्द्ध स्तृणगुच्छ एष नितरां वक्त्रेषु संस्तम्भते ।
सख्येनापि तयोः परं परिवृता राधा-वकद्वेषिणो
स्ते हृद्या मृगयूथपाः प्रतिदिनं मां तोषयन्तु स्फुटम् ॥ ६७ ॥
गुञ्जद्भृङ्गकुलेन जुष्टकुसुमैः सन्नद्ध-मञ्जुश्रियां
कुञ्जानां निकरेषु येषु रमते सौरभ्यविस्तारिणाम् ।
उद्यत् कामतरङ्ग-रङ्गितमनस्तन्नव्ययूनोर्युगं
तेषां विस्तृतकेशपाशनिकरैः कुर्य्यामहो मार्ज्जनम् ॥ ६८ ॥

वयस्यों के द्वारा स्वय चित्रित होकर विविध क्रीड़ा तथा गौओं का पालन के द्वारा, कहीं वा नर्म उत्सव के द्वारा विहार करते हैं ॥६५॥

जहाँ भजराजनन्दन ग्रीष्मकाल में विस्तृत नदी तथा सरोवर समूह में गौओं का पालन करते हुए उससे निवृत होकर जल विहार क्रीड़ा से स्वयं मुग्ध हो अपने जय की इच्छा करते हुए जयार्थी इन मुग्धमित्रसमूह को सिञ्चन करते है उन श्रीगोवर्द्धन का हम भजन करते हैं ॥ ६६ ॥

श्रीराधा-वकारि के वे मनोहर मृगयूथप प्रतिदिन मुझे स्पष्ट रूप से प्रसन्न करें। वीणा और मुरलीनाद से परम हर्षित जिनके मुखों में पतित अर्द्ध चर्व्वित तृण गुच्छ गले के नीचे नहीं जाता है तथा जो सब तृणग्रास भूलकर परम सख्यता से उन दोनों को घिर जाते थे ॥ ६७ ॥

येषां चारुतलेषु शीतनिविडच्छायेषु रात्रिन्दिवं
पुष्पाणां विगलत्पराग-विलसत्तल्पेषु कल्पाश्रयम् ।
प्रीत्या स्निग्धमधुव्रतैर्मधुकणैः ससेवितं तन्नवं
यूनोर्युग्मतरं मुदा विहरते ते पान्तु मां भूरुहा ॥ ६९ ॥
गान्धर्वामुरवैरिणोः प्रणयिणोः पुष्पाणि सञ्चिन्वतोः
स्वैरं स्मेरसखीकुलेन वृतयोरीषत्स्मितेन द्वयोः ।
दृष्ट्वा केलिकलिं तयोर्नवनवं हास्येन पुष्पच्छलै
काम या विलसन्ति ता किल लता सेव्या परं प्रेमभिः ॥७०॥
परिचयरसमग्ना काममारात्तयोर्ये मधुरतररवैर्नौल्लासमुल्लासयन्ति ।
व्रजभुवि नवयूनोः सुप्रिया पक्षिणस्ते विदधतु मम सौख्यं
स्फारमालोकनेन ॥ ७१ ॥

अहो ! उन सब कुंजों का विस्तृत केश कलाप से मैं मार्जन करूँगा । गुञ्जित भृङ्गसमूह से युक्त पुष्पों से परम मनोहर,शोभाप्राप्त, सुगन्ध विस्तारकारी जिन कुञ्जों के समूह में उच्छलित कामतरङ्ग से अनुरक्त चित्त वे नवीन युवा दोनों रमण करते हैं ॥ ६८ ॥

वे सब वृक्षगण मेरी रक्षा करें । मनोहर शीतल घनछाया वाले जिन वृक्षों के नीचे विगलित पराग पुष्पों के तल्पों में दिन रात विराजमान करते हुए स्निग्ध मधुकरों के मधुकणों से ससेवित वे नवीन युवक दोनों आनन्द के साथ विहार करते हैं ॥ ६९ ॥

वे सब लतायें परम प्रेम से मेरी सेवनीया हैं । जो ईषत् हास्य से सखियों के साथ स्वेच्छा पूर्वक पुष्प चयनकारी, प्रणयी, गान्धर्वा-मुरारी दोनों का नवीन-नवीन केलिकलह देख पुष्पों के छल से हँसती हुई विलास करती हैं ॥ ७० ॥

वे पक्षिगण विस्तार दर्शन दान से मेरा सुख विधान करें । जो व्रजभूमि में उन नवीन युवा दोनों के परिचय रस में मग्न रहते हैं तथा मधुरतर शब्द से दोनों को उल्लासित करते हैं ॥ ७१ ॥

चूतांघ्येषु कदम्बकेषु बकुलेष्वन्येषु वृक्षेष्वलं
प्रीत्या माधविकादिवल्लिषु तथा भाङ्कारनादैर्द्वयोः ।
ये भृङ्गाः परितस्तयोः सुखभरं विस्तारयन्ति स्फुटं
गुञ्जन्तो बत विभ्रमेण नितरां तानेव वन्दामहे ॥ ७२ ॥
पुष्पैर्यस्य मुदा स्वयं गिरिधरः स्वैरं निकुञ्जेश्वरीं
फुल्लां फुल्लतरैरमण्डयदलं फुल्लो निकुञ्जेश्वरः ।
ईषन्नेत्र विघूर्णनेन कलितस्स्वाधीन उच्चैस्तया
श्रीमान् स प्रथयत्वहो मम दृशोः सौख्यं कदम्बेश्वरः ॥ ७३ ॥
नीचैः प्रौढभयात् स्वयं सुरपतिः पादौ विधृत्येह यैः
स्वर्गङ्गासलिलैश्चकार सुरभिद्वाराभिषेकोत्सवम् ।
गोविन्दस्य नवं गवामधिपता राज्ये स्फुटं कौतुका-
त्तैर्यद्प्रादुरभूत् सदा स्फुरतु तद्गोविन्दकुण्डं दृशोः ॥ ७४ ॥

उन भृङ्गों की हम वन्दना करते हैं। जो आम्र-कदम्ब-बकुल तथा अन्यान्य वृक्षों में और माधविकादि लताओं में प्रीतिवश गुञ्जनकारी भङ्कार नादों से उन युगल दोनों का सर्वप्रकार सुख विस्तार करते हैं ॥ ७२ ॥

अहो ! यह अति उच्चता से श्रीमान् कदम्बराज मेरे नेत्रों का सुख विस्तार करें। निकुञ्जेश्वर स्वाधीन श्री गिरिधर प्रफुल्ल होकर स्वच्छन्द से जिसके पुष्पों के द्वारा प्रसन्ना निकुञ्जेश्वरी श्रीराधिका को उत्सुक से ईषत् नेत्र घूर्णन के द्वारा मण्डित करते हैं ॥ ७३ ॥

वह श्री गोविन्दकुण्ड मेरे नेत्रों में सर्वदा स्फूर्त हो। अत्यन्त भयभीत स्वयं इन्द्र ने नम्र होकर चरण धर सुरभि के द्वारा सुरधुनी के जलों से गौओं का आधिपत्य राज्य में गोविन्द का नवीन अभिषेक उत्सव किया था। उस समय कौतुक से गोविन्दकुण्ड का प्रादुर्भाव हुआ है ॥ ७४ ॥

व्रजेन्द्रवर्य्यार्पितभोगमुच्चैर्धृत्वा वृहत्कायमघारिरुत्कः ।
वरेण राधां छलयन् विभुङ्क्ते यत्रान्नकूटं तदहं प्रपद्ये ॥७५॥
गिरीन्द्रवर्य्योपरि हाररूपी हरिः स्वयं यत्र विहारकारी ।
सदा मुदा राजति राजभोगैर्हरिस्थलं तत्तु भजेऽनुरागैः ॥७६॥
घट्टक्रीड़ाकुतुकितमना नागरेन्द्रो नवीनो
दानी भूत्वा मदननृपतेर्गव्यदानच्छलेन ।
यत्र प्रातः सखिभिरभितो वेष्टितः संरुरोध
श्रीगान्धर्व्वां निजगणवृतां नौमि तां कृष्णवेदीम् ॥ ७७ ॥
निभृतमजनि यस्माद्दाननिवृत्तिरस्मि
तन्न इदमभिधानं प्रापयत् तत्सभायाम् ।
रसविमुखनिगूढं तत्र तज्ज्ञैकवेद्यं
सरसि भवतु वासो दाननिर्वर्त्तनेन ॥ ७८ ॥

उस अन्नकूट स्थान के हम शरण जाते हैं। जहाँ अघारि ने उत्कण्ठित हो वृहत् शरीर धारण के द्वारा वर से राधिका को छलना करते हुए व्रजराज के द्वारा अर्पित भोग उपहार का धारण कर अन्नकूट का भोजन किया है ॥ ७५ ॥

उस हरिस्थल का अनुराग के साथ हम भजन करते हैं। जिस श्री गिरिराज के ऊपर हाररूप होकर स्वयं श्रीहरि विहार करते हैं तथा सदा सर्व्वदा विविध राजभोगों से विराजमान रहते हैं ॥ ७६ ॥

उस कृष्णवेदी को हम नमस्कार करते हैं। जहाँ घाटीक्रीडा में कौतुकमना होकर नव-नागरेन्द्र ने दानी बन कर काम-नृपति का गव्यदान के छल से प्रातःकाल सखायों से परिवेष्टित होकर निज गणों से परिवृत राधिका का संरोध किया है ॥ ७७ ॥

उस दान निर्वर्त्तन नामक सरोवर में मेरा वास हो। वहाँ निभृत में दान निर्वर्त्तन लीला हुई थी, अतः सखी समाज में ऐसा ही नाम पड़ गया। वह स्थान अरसिकों के लिये परम निगूढ़ तथा

सीरिब्रह्म-कदम्बखण्ड-सुमनोरुद्राप्सरो-गौरिका
ज्योत्स्नामोक्षण-माल्यहार-विबुधारीन्द्रध्वजाद्याख्यया ।
यानि श्रेष्ठसरांसि भान्ति परितो गोवर्द्धनाद्रेरमू
नीडे चक्रकतीर्थदैवतगिरि-श्रीरत्नपीठान्यपि ॥ ७९ ॥
अहो दोलाखेला-रसवशभरोत्फुल्लवदनौ
मुहुः श्रीगान्धर्व्वागिरिवरधरौ तौ प्रतिमधु ।
सखीवृन्दं यत्र प्रकटितमुदान्दोलयति तत्
प्रसिद्धं गोविन्दस्थलमिदमुदारं वत भजे ॥ ८० ॥
प्रियात्प्रियप्राणवयस्यवर्गे धृतापराधं किल कालियं तम् ।
यत्रार्द्दयत् पादतलेन नृत्यन् हरिर्भजे तं किल कालियं ह्रदम्॥८१॥
सूर्य्यैर्द्वादशभिः परं मधुरिपुः शीतार्त्त उग्रातपै
र्भक्तिप्रेमभरैरुदारचरितः श्रीमान्मुदा सेवितः ।

रसिकों के लिये वेद्य है ॥ ७८ ॥

श्रीगोवर्द्धन के चार ओर ये सब श्रेष्ठ सरोवर विराजमान हैं। जिनके नाम-सीरि (बलदेवकुण्ड) ब्रह्मकुण्ड, कदम्बखण्डी, कुसुमसरोवर, रुद्रकुण्ड, अप्सराकुण्ड, गौरीकुण्ड, ज्योत्स्नामोचनकुण्ड, माल्यहारकुण्ड, विबुधारिकुण्ड, इन्द्रध्वजादि हैं। इन सब की तथा चक्रतीर्थ,दैवतगिरि,श्रीरत्नपीठ की भी हम स्तुति करते हैं॥७६॥

उस प्रसिद्ध उदार गोविन्दस्थल का हम अवश्य भजन करते हैं। अहो ! सखीगण दोलाखेल (झूला) के रसवश से उत्फुल्ल मुख श्रीगान्धर्व्वा-गिरिधारी को प्रति दिन बार-बार आनन्द प्रकाश करते हुए झुलाते हैं ॥ ८० ॥

उस कालियह्रद का हम भजन करते हैं। जहाँ श्रीहरि ने प्रिय से प्रिय प्राणवयस्य वर्ग में अपराधकारी उस कालियनाग को नृत्य करते करते चरणों से दमन किया है ॥ ८१ ॥

यत्र स्त्रीपुरुषैः क्वणत्पशुकुलैरावेष्टितो राजते
स्नेहैर्द्वादशसूर्यनाम तदिदं तीर्थं सदा संश्रये ॥ ८२ ॥
अत्यन्तातपसेवनेन परितः सञ्जातघर्म्मोत्करै
र्गोविन्दस्य शरीरतो निपतितैर्यत्तीर्थमुच्चैरभूत् ।
तत्तत् कोमलसान्द्रसुन्दरतर-श्रीमत् सदङ्गोच्छल-
द्गन्धैर्हारि सुवारि सुद्युति भजे प्रस्कन्दनं वन्दनैः ॥ ८३ ॥
कात्यायन्यतुलार्च्चनार्थममले कृष्णाजले मज्जतः
कन्यानां प्रकरस्य चीरनिकरं संचितं तीरतः ।
हृत्वारुह्य कदम्बमुज्ज्वल-परिहासेन तं लज्जयन्
स्मेरस्तं प्रददौ सुमङ्गिमुरजित्ता चीरघट्टं श्रये ॥ ८४ ॥

उस द्वादश आदित्य स्थल का हम आश्रय करते हैं। जहाँ शीतार्त्त होकर उदारचरित श्रीमान् गोविन्द व्रज के स्त्री-पुरुष गौओं से परिवेष्टित हो भक्ति-प्रेम के साथ द्वादश सूर्य्यों के उग्र ताप के द्वारा सेवित होकर विराजमान हुए थे। उसी कारण से यह स्थान द्वादश आदित्य टीला नाम से प्रसिद्ध हो गया है ॥ ८२ ॥

उस प्रस्कन्दन नामक तीर्थ का वन्दनाओं के द्वारा भजन करते हैं। अत्यन्त धूप का सेवन से घर्म्म उत्पन्न होकर श्रीगोविन्द का श्रीअंग से श्रमजल वहने लगा। उससे वह सुन्दर तीर्थ बन गया। श्रीगोविन्द के शोभायमान सुन्दरतर कोमल श्रीअंग के उच्छलित गन्धों से उस का जल मनोहर हो रहा है ॥ ८३ ॥

उस चीरघाट का हम आश्रय करते हैं। जहाँ जमुना के पवित्र जल में कात्यायनी देवी की अर्च्चना करने वाली कन्याओं का वस्त्र समूह तीर से लेकर मुरारी ने परिहास करते हुए कदम्बवृक्ष में आरोहण कर उन को लज्जित किया तथा रंग परिहास के द्वारा वर प्रदान किया था ॥ ८४ ॥

सीरिब्रह्म-कदम्बखण्ड-सुमनोरुद्राप्सरो-गौरिका
ज्योत्स्नामोचण-माल्यहार-विबुधारीन्द्रध्वजाद्याख्यया ।
यानि श्रेष्ठसरांसि भान्ति परितो गोवर्द्धनाद्रेरमू
नीडे चक्रकतीर्थ दैवतगिरि-श्रीरत्नपीठान्यपि ॥ ७९ ॥
अहो दोलाखेला-रसवशभरोत्फुल्लवदनौ
मुहुः श्रीगान्धर्व्वागिरिवरधरौ तौ प्रतिमधु ।
सखीवृन्दं यत्र प्रकटितमुदान्दोलयति तत्
प्रसिद्धं गोविन्दस्थलमिदमुदारं बत भजे ॥ ८० ॥
प्रियात्प्रियप्राणवयस्यवर्गे धृतापराधं किल कालियं तम् ।
यत्रार्द्दयत् पादतलेन नृत्यन् हरिर्भजे तं किल कालियं ह्रदम् ॥८१॥
सूर्य्यैर्द्वादशभिः परं मधुरिपुः शीतार्त्त उग्रातपै
र्भक्तिप्रेमभरैरुदारचरितः श्रीमान्मुदा सेवितः ।

रसिकों के लिये वेद्य है ॥ ७८ ॥

श्रीगोवर्द्धन के चार ओर ये सब श्रेष्ठ सरोवर विराजमान हैं। जिनके नाम–सीरि (बलदेवकुण्ड) ब्रह्मकुण्ड, कदम्बखण्डी, कुसुमसरोवर, रुद्रकुण्ड, अप्सराकुण्ड, गौरीकुण्ड, ज्योत्स्नामोचनकुण्ड, मालहारकुण्ड, विबुधारिकुण्ड, इन्द्रध्वजादि हैं। इन सब की तथा चक्रतीर्थ,दैवतगिरि,श्रीरत्नपीठ की भी हम स्तुति करते हैं।।७९।।

उस प्रसिद्ध उदार गोविन्दस्थल का हम अवश्य भजन करते हैं। अहो ! सखीगण दोलाखेल (झूला) के रसवश से उत्फुल्ल मुख श्रीगान्धर्व्वा–गिरिधारी को प्रति दिन बार-बार आनन्द प्रकाश करते हुए झुलाते हैं ॥ ८० ॥

उस कालियह्रद का हम भजन करते हैं। जहाँ श्रीहरि ने प्रिय से प्रिय प्राणवयस्य वर्ग में अपराधकारी उस कालियनाग को नृत्य करते करते चरणों से दमन किया है ॥ ८१ ॥

यत्र स्त्रीपुरुषैः क्वणत्पशुकुलैरावेष्टितो राजते
स्नेहैर्द्वादशसूर्य्यनाम तदिदं तीर्थं सदा संश्रये ॥ ८२ ॥
अत्यन्तातपसेवनेन परितः सञ्जातघर्मोत्करै
र्गोविन्दस्य शरीरतो निपतितैर्यत्तीर्थमुच्चैरभूत् ।
तत्तत् कोमलसान्द्रसुन्दरतर-श्रीमत् सदङ्गोच्छलद्-
द्गन्धैर्हारि सुवारि सुद्युति भजे प्रस्कन्दनं वन्दनैः ॥ ८३ ॥
कात्यायन्यतुलार्च्चनार्थममले कृष्णाजले मज्जतः
कन्यानां प्रकरस्य चोरनिकरं सञ्चितं तीरतः ।
हृत्वारुह्य कदम्बमुज्ज्वल-परिहासेन तं लज्जयन्
स्मेरस्त प्रददौ सुभङ्गिमुरजित्तं चीरघट्टं श्रये ॥ ८४ ॥

उस द्वादश आदित्य स्थल का हम आश्रय करते हैं। जहाँ शीतार्त्त होकर उदारचरित श्रीमान् गोविन्द व्रज के स्त्री पुरुष गौओं से परिवेष्टित हो भक्ति-प्रेम के साथ द्वादश सूर्यो के उग्र ताप के द्वारा सेवित होकर विराजमान हुए थे। इसी कारण से यह स्थान द्वादश आदित्य टीला नाम से प्रसिद्ध हो गया है ॥ ८२ ॥

उस प्रस्कन्दन नामक तीर्थ का वन्दनाओं के द्वारा भजन करते हैं। अत्यन्त धूप का सेवन से घर्म्म उत्पन्न होकर श्रीगोविन्द का श्रीअंग से श्रमजल बहने लगा। उससे यह सुन्दर तीर्थ बन गया। श्रीगोविन्द के शोभायमान सुन्दरतर कोमल श्रीअंग के उच्छलित गन्धों से उस का जल मनोहर हो रहा है ॥ ८३ ॥

उस चीरघाट का हम आश्रय करते हैं। जहाँ जमुना के पवित्र जल में कात्यायनी देवी की अर्च्चना करने वाली कन्याओं का वस्त्र समूह तीर से लेकर मुरारी ने परिहास करते हुए कदम्ववृक्ष में आरोहण कर उन को लज्जित किया तथा रंग परिहास के द्वारा वर प्रदान किया था ॥ ८४ ॥

हेषाभिर्जगतीत्रयं मदभरैरुत्कम्पयन्तं परैः
फुल्लन्नेत्रविघूर्णनेन परितः पूर्णं दहन्तं जगत् ।
तं तावत्तृणवद्विदीर्य्य वक्रभिद्विद्वेषिणं केशिनं
यत्र क्षालितवान् करौ स रुधिरौ तत् केशितीर्थं भजे ॥ ८५ ॥
अन्नैर्यत्रचतुर्विधैः पृथुगुणैः स्वैरं सुधानिन्दिभिः
कामं रामसमेतमच्युतमहो स्निग्धैर्वयस्यैर्वृतम् ।
श्रीमान् याज्ञिकविज्ञसुन्दरवधूवर्गः स्वयं यो मुदा
भक्त्या भोजितवान् स्थलं च तदिदं तच्चापि वन्दामहे ॥ ८६ ॥
मुदा गोपेन्द्रस्यात्मज-भुजपरिष्वङ्ग-निधये
स्फुरद्गोपीवृन्दैर्यमिह भगवन्तं प्रणयिभिः ।
भजद्भिस्तैर्भक्त्या स्वमभिलषितं प्राप्तमचिराद्
यमीतीरे गोपीश्वरमनुदिनं तं किल भजे ॥ ८७ ॥

उस केशितीर्थ का हम भजन करते हैं । जहाँ अति मत्तता से हेला के द्वारा तीन जगत् को कँपाता हुआ तथा बड़े बड़े नेत्रों के विघूर्णन से जगत् का मानो दहन करता हुआ विद्वेषि केशि दैत्य आया । वकारि श्रीकृष्ण ने उस को तृण की भाँति विदीर्ण कर सरुधिर हस्त कमल का वहाँ धौत किया था ॥ ८५ ॥

हम उस याज्ञिकस्थल तथा उन यज्ञपत्नियों की वन्दना करते हैं । जहाँ श्रीमान् यज्ञपत्निवर्ग ने गुणों से सुधा निन्दि चार प्रकार के अन्न के द्वारा स्निग्ध वयस्यों से वेष्टित श्रीराम के साथ श्रीगोविन्द को प्रीति से भोजन कराया है ॥ ८६ ॥

यमुना के तीर में विराजमान् उन श्रीगोपीश्वर महादेव का हम निश्चय भजन करते हैं । गोपीवृन्दों ने श्री व्रजराजनन्दन के भुज आलिङ्गन रूप धन की प्राप्ति के लिये भक्ति के द्वारा जिस का भजन कर निज अभिलषित वस्तु का प्राप्त किया ॥ ८७ ॥

भयात् कंसस्याराल् सदयमचिराच्छन्ननृपदे
विनिचिता राधा रहसि किल पित्रा प्रकृतितः ।
स्फुरन्तं तं दृष्ट्वा कमपि घनपुञ्जाकृतिवरं
तमेवाप्त्यै यत्नाद्यमभजत सूर्योऽवतु स नः ॥ ८८ ॥
आविर्भावमहोत्सवे मुररिपोः स्वर्णोरुमुक्ताफल-
श्रेणीविभ्रममण्डिते नवगवीलक्षे ददौ द्वे मुदा ।
दिव्यालंकृतिरत्नपर्वततिल-प्रस्थादिकञ्चादरा
द्विप्रेभ्यः किल यत्र स व्रजपतिर्वन्दे बृहत्काननम् ॥ ८९ ॥
गान्धर्व्वाया जनिमणिरभूत् यत्र सङ्कीर्त्तिताया-
मानन्दोत्कैः सुरमुनिनरैः कीर्त्तिदागर्भखन्याम् ।
गोपीगोपैः सुरभिनिकरैः संपरीतेऽत्रमुख्ये
रावलाख्ये वृषरविपुरे प्रीतिपुरो ममास्ताम् ॥ ९० ॥
यस्य श्रीमच्चरणकमले कोमले कोमलापि
श्रीराधोच्चैर्निजसुखकृते सन्नयन्ती कुचाग्रे ।

वह सूर्य्यदेव हम सब की रक्षा करें। कंस के भय से पिता ने रहस्य स्थल पर श्रीराधिका को रखा था। क्योंकि स्वभाव से वे राधिकावत्सल थे। श्री राधिका ने उस सूर्य्यदेव को मेघपुञ्जाकार देख कर श्रीकृष्ण ज्ञान से उसकी प्राप्ति के लिये भजन किया है॥८८॥

उस बृहद्वन (महावन) की हम वन्दना करते हैं । जहाँ व्रजराज ने मुरारि के आविर्भाव महोत्सव में स्वर्ण मुक्ताओं से मण्डित नवीन दो लक्ष गौओं का तथा दिव्यातिदिव्य अलंकार-रत्न पर्व्वत-तिलप्रस्थादि का आदर से विप्रों को दान दिया था ॥ ८९ ॥

रावल नामक वृषभानुपुर में मेरी परम प्रीति हो। जहाँ आनन्दित सुर-मुनि-नरों से कीर्त्तित कीर्त्तिदा के गर्भरूप खनि से श्रीराधिका की जन्मरूप मणि हुई है। जो स्थान गोपी-गोप-धेनुओं से परिपूर्ण है ॥ ९० ॥

भीताऽप्यारादथ नहि दधात्यस्य कार्कश्य-दोषात्
स श्रीगोष्ठे प्रथयतु सदा शेषशायी स्थितिं नः ॥ ६१ ॥
यत्र कामसरः साक्षाद्गोपिकारमणं सरः ।
राधामाधवयोः प्रेष्ठं तद्वनं काम्यकं भजे ॥ ६२ ॥
मल्लीकृत्य निजाः सखीः प्रियतमा गर्वेण सम्भाविता
मल्लीभूय मदीश्वरी रसमयी मल्लत्वमुत्कण्ठया ।
यस्मिन् सम्यगुपेयुषा बकभिदा राधा नियुद्धं मुदा ।
कुर्वाणा मदनस्य तोषमतनोद्भाण्डीरकं तं भजे ॥ ६३ ॥
आकृष्टा या कुपितहलिना लाङ्गलाग्रे या कृष्णा
धीरा यान्ती लवणजलधौ कृष्णसम्बन्धहीना ।
अद्यापीत्थं सकलमनुजे र्दृश्यते सैव यस्मिन्
भक्त्या वन्देऽद्भुतमिदमहो रामघट्टप्रदेशम् ॥ ६४ ॥

वे शेषशायी श्रीगोष्ठ में हम सब की स्थिति प्रदान करें। कोमलाङ्गी श्रीराधिका अपने सुख के लिये स्तनाग्र में जिन के चरण-कमल का धारण कर फिर परम आदरता से स्तनों में काठिन्यता समझ कर भीता हो परित्याग करने की इच्छा करती हैं ॥ ६१ ॥

जहाँ साक्षात् कामसरोवर तथा गोपिकारमण सरोवर विराजमान् है। उस राधामाधव के परम प्रिय काम्यकवन का हम भजन करते हैं ॥ ६२ ॥

उस भाण्डीरवट का हम भजन करते हैं। जहाँ रसमयी मेरी ईश्वरी श्रीराधिका ने गर्व्व के साथ निज प्रियतम सखियों को मल्ली (योद्धा) बना कर स्वयं मल्ली (योद्धा) बन कर बकारि के साथ युद्ध कर अतनु मदन का तोष विधान किया है ॥ ६३ ॥

अहो परम अद्भुत इस रामघाट प्रदेश की भक्ति के साथ वन्दना करते हैं। कृष्ण सम्बन्ध से रहित धीर नदियाँ लवण-सागर में मिलती हैं। परन्तु "कृष्णप्राण यमुना ऐसा क्यों करेगी" इस

प्राणप्रेष्ठवयस्य-वर्गमुदरे पापीयसोऽघासुर-
स्यारण्योद्भट-पावकोत्कट-विषैर्दुष्टे प्रविष्टं पुरः।
व्यग्रः प्रेक्ष्य रुषा प्रविश्य सहसा हत्वा खलं तं बली
यत्रैनं निजमाररक्ष मुरजित् सा पातु सर्पस्थली ॥ ६५ ॥
द्रष्टुं साक्षात् स्वपतिमहिमोद्रेकमुत्केन धात्रा
वत्सव्राते द्रुतमपहृते वत्सपालोत्करे च।
तत्तद्रूपो हरिरथ भवन् यत्र तत्तत् प्रसूनां
मोदं चक्रे ऽशनमपि भजे वत्सहारस्थली ताम् ॥ ६६ ॥
वाढं वत्सकवत्सपालहृतितो जातापराधाङ्कये
ब्रह्मा साम्रमपूर्व्वपद्यनिवहैर्यस्मिन्निपत्यावना।
तुष्टावाद्भुतवत्सपं व्रजपतेः पुत्रं मुकुन्दं मनाक्
स्मेरं भीरुचतुर्मुखाख्यमनिशं सेशं प्रदेशं नुमः ॥ ६७ ॥

कारण से मानो हलधर ने कुपित होकर हलाग्र से यमुना का आकर्षण किया है। यहाँ यमुना जी उलटी बहती हैं। अभी भी सकल लोक-भक्ति दृष्टि से उसे देखते हैं ॥ ६४ ॥

यह सर्पस्थली मेरी रक्षा करें। जहाँ पापी अघासुर का उद्भट अग्नि की भाँति उत्कट विषों से दूषित उदर में प्राणप्रिय वयस्यों का प्रवेश देख कर अत्यन्त व्यग्र मुरारि ने क्रोधित हो स्वयं उस में प्रवेश किया तथा उस दुष्ट को मार कर निज गण की रक्षा की॥६५॥

उस वत्सहार स्थल का हम भजन करते हैं। जहाँ ब्रह्मा जी ने निज पति श्रीहरि की महिमा-उद्रेक को देखने के लिये उत्सुक होकर वत्ससमूह तथा वत्सपालक समूह का अपहरण किया था। पश्चात् श्रीहरि उन उन स्वरूपों का धारण कर उन उन माताओं को आनन्दित देने लगे तथा उसी प्रकार भोजनादि किये थे ॥ ६६ ॥

वह चतुर्मुख प्रदेश (चौमुहा) को नमस्कार करते हैं। जहाँ

गन्धव्याकुलभृङ्गसञ्चयचमूसंघृष्टपुष्पोत्करै-
र्भ्राजत्कल्पलतापलाशि-निकरैर्विभ्राजितानि स्फुटम् ।
यानि स्फारतड़ाग-पर्वतनदीवृन्देन राजन्त्यहो
कृष्ण-प्रेष्ठवनानि तानि नितरां वन्दे मुहुर्द्वादश ॥ ६८ ॥
पूर्णः प्रेमरसैः सदा मुररिपोर्दासः सखा च प्रियं
स्वप्राणार्व्बुदतोऽपि तत्पदयुगं हित्वेह मासान् दश ।
प्रीत्या यो निवसस्तदीयकथया गोष्ठं महुर्जीवय-
त्यायातं किल पश्य कृष्णमिति तं मूर्ध्ना वहाम्युद्धवम् ॥ ६९ ॥
मुदा यत्र ब्रह्मा तृणनिकर-गुल्मादिषु परं
सदा काङ्क्षन् जन्मार्पितविविधकर्म्माप्यनुदिनम् ।

बार-बार वत्स-वत्सपालों का हरण के जात अपराध से भयभीत ब्रह्मा ने रोदन करते हुए पृथ्वी में पतित होकर अपूर्व पद्यों से अद्भुत वत्सप,व्रजराजके पुत्र,ईषत् हास्ययुक्त मुकुन्द की स्तुति की थी॥६७॥

उन श्रीकृष्ण के प्रिय द्वादश वनों की निरन्तर वन्दना करते हैं। जो गन्ध से व्याकुल भृङ्गों से संसर्गित पुष्पों से परिव्याप्त कल्पलता और पलासादि वृक्षों से शोभायमान हैं तथा जो विस्तार तडाग-पर्वत-नदीगण से विराजमान् हैं ॥ ६८ ॥

उन उद्धव जी को हम मस्तक में धारण करते हैं। जो सर्वदा प्रेम-रसों से परिपूर्ण हैं तथा जो श्रीकृष्ण के सेवक, सखा भी हैं। जिन्होंने निज अर्व्बुद प्राणों से भी परम प्रिय श्रीकृष्ण के चरण-युगल का त्याग कर दश मास पर्य्यन्त व्रज में निवास किया तथा श्रीकृष्ण की वार्त्ता से "श्रीकृष्ण आ रहे हैं उन का दर्शन करो" इत्यादि प्रबोधन के द्वारा गोष्ठ को जीवित रखा है ॥ ६९ ॥

जहाँ ब्रह्मा जी ने आनन्दातिशय के कारण तृण गुल्मादिकों में जन्म लेने की इच्छा की। उस व्रज में जो प्रियजन समूह वास क-

क्रमाद्ये तत्रैव व्रजभुवि वसन्ति प्रियजना
मया ते ते वन्द्याः परमविनयात् पुण्यखचिताः ॥ १०० ॥
पुरा प्रेमोद्रेकैः प्रतिपदनवानन्दमधुरैः
कृत श्रीगान्धर्व्वाच्युतचरणवर्य्याच्चर्चनबलात्।
निकामं स्वामिन्याः प्रियतरसरस्तीरभुवने
वसन्ति स्फीता ये त इह मम जीवातव इमे ॥ १०१ ॥
यत्किञ्चित् तृणगुल्मकीकटमुखं गोष्ठे समस्तं हि तत्
सर्व्वानन्दमयं मुकुन्ददयितं लीलानुकूलं परम्।
शास्त्रै रेव मुहुर्मुहुः स्फुटमिदं निष्टङ्कितं याच्ञया
ब्रह्मादेरपि सस्पृहेण तदिदं सर्व्वं मया वन्द्यते ॥ १०२ ॥
भ्रमन् कच्छे कच्छे क्षितिधरपतेर्विक्रमगतै
र्लपन् राधे कृष्णेत्यनवरतमुन्मत्तवदहम्।
पतन् क्वापि क्वाप्युच्छलितनयनद्वन्द्वसलिलैः
कदा केलिस्थानं सकलमपि सिञ्चामि विकलः ॥ १०३ ॥ -

रते हैं मैं क्रम से परम नम्रता के द्वारा उन सब की वन्दना करता हूँ। ये सब परम वन्दनीय, महान् पुण्यशाली हैं ॥ १०० ॥

श्रीगान्धर्व्वा-गिरिधारी के चरण-कमलों की श्रेष्ठ उपासना के बल से प्रतिपद में नवायमान आनन्द मधुर प्रेमोद्रेक के द्वारा पहले से जो सब स्वामिनी जी के परमप्रिय सरोवर (श्रीराधाकुण्ड) के तट भूमी में निवास कर रहे हैं, वे सब मेरे जीवनाधार हैं ॥१०१॥

गोष्ठ में तृण गुल्म–कीटादिक जो कुछ हैं, वे सब सर्व्वानन्द स्वरूप, मुकुन्दप्रिय केवल लीलानुकूल विशिष्ट हैं। समस्त शास्त्र में बार-बार इस का निर्णय हो रहा है। जिन की वाञ्छा ब्रह्मादि देवताओं ने स्पृहा के साथ की है। उन सब की मैं वन्दना करता हूँ॥१०२

हाय ! कब मैं गोवर्द्धन पर्वत के तट (तरहटी) में इधर-उधर

न ब्रह्मा न च नारदो न हि हरो न प्रेमभक्तोत्तमाः
सम्यग् ज्ञातुमिहाञ्जसार्हति तथा यस्योच्छलन्माधुरीम् ।
किन्त्वेको बलदेव एव परितः सार्द्धं स्वमात्रा स्फुटं
प्रेम्णाप्युद्धत एष वेत्ति नितरां किं स व्रजो वर्ण्यते ॥ १०४ ॥
अन्यत्र क्षणमात्रमच्युतपुरे प्रेमामृताम्भोनिधि-
स्नातोऽप्यच्युतसज्जनैरपि समं नाहं वसामि क्वचित् ।
किन्त्वत्र व्रजवासिनामपि समं येनापि केनाप्यलं
संलापैर्मम निर्भरः प्रतिमुहुर्वासोऽस्तु नित्यं मम ॥ १०५ ॥
रागेण रूपमञ्जर्या रक्तीकृतमुरद्विषः ।
गुणाराधितराधायाः पादयुग्मं गतिर्मम ॥ १०६ ॥

दौड़ता हुआ उन्मत्त की भाँति "श्रीराधे कृष्ण" ऐसे अनवरत कहता हुआ कहीं मूर्छित होकर गिर जाऊँगा तथा कहीं वा उच्छलित नेत्र दोनों की धाराओं से बिकल होकर केलिस्थान समूह का सिञ्चन करूँगा ॥ १०३ ॥

जिस की उच्छलितमाधुरी को न ब्रह्मा न नारद न हर न उत्तम प्रेमीभक्त सम्यग् प्रकार जानने में समर्थ होते हैं । परन्तु निज माता जी के साथ एक मात्र बलदेव जी सर्व प्रकार से जानते हैं । प्रेम से उद्धत इस जन के द्वारा वह व्रज क्या वर्णित हो सकताहै।।१०४

अन्यत्र कहीं अच्युतधाम में अच्युत सज्जनों के साथ प्रेमामृत सागर में निमज्जित होकर भी क्षण काल के लिये वास नहीं करूँगा । परन्तु इस व्रज में व्रजवासियों के साथ येन केन प्रकार से आलापादि करता हुआ नित्य प्रतिमुहुः वास करूँगा । अर्थात् व्रज में मेरा वास क्षण भर के लिये विच्युति नहीं होवे ॥ १०५ ॥

गुणों से आराधित श्रीराधिका के चरण-युगल मेरी गति हों । जो रूपमञ्जरी के द्वारा अनुराग से रञ्जित है ॥ १०६ ॥

इमं नियतमादराद् व्रजविलासनाम स्तवं
सदा व्रजजनोल्लसन्मधुरमाधुरी-बन्धुरम् ।
मुहुःकुतुकसम्भृताः परिपठन्ति ये वल्गु तत्
समं परिकरैरदं मिथुनमत्र पश्यन्ति ते ॥ १०७॥

* इति श्री श्री व्रजविलासस्तवः
॥ समाप्तः ॥

जो व्यक्ति कौतुहल से निरन्तर आदर के साथ इस "व्रजविलास नामक स्तव का जो कि व्रजजनों की उल्लसित मधुर-माधुरी से सुन्दर है उसका बार-बार पाठ करते हैं, वे मनोहर परिकरों के साथ उन मिथुन युगल का दर्शन करेंगे ॥ १०७ ॥

अनुवादक—कृष्णदास ।

अथ राधाविरहः ॥

श्रीकृष्णविरहाविष्टा श्रीराधा प्रियवल्लभा ।
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति महानन्दावदद्रहः ॥ १ ॥
सुन्दरास्य कमलासितेक्षण क्वासि भासि मम वल्लभ प्रिय ।
दर्शनीयमुखचन्द्रशोभया शीतल कुरु महोष्णलोचनम् ॥ २ ॥
प्राणप्रियः क्वासि मत्प्राणनाथः कृतसकर्णद्वे गुणानन्दमूर्त्तिः ।
पीताम्बरः सुन्दराङ्गाङ्गदीप्तिः श्रीसागरोऽलौकिकयशोभाभरश्च ॥ ३ ॥
लसन्मौलिमालालिराजानुबाहुर्मदोन्मत्तगत्यद्भुतश्रीधरश्च ।
चलन्नूपुरै र्झंकणत्कारयुक्तो जयज्जानुजंघोल्लसद्यौवनश्च ॥ ४ ॥
त्वद्दर्शनेनैव मे जीवनं स्याद्वाक्यामृतेनैव कर्णातितृप्तिः ।
एवं वदन्ती चरन्ती च कृष्णे रतिविह्वलासील्लसन्ती वने सा ॥ ५ ॥
प्राणनाथ मधुरानन माधव माधुरीधुर धराद्भुत माधव ।
श्यामसुन्दर मदोन्मद माधव पश्य मां मदनमोहन माधव ॥ ६ ॥
माधवस्य विरहव्यथातुरा माधवेति मुहुराह राधिका ।
तन्मनस्कमदमेव माधवो राधिकैकविरहातुरोऽभवत् ॥ ७ ॥

नित्यानन्दस्य कृष्णस्य ध्यायन्ती मुखपङ्कजम् ।
तादात्म्यं संगता तस्मिन् संशति स्म सु विस्मिता ॥ ८ ॥
(केनचित्)

अथ कृष्णविरहः ॥

राधिकातिविरहार्दितो मुहुर्माधवो वदति राधिके प्रिये !
कुञ्जपुञ्जवनवीथिषु भ्रमन् विह्वलो भवति भाति तन्मना ॥ १ ॥
विस्मृतं च वल्लवेणुवादनं भ्रू विलासललनाप्रकर्षणम् ।
सस्मितं च समेक्षणं मुदा मदगजेन्द्रगमनं च लीलया ॥ २ ॥
वैपरीत्यवनदामदामिनोवस्त्रमौलिमणिस्वर्णभूषणाः ।
विस्मृतं व तनुगन्धलेपनं दर्पणे च मुखदर्शनं मुदा ॥ ३ ॥
राधिकेऽसि मम नेत्ररूपिणी राधिकेऽसि मम प्राणवल्लभा ।
राधिकेऽसि मम कंठभूषणं क्वासि भामि मम मित्रवल्लभा ॥ ४ ॥
दर्शनं देहि मे राधिके श्रीमति ! स्पर्शनं ते कदा संकरिष्याम्यहम् ।
दीनदीनाय मे प्रेमपूर्णेक्षणा प्रोल्लसत्सुंदरास्येन्दुभां दर्शय ॥ ५ ॥
उल्लससि नैव मे त्वां विना मधुरमोहनी मूर्त्तिरसि रसवलितलोचने !
मानसं कुसुमशरविद्धमधुना प्रिये चन्द्रचन्दन सुरभि-
कंजजलमौख्यदम् ॥ ६ ॥
संयतोऽतिकुञ्जपुञ्जान्तरशारदेन्दुमं मुखं प्रियाया हरिरीपदैक्षत् ।
सगद्गदं कंपजलाश्रु लोचनं तदाहृदानन्दमहोदयोऽभवत् ॥ ७ ॥
ततः पुनः प्राणपतेर्मुखाम्बुज समीक्ष्य राधा मिलनोत्सुकाऽभवत् ।
परस्परं प्रीतिरवर्द्ध ताद्भुता तयोर्महानन्दकदम्बसंभृतोः ॥ ८ ॥
कुञ्जान्तरगतौ तौ द्वौ दम्पती राधिका हरी ।
विश्लेषविरहौ यातस्तयोरात्मैकप्राणयोः ॥ ६ ॥
दंपती विरहसंपदो मया कंपतो विरचिता उपासकाः ।
यः पठेद्विरहपूर्वकं स्तव तन्मयो भवति निश्चितं तयोः ॥ १० ॥
इति श्रीराधाकृष्णकुञ्जान्तरविश्लेषविरहमिलनकौतुकं समाप्तम् ।
(केनचित्)